



श्रीमद्भगवद्गीता

# Easiest Geeta



अध्याय **1**: अर्जुनविषादयोग

**श्लोक संख्या: 1.01**

धृतराष्ट्र उवाच |

धर्मक्षेत्रे कु रुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः |

मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय || 01 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

धृतराष्ट्र बोले—हे संजय! धर्मभूमि कु रुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से एकत्र हुए मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया?

**सरल व्याख्या:**

गीता की शुरुआत धृतराष्ट्र के प्रश्न से होती है। कु रुक्षेत्र केवल एक भौगोलिक मैदान नहीं, बल्कि हमारा अंतर्मन है जहाँ रोज़ 'धर्म' (सद्गुण) और 'अधर्म' (दुर्गुण) के बीच युद्ध चलता है। धृतराष्ट्र का 'मामकाः' (मेरे पुत्र) कहना उनके गहरे मोह और पक्षपात को दिखाता है। अज्ञान में फँसा मन हमेशा 'मेरा-तेरा' और 'अपनों-परायों' में भेद करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मोह और ममता ही व्यक्ति के भीतर अज्ञान और संशय के बीज बोते हैं।

**श्लोक संख्या: 1.02**

सञ्जय उवाच |

दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा |

आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् || 02 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

संजय बोले—उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूह रचना युक्त पाण्डवों की सेना को देखकर द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन कहा।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन पाण्डवों की सेना की व्यवस्थित तैयारी देखकर भीतर से घबरा जाता है, लेकिन अपनी घबराहट छिपाने के लिए वह गुरु द्रोणाचार्य के पास जाता है। जब मनुष्य भीतर से कमज़ोर होता है और अधर्म के पक्ष में होता है, तो बड़ी सेना या साधन होने के बाद भी उसका भय समाप्त नहीं होता। वह राजनीति का सहारा लेने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अधर्म के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति का आत्मविश्वास हमेशा डगमगाया रहता है।

**श्लोक संख्या: 1.03**

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् |  
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता || 03 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे आचार्य! आपके बुद्धिमान शिष्य द्रुपदपुत्र (धृष्टद्युम्न) द्वारा व्यूहाकार खड़ी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस बड़ी भारी सेना को देखिए।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन चालाकी से द्रोणाचार्य को याद दिलाता है कि पाण्डवों का सेनापति धृष्टद्युम्न उन्हीं का शिष्य है, जिसे उन्होंने द्रुपद से शत्रुता जानते हुए भी शिक्षा दी थी। वह गुरु के भीतर पाण्डवों के प्रति सोई हुई कड़वाहट जगाना चाहता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति दूसरों की शक्तियों को देखकर हमेशा असुरक्षित महसूस करता है और दूसरों को भड़काने का प्रयास करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईर्ष्या मनुष्य को सजग तो रखती है, लेकिन वह सजगता सकारात्मक न होकर भय और द्वेष से भरी होती है।

**श्लोक संख्या: 1.04**

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि |  
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः || 04 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

इस सेना में बड़े-बड़े धनुषों वाले तथा युद्ध में भीम और अर्जुन के समान बहुत से शूरवीर हैं, जैसे—सात्यकि (युयुधान), राजा विराट और महारथी द्रुपद।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन द्रोणाचार्य के सामने पाण्डव सेना के मुख्य योद्धाओं की गिनती करवा रहा है। वह भीम और अर्जुन को पैमाना मानता है क्योंकि उसका मुख्य डर इन दोनों से ही है। जब हमारे सामने कोई संकट आता है, तो हमारा मन सबसे पहले उन चीज़ों या व्यक्तियों को चिन्हित करता है जिनसे हमें सबसे ज़्यादा खतरा महसूस होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... डर और असुरक्षा की भावना हमेशा शत्रु की शक्ति को बढ़ा-चढ़ाकर देखने पर मजबूर करती है।

**श्लोक संख्या: 1.05**

धृष्टके तुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।  
 पुरुजित्कु न्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ 05 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

धृष्टके तु, चेकितान और पराक्रमी काशिराज तथा पुरुजित, कु न्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन पाण्डवों के पक्ष में खड़े अन्य शक्तिशाली राजाओं के नाम ले रहा है। यह उसकी आंतरिक व्याकुलता को दिखाता है। वह द्रोणाचार्य को यह समझाना चाहता है कि सामने कोई साधारण विरोधी नहीं खड़ा है, बल्कि धर्म के पक्ष में बड़े-बड़े शूरवीर एक हो चुके हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य और न्याय के पक्ष में खड़े सहयोगी भले ही कम दिखें, पर उनकी निष्ठा विरोधी के मन में भय पैदा कर देती है।

**श्लोक संख्या: 1.06**

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।  
 सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ 06 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

पराक्रमी युधामन्यु और बलवान उत्तमौजा तथा सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र—ये सब के सब महारथी हैं।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ दुर्योधन पाण्डव सेना के युवा और तेजस्वी वीरों (जैसे अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों) का जिक्र करता है। महारथी का अर्थ होता है जो अकेले ही दस हज़ार योद्धाओं से लड़ सके। दुर्योधन को दिख रहा है कि विरोधी पक्ष की नई पीढ़ी भी पूरी तरह तैयार और संकल्पित है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब मन में किसी बात का भय बैठ जाता है, तो वह हर छोटे-बड़े पहलू का विश्लेषण करके खुद को और अधिक डराने लगता है।



**श्लोक संख्या: 1.07**

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम |  
 नायका मम सैन्यस्य संज्ञानार्थं तान्ब्रवीमि ते || 07 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे द्विजश्रेष्ठ (ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य)! हमारे पक्ष में भी जो मुख्य-मुख्य नायक हैं, उनको आप जान लीजिए। आपकी जानकारी के लिए मैं अपनी सेना के सेनापतियों के नाम आपको बताता हूँ।

**सरल व्याख्या:**

सामने वाले की ताकत गिनते-गिनते दुर्योधन को अहसास होता है कि कहीं उसकी बातें सुनकर द्रोणाचार्य का हौसला न डगमगा जाए या वे यह न सोच लें कि उनका राजा कमज़ोर पड़ गया है। इसलिए वह तुरंत पासा पलटता है और अपनी सेना की तारीफ करने लगता है। यह एक चतुर और कूटनीतिक दिमाग का लक्षण है जो अपनी कमज़ोरी को शब्दों के जाल से छिपाना जानता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपनी घबराहट को छिपाने के लिए मनुष्य अक्सर झूठे आत्मविश्वास का दिखावा करने लगता है।

**श्लोक संख्या: 1.08**

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृ पश्च समितिज्जयः |  
 अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च || 08 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

आप (द्रोणाचार्य), पितामह भीष्म, कर्ण और युद्ध विजयी कृ पाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन अपनी सेना के सबसे बड़े स्तंभों का नाम लेता है। वह सबसे पहले द्रोणाचार्य का नाम आदर देने के लिए लेता है, फिर भीष्म का जो अजेय हैं। वह कर्ण का नाम लेता है जो उसका सबसे बड़ा विश्वास है। दुर्योधन को अपनी सेना की ताकत पर पूरा भरोसा है, क्योंकि सांसारिक दृष्टि से कौरवों की सेना पाण्डवों से बहुत बड़ी और अनुभवी थी।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बाहरी साधनों और बड़े-बड़े दिग्गजों के होने से भौतिक बल तो मिल सकता है, लेकिन आत्मिक बल नहीं।

**श्लोक संख्या: 1.09**

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।

नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ०९ ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

और भी मेरे लिए जीवन की आशा को त्याग देने वाले बहुत से शूरवीर हैं, जो अनेक प्रकार के शस्त्रों से प्रहार करने वाले और सब के सब युद्ध कला में अत्यंत चतुर हैं।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ दुर्योधन अहंकार और मोह के वश में होकर कहता है कि ये सब 'मदर्थे' (मेरे लिए) अपनी जान हथेली पर रखकर आए हैं। वह भूल जाता है कि भीष्म या द्रोणाचार्य उसके लिए नहीं, बल्कि हस्तिनापुर के सिंहासन के प्रति अपनी प्रतिज्ञा और कर्तव्य के कारण बंधे हुए हैं। जब व्यक्ति अहंकार में होता है, तो वह हर परिस्थिति और व्यक्ति को अपने स्वार्थ के चश्मे से देखने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकारी मनुष्य दूसरों के समर्पण को भी अपने प्रभाव की सफलता मान लेता है।

**श्लोक संख्या: 1.10**

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ।

पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

भीष्म पितामह द्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय (अपार) है और भीम द्वारा रक्षित इन लोगों की यह सेना जीतने में सुगम (सीमित) है।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन तुलना करता है। वह कहता है कि हमारी सेना भीष्म जैसे महानायक के हाथ में है, इसलिए वह असीमित और अजेय है, जबकि उनकी सेना भीम के संरक्षण में है जो सीमित है। लेकिन भीतर की घबराहट के कारण उसे अपनी बड़ी सेना भी 'अपर्याप्त' (असुरक्षित) लग रही है और पाण्डवों की छोटी सेना भी 'पर्याप्त' (मजबूत) दिख रही है। अधर्म चाहे जितना बड़ा आवरण ओढ़ ले, वह धर्म की छोटी सी चिंगारी के सामने भी खुद को कमज़ोर ही पाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संख्या बल कितना ही बड़ा क्यों न हो, अगर भीतर आत्मिक शुद्धि और सत्य नहीं है, तो शंका हमेशा बनी रहती है।

**श्लोक संख्या: 1.11**

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।

भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ 11 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इसलिए आप सब लोग सब मोर्चों पर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए, सब के सब निश्चित रूप से पितामह भीष्म की ही सब ओर से रक्षा करें।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन अपनी सेना के सभी सेनापतियों को आदेश देता है कि वे अपने-अपने मोर्चों पर डटे रहें और भीष्म पितामह को सुरक्षा चक्र प्रदान करें। वह जानता है कि जब तक भीष्म जीवित हैं, कौरवों की विजय निश्चित है। यह श्लोक प्रबंधन (Management) का एक बड़ा सूत्र देता है कि किसी भी बड़े संगठन या कार्य में जो आपका सबसे मजबूत स्तंभ (Core Strength) है, उसकी रक्षा और सम्मान करना सबसे पहला कर्तव्य होना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... किसी सामूहिक प्रयास की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि सभी सदस्य अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए अपने मुख्य नेतृत्व को मजबूत रखें।

**श्लोक संख्या: 1.12**

तस्य सञ्जनयन्हर्षं कु रुवृद्धः पितामहः ।

सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ 12 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

कौरवों में वृद्ध, अत्यंत प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वर से सिंह की दहाड़ के समान गरजकर शंख बजाया।

**सरल व्याख्या:**

दुर्योधन की व्याकुलता और चिंता को देखकर सेनापति भीष्म का वात्सल्य जाग उठता है। वे उसके भीतर उत्साह भरने के लिए शेर की तरह गरजते हुए अपना शंख बजाते हैं। यह शंखनाद युद्ध की आधिकारिक घोषणा है। एक कुशल और अनुभवी बुजुर्ग का यह दायित्व है कि वह युवाओं के डगमगाते हौसले को देखकर उसमें प्राण फूँक दे, भले ही परिस्थितियाँ कितनी भी कठिन क्यों न हों।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संकट के समय वरिष्ठ जनों का एक छोटा सा सकारात्मक कदम भी अपनों के भीतर बड़े साहस का संचार कर देता है।

**श्लोक संख्या: 1.13**

ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।  
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ 13 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इसके बाद शंख, नगाड़े, ढोल, मृदंग और नरसिंगे आदि बाजे एक साथ ही बज उठे; उनका वह शब्द बड़ा भयानक (तुमुल) हुआ।

**सरल व्याख्या:**

भीष्म पितामह का शंख बजते ही पूरी कौरव सेना में जोश की लहर दौड़ जाती है। सारे वाद्य यंत्र और शंख एक साथ गूंज उठते हैं। यह बाहरी शोर उस आंतरिक डर को दबाने की कोशिश है जो अधर्म के पक्ष में खड़े होने के कारण स्वाभाविक रूप से मन में होता है। जब मनुष्य भीतर से अशांत होता है, तो वह अक्सर अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए बाहर बहुत बड़ा कोलाहल पैदा करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सामूहिक जोश का प्रदर्शन ऊपरी तौर पर माहौल को शक्तिशाली बना सकता है, लेकिन यह आंतरिक शक्ति का विकल्प नहीं हो सकता।

**श्लोक संख्या: 1.14**

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।  
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ 14 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इसके बाद सफेद घोड़ों से युक्त एक विशाल और दिव्य रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण (माधव) और अर्जुन (पाण्डव) ने भी अपने-अपने दिव्य शंख बजाए।

**सरल व्याख्या:**

कौरवों के कोलाहल के जवाब में अब पाण्डवों की तरफ से हुंकार होती है। यहाँ सफेद घोड़ों से युक्त 'दिव्य रथ' सत्य और पवित्रता का प्रतीक है। जब जीवन के युद्ध में आपके रथ की कमान स्वयं परमात्मा (माधव) के हाथ में हो, तो आपका आत्मविश्वास एक अलग ही स्तर पर होता है। यह शंखनाद घोषणा है कि अब न्याय और सत्य का पक्ष अपनी पूरी दिव्यता के साथ मैदान में उतर चुका है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जहाँ पवित्रता, सत्य और सात्विक ऊर्जा होती है, वहाँ की प्रस्तुति में एक सहज दिव्यता और निर्भयता होती है।

**श्लोक संख्या: 1.15**

पाञ्चजन्यं हृषीके शो देवदत्तं धनञ्जयः ।

पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ 15 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

श्रीकृष्ण ने 'पाञ्चजन्य' नामक शंख बजाया, अर्जुन ने 'देवदत्त' नाम का शंख और भयानक कर्म करने वाले भीमसेन ने 'पौण्ड्र' नामक महाशंख बजाया।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ पाण्डव पक्ष के मुख्य नायकों के व्यक्तिगत शंखों के नाम दिए गए हैं। श्रीकृष्ण का शंख 'पाञ्चजन्य' इन्द्रियों और अंतःकरण को जाग्रत करने वाला है। अर्जुन का 'देवदत्त' दैवीय शक्तियों का आह्वान है, और भीम का 'पौण्ड्र' शत्रुओं के मन में भय पैदा करने वाला है। हर व्यक्ति के भीतर अपनी एक अनूठी क्षमता (शंख) होती है; जब समय आए, तो अपनी उस पूरी आंतरिक क्षमता को पूरी शक्ति से प्रकट कर देना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य के मार्ग पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक विशिष्ट पहचान और जिम्मेदारी होती है, जिसे उसे पूरी निष्ठा से निभाना होता है।

**श्लोक संख्या: 1.16**

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ 16 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने 'अनन्तविजय' नामक शंख बजाया तथा नकुल और सहदेव ने 'सुघोष' और 'मणिपुष्पक' नाम के शंख बजाए।

**सरल व्याख्या:**

धर्मराज युधिष्ठिर का शंख 'अनन्तविजय' यह संकेत देता है कि धर्म की विजय अनंत काल तक रहने वाली है। नकुल और सहदेव भी अपने-अपने शंखों से वातावरण को गुंजायमान करते हैं। जब कोई बड़ा और नेक कार्य करना हो, तो परिवार या संगठन के हर छोटे-बड़े सदस्य का सुर में सुर मिलाना और अपनी आहुति देना अनिवार्य होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक सफल संगठन वही है जहाँ नेतृत्व से लेकर अंतिम व्यक्ति तक सभी का संकल्प एक ही दिशा में केंद्रित हो।

**श्लोक संख्या: 1.17 - 1.18**

काश्यश्च परमेश्वासः शिखण्डी च महारथः |  
 धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः || 17 ||  
 द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते |  
 सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक् || 18 ||

**हिन्दी अनुवादः**

हे पृथ्वीपति! श्रेष्ठ धनुष वाले काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और बड़ी भुजाओं वाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु—इन सब ने सब ओर से अलग-अलग अपने-अपने शंख बजाए।

**सरल व्याख्या:**

संजय धृतराष्ट्र को बता रहे हैं कि पाण्डव सेना के कोने-कोने से शंखों की आवाज़ आ रही है। बूढ़े काशिराज से लेकर बालक अभिमन्यु तक, सब में एक ही उत्साह है। यह इस बात का प्रतीक है कि जब समाज में अन्याय के विरुद्ध कोई क्रांति उठती है, तो उसमें उम्र या पद का भेद मिट जाता है; हर कोई अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ उठ खड़ा होता है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... जब कोई उद्देश्य व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर समष्टि (सबके हित) के लिए होता है, तो वह सबको एक सूत्र में पिरो देता है।

**श्लोक संख्या: 1.19**

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।  
 नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादियन् ॥ 19 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

और उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को भी गुँजाते हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों (कौरवों) के हृदयों को विदीर्ण कर दिया (चीर डाला)।

**सरल व्याख्या:**

यह श्लोक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बहुत गहरा है। कौरवों ने भी शंख बजाए थे, पर पाण्डवों के शंखनाद ने कौरवों के 'हृदयों को विदीर्ण' कर दिया। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि कौरवों के भीतर अपराध बोध था। वे जानते थे कि वे गलत रास्ते पर हैं। जब कोई व्यक्ति गलत काम करता है, तो बाहर से वह कितना ही मजबूत दिखे, सत्य की एक छोटी सी हुंकार भी उसके भीतर के डर को जगा देती है और उसका हौसला तोड़ देती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अधर्म का सबसे बड़ा कमज़ोर बिंदु उसका अपना आंतरिक डर और आत्मग्लानि होती है, जो उसे भीतर ही भीतर खोखला कर देती है।

**श्लोक संख्या: 1.20**

अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।  
 प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः  
 हृषीके शं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥ 20 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

हे राजन् (धृतराष्ट्र)! इसके बाद शस्त्र चलने की तैयारी होने के समय, (रथ पर लगे) कपिध्वज (हनुमान जी के चिह्न वाली ध्वजा) से युक्त पाण्डुपुत्र अर्जुन ने व्यवस्थित खड़े हुए धृतराष्ट्र के पुत्रों को देखा और अपना धनुष उठाकर, इन्द्रियों के स्वामी हृषीके श श्रीकृष्ण से यह वचन कहा।

**सरल व्याख्या:**

युद्ध का वह चरम क्षण आ गया है जहाँ बाण चलने ही वाले हैं। ऐसे समय में अर्जुन अपने शत्रुओं को देखता है और कर्म में प्रवृत्त होने के लिए अपना धनुष 'गांडीव' उठाता है। अर्जुन के रथ पर स्वयं हनुमान जी (कपिध्वज) विराजमान हैं, जो परम एकाग्रता और विजय के प्रतीक हैं। अर्जुन इस मोड़ पर युद्ध शुरू करने से पहले अंतर्यामी भगवान श्रीकृष्ण (हृषीके श) से बात करने के लिए उद्यत होता है। यह दिखाता है कि एक सच्चा कर्मवीर संकट के ठीक सामने खड़े होकर घबराता नहीं, बल्कि पूरे आत्मबल के साथ अपने मार्गदर्शक से संवाद स्थापित करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... किसी भी बड़े संघर्ष या निर्णय को शुरू करने के ठीक पहले, मनुष्य को अपने भीतर की सात्विक शक्तियों (हनुमान जी रूपी एकाग्रता) को जाग्रत करना चाहिए और अपने विवेक (श्रीकृष्ण) की शरण लेनी चाहिए।



**श्लोक संख्या: 1.21 - 1.22**

अर्जुन उवाच ।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥ 21 ॥

कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्नणसमुद्यमे ॥ 22 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

अर्जुन बोले—हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिए, जब तक कि मैं युद्ध की इच्छा से खड़े हुए इन विपक्षियों को अच्छी तरह देख न लूं कि इस युद्ध के उद्योग में मुझे किन-किन के साथ लड़ना योग्य है।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन पूरे पराक्रम और उत्साह से भरा है। वह श्रीकृष्ण को 'अच्युत' (जो कभी अपने स्वरूप से न डिगे) कहकर पुकारता है। वह किसी डर से नहीं, बल्कि एक विजेता के आत्मविश्वास से दोनों सेनाओं के बीच खड़े होकर शत्रुओं का आकलन करना चाहता है। जीवन के किसी भी बड़े संघर्ष में उतरने से पहले, अपने विरोधियों और परिस्थितियों का निष्पक्ष होकर अवलोकन करना आवश्यक होता है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... कर्मक्षेत्र में पूरी ताकत से उतरने से पहले परिस्थितियों का सही और तटस्थ आकलन करना एक कुशल रणनीतिकार का पहला कदम है।

**श्लोक संख्या: 1.23**

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ 23 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में हित चाहने वाले जो-जो ये राजा लोग यहाँ एकत्र हुए हैं, युद्ध करने आए हुए उन सबको मैं देख लूं।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन यहाँ दुर्योधन को 'दुर्बुद्धि' कहता है। उसे पूरा विश्वास है कि न्याय उसके पक्ष में है और जो लोग दुर्योधन की तरफ से लड़ रहे हैं, वे केवल एक पापी का साथ देने आए हैं। जब मनुष्य सत्य के मार्ग पर होता है, तो उसके भीतर एक नैतिक बल होता है जो अधर्म को तुच्छ समझता है। अर्जुन इसी ऊँचे आत्मबल के साथ मैदान को देख रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य और न्याय के पक्ष में खड़े व्यक्ति का हौसला अधर्मियों की बड़ी संख्या को देखकर भी डगमगाता नहीं है।

**श्लोक संख्या: 1.24**

सञ्जय उवाच |  
 एवमुक्तो हृषीके शो गुडाके शेन भारत |  
 सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् || 24 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

संजय बोले—हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! अर्जुन (गुडाके श) द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर हृषीके श श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में उस उत्तम रथ को खड़ा कर दिया।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ अर्जुन को 'गुडाके श' कहा गया है, जिसका अर्थ है जिसने नींद (और अज्ञान) को जीत लिया हो। भगवान् कृष्ण अर्जुन की इच्छा का मान रखते हुए रथ को ठीक बीच में लाकर खड़ा कर देते हैं। ईश्वर हमेशा अपने भक्त और सच्चे कर्मवीर की पुकार सुनते हैं और उसे सही मार्ग दिखाने के लिए स्वयं उसके सारथी बन जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब हम निश्छल भाव से कर्म में प्रवृत्त होते हैं, तो ईश्वरीय सत्ता स्वयं हमारी मार्गदर्शक बनकर हमें परिस्थितियों के केंद्र में ले आती है।

**श्लोक संख्या: 1.25**

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् |  
 उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कु रूनिति || 25 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा संपूर्ण राजाओं के सामने (रथ को खड़ा करके) श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ! इन एकत्र हुए कु रूवंशियों को देख।

**सरल व्याख्या:**

श्रीकृष्ण जानबूझकर रथ को भीष्म पितामह और गुरु द्रोणाचार्य के ठीक सामने खड़ा करते हैं और अर्जुन से कहते हैं, "इन कु रूवंशियों को देख।" भगवान् यहाँ अर्जुन की उस सूक्ष्म परीक्षा की शुरुआत कर रहे हैं, जहाँ उसे अपने ही सगे-संबंधियों के मोह का सामना करना है। एक सच्चा गुरु कभी संकट को छु पाता नहीं, बल्कि उसे शिष्य के ठीक सामने लाकर खड़ा कर देता है ताकि शिष्य का आंतरिक रूपांतरण हो सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन में परीक्षा की घड़ियाँ अक्सर हमारे सबसे प्रिय और आदरणीय संबंधों के सामने ही आकर खड़ी होती हैं।

**श्लोक संख्या: 1.26**

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।  
 आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।  
 श्वशुरान्मुहदश्चैव सेनयोरुभयो रपि || 26 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

इसके बाद पार्थ (अर्जुन) ने उन दोनों ही सेनाओं में स्थित ताऊ-चाचाओं को, दादाओं को, आचार्यों को, मामाओं को, भाइयों को, पुत्रों को, पौत्रों को तथा मित्रों को, ससुरों को और सुहृदों को भी देखा।

**सरल व्याख्या:**

जैसे ही अर्जुन की दृष्टि सामने पड़ती है, उसका पूरा दृष्टिकोण बदल जाता है। जहाँ वह पहले केवल 'शत्रु' और 'दुर्बुद्धि राजाओं' को देखने आया था, वहाँ अब उसे अपने ही परिवार के लोग—गुरु, दादा, भाई और मित्र दिखाई देने लगते हैं। यह संसार का वह दृश्य है जहाँ कर्तापन और ममता जागृत होती है। जब हम जीवन की समस्याओं को केवल अपने व्यक्तिगत रिश्तों के चश्मे से देखने लगते हैं, तो हमारा विवेक धुंधला होने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब तक दृष्टि में 'पराया' था तब तक शौर्य था, लेकिन जैसे ही 'अपनापन' हावी हुआ, वैसे ही मन का संतुलन बिगड़ने लगा।

**श्लोक संख्या: 1.27**

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।  
 कृ पया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् || 27 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

उन खड़े हुए संपूर्ण बंधुओं को देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यंत कायरतापूर्ण करुणा से युक्त होकर, शोक करते हुए यह वचन बोले।

**सरल व्याख्या:**

अपने ही बांधवों को युद्ध के मुहाने पर देखकर अर्जुन के भीतर एक झूठी करुणा (मोह) जाग उठती है। वह गहरे अवसाद (विषाद) में डूब जाता है। यह करुणा सात्विक नहीं है, बल्कि आसक्ति से पैदा हुई कमजोरी है। जब कर्तव्य कठोर होता है और सामने हमारे अपने हित आड़े आते हैं, तो मन अक्सर ऐसी ही कमजोर भावुकता की आड़ लेकर भागना चाहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आसक्ति से उत्पन्न हुई भावुकता मनुष्य को उसके मुख्य कर्तव्य पथ से भटका देती है।

**श्लोक संख्या: 1.28**

अर्जुन उवाच ।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ।

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥ 28 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! युद्ध की इच्छा से खड़े हुए इन अपने ही बांधवों (स्वजन) को देखकर मेरे अंग शिथिल हुए जा रहे हैं और मेरा मुख सूखा जा रहा है।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ अर्जुन का शारीरिक और मानसिक संकट प्रकट होता है। 'स्वजन' शब्द ही उसके बंधन का कारण है। जो अर्जुन काल का सामना करने के लिए तैयार था, उसका शरीर अब साथ नहीं दे रहा है, हाथ-पैर ढीले पड़ रहे हैं और गला सूख रहा है। यह इस बात का सीधा प्रमाण है कि जब मन मानसिक द्वंद्व और गहरे तनाव से घिर जाता है, तो उसका सीधा असर हमारे शरीर की क्षमता पर भी पड़ता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मोह और आंतरिक असमंजस बड़े से बड़े बलवान व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक शक्ति को भी क्षण भर में क्षीण कर देता है।

**श्लोक संख्या: 1.29**

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।

गाण्डीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥ 29 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

मेरे शरीर में कम्प और रोमांच हो रहा है तथा हाथ से गांडीव धनुष गिर रहा है और त्वचा में भी बहुत जलन हो रही है।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन की व्याकुलता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी है। जिस 'गांडीव' धनुष की टंकार से त्रिलोक कांपता था, वह आज उसके हाथ से छूटकर गिर रहा है। उसके पूरे शरीर में कम्पन है और भीतर एक आग सी लगी है। जब मनुष्य अपने सिद्धांतों और अपने व्यक्तिगत मोह के बीच बुरी तरह फंसा जाता है, तो उसकी कर्म करने की मुख्य शक्ति (धनुष) उसका साथ छोड़ देती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... वैचारिक स्पष्टता के बिना मनुष्य के कर्म करने के साधन और उसकी योग्यता भी व्यर्थ हो जाती है।

**श्लोक संख्या: 1.30**

न च शक्नोम्यवस्थानं भ्रमतीव च मे मनः |  
निमित्तानि च पश्यामी विपरीतनि के शव || 30 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

और हे के शव! मैं खड़े रहने में भी समर्थ नहीं हूँ और मेरा मन भ्रमित सा हो रहा है तथा मैं लक्षणों (शकु नों) को भी विपरीत ही देख रहा हूँ।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन पूरी तरह से हिम्मत हार चुका है। उसका मन चारों तरफ से भ्रम की आंधी से घिर गया है। अब वह अपनी कमज़ोरी को सही ठहराने के लिए बाहरी लक्षणों और अपशकु नों का बहाना बनाने लगता है। वह कृ ण को 'के शव' कहकर पुकारता है। जब मनुष्य भीतर से टूट जाता है, तो वह अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने की बजाय परिस्थितियों और किस्मत को दोष देने की कोशिश करने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन का भ्रम जब बुद्धि पर हावी हो जाता है, तो व्यक्ति को हर परिस्थिति अपने विरुद्ध और विनाशकारी ही दिखाई देने लगती है।

**श्लोक संख्या: 1.31**

न च श्रेयोऽनुपश्यामी हत्वा स्वजनमाहवे |  
न काङ्क्षे विजयं कृ ण न च राज्यं सुखानि च || 31 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे कृ ण! युद्ध में अपने ही बान्धवों (स्वजन) को मारकर मैं कोई कल्याण नहीं देखता। मैं न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य और न ही सुखों की कामना करता हूँ।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन का मानसिक द्वंद्व अब वैराग्य जैसी बातों के पीछे छिपने की कोशिश कर रहा है। वह कहता है कि जिन अपनों को मारकर राज्य मिलना है, वैसा राज्य और सुख मुझे नहीं चाहिए। जब मनुष्य कर्तव्य की कठिन चुनौती से घबराता है, तो वह अक्सर त्याग और वैराग्य के बड़े-बड़े तर्क देने लगता है, जबकि वास्तव में वह उसका आंतरिक डर होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य से भागने के लिए मन अक्सर झूठे त्याग और वैराग्य के तर्कों का सहारा लेता है।

**श्लोक संख्या: 1.32 - 1.34**

किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा |  
 येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च || 32 ||  
 त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च |  
 आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः || 33 ||  
 मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा || 34 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे गोविन्द! हमें ऐसे राज्य से क्या लाभ, अथवा भोगों और जीवन से भी क्या प्रयोजन है? क्योंकि जिनके लिए हम राज्य, भोग और सुखादि की इच्छा करते हैं, वे ही सब आचार्य, ताऊ-चाचा, कु रवंशी लड़के, दादा, मामा, ससुर, पोते, साले तथा अन्य सम्बन्धी लोग अपने प्राणों और धन की आशा को छोड़कर युद्ध में खड़े हैं।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन श्रीकृष्ण को 'गोविन्द' (इन्द्रियों को आनंद देने वाले) कहकर अपनी व्यथा सुनाता है। वह कहता है कि धन, संपदा और सुख का आनंद तो अपनों के साथ ही आता है। जब वे ही सामने मरने के लिए खड़े हैं, तो इस जीत का क्या मोल? अर्जुन की यह सोच सांसारिक दृष्टि से भावुक लग सकती है, लेकिन कर्मक्षेत्र में यह उसकी आसक्ति (Attachment) को दर्शाती है जो उसे सत्य के लिए लड़ने से रोक रही है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... अत्यधिक पारिवारिक और सांसारिक आसक्ति मनुष्य की बुद्धि को धुंधला कर देती है, जिससे वह सही और गलत का अंतर भूल जाता है।

**श्लोक संख्या: 1.35**

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।  
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृ ते || 35 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे मधुसूदन! मुझे मारने पर भी अथवा तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इन सबको मारना नहीं चाहता, फिर इस पृथ्वी के राज्य के लिए तो कहना ही क्या है?

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन श्रीकृष्ण को 'मधुसूदन' (मधु नामक राक्षस का वध करने वाले) कहकर याद दिलाता है कि आप तो दुष्टों को मारते हैं, पर यहाँ तो मेरे अपने हैं। वह कहता है कि अगर ये मुझे मार भी दें, तो भी मैं इन पर हाथ नहीं उठाऊँगा। यहाँ अर्जुन का अहंकार 'मैं नहीं मारूँगा' के रूप में प्रकट हो रहा है। वह भूल रहा है कि यह युद्ध व्यक्तिगत बदला नहीं, बल्कि समाज में न्याय की स्थापना के लिए अनिवार्य हो चुका है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब मनुष्य किसी बड़ी जिम्मेदारी को व्यक्तिगत अहंकार या संबंधों के चश्मे से देखता है, तो वह समष्टि (पूरे समाज) के हित को अनदेखा कर देता है।

**श्लोक संख्या: 1.36**

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।  
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः || 36 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे जनार्दन! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी? इन आततायियों (अत्याचारियों) को मारकर तो हमें पाप ही लगेगा।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन कूटनीतिक और नैतिक तर्क देता है। नीति शास्त्र के अनुसार आततायी (जैसे ज़हर देने वाला, घर जलाने वाला, जमीन छीनने वाला) वध के योग्य होता है और कौरवों ने ये सारे पाप किए थे। लेकिन अर्जुन मोह में आकर कहता है कि इन्हें मारने से हमें केवल पाप और ग्लानि ही मिलेगी। जब मन किसी काम को नहीं करना चाहता, तो वह शास्त्रों की बातों को भी अपनी सहूलियत के हिसाब से तोड़-मरोड़ कर पेश करने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आंतरिक कमज़ोरी के वश में होकर बुद्धि अक्सर अधर्म और अत्याचार के सामने घुटने टेकने को ही धर्म मान बैठती है।

**श्लोक संख्या: 1.37**

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् |  
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव || 37 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

अतः हे माधव! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिए हम योग्य नहीं हैं। क्योंकि अपने ही स्वजनों को मारकर हम कै से सुखी हो सकते हैं?

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन बार-बार 'स्वजन' (अपने लोग) शब्द पर ज़ोर दे रहा है। वह कृष्ण को 'माधव' (लक्ष्मी के पति, यानी जो सबको वैभव और सुख देते हैं) कहकर पूछता है कि क्या अपनों का खून बहाकर कभी कोई सुखी हो सकता है? अर्जुन यहाँ दूरगामी परिणामों की चिंता कर रहा है, लेकिन उसकी चिंता का मूल कारण कर्तव्य-परायणता नहीं, बल्कि अपनों को खोने का डर है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपनों के प्रति अंधा मोह मनुष्य को यह सोचने पर मजबूर कर देता है कि अन्याय को सह लेना अन्याय के खिलाफ लड़ने से बेहतर है।



**श्लोक संख्या: 1.38 - 1.39**

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः |

कु लक्षयकृ तं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् || 38 ||

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्नवर्तितुम् |

कु लक्षयकृ तं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन || 39 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

यद्यपि लोभ से भ्रष्ट चित्त वाले ये लोग कु ल के नाश से होने वाले दोष को और मित्रों से द्रोह करने में होने वाले पाप को नहीं देख रहे हैं, तो भी हे जनार्दन! कु ल के नाश से होने वाले दोष को ठीक से जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिए क्यों नहीं विचार करना चाहिए?

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन कहता है कि दुर्योधन और उसके साथी तो लोभ में अंधे हो चुके हैं, इसलिए वे कु ल के विनाश का परिणाम नहीं देख पा रहे। लेकिन हम तो समझदार हैं, हम इस विनाश के दोष को जानते हैं, तो हमें इस युद्ध से पीछे हट जाना चाहिए। यहाँ अर्जुन खुद को कौरवों से श्रेष्ठ और बुद्धिमान मान रहा है। यह मन की वह चालाकी है जो सही समय पर कड़े कदम उठाने से बचने के लिए खुद को 'अति-समझदार' और 'सभ्य' दिखाने का प्रयास करती है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... दूसरों की गलती को देखकर स्वयं को श्रेष्ठ मानना और उस आधार पर अपने अनिवार्य कर्तव्य से पैर पीछे खींचना बुद्धिमानी नहीं, बल्कि कायरता है।

**श्लोक संख्या: 1.40**

कु लक्षये प्रणश्यन्ति कु लधर्माः सनातनाः ।  
धर्मे नष्टे कु लं कृ त्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ 40 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

कु ल का नाश होने पर सनातन कु ल-परम्पराएँ (कु लधर्म) नष्ट हो जाती हैं और धर्म के नष्ट हो जाने पर संपूर्ण कु ल में अधर्म (पाप) बहुत अधिक फै ल जाता है।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ से अर्जुन समाजशास्त्र और पारिवारिक व्यवस्था के बिगड़ने का तर्क देना शुरू करता है। वह कहता है कि युद्ध में जब कु ल के मुख्य पुरुष मारे जाते हैं, तो सदियों से चली आ रही पारिवारिक परंपराएँ, संस्कार और नैतिक मूल्य (कु लधर्म) समाप्त हो जाते हैं। और जब घर या समाज से धर्म का अंकुश हट जाता है, तो पूरी व्यवस्था में अधर्म और अराजकता फै ल जाती है। अर्जुन का यह तर्क सामाजिक दृष्टि से सत्य है, लेकिन उसका उपयोग वह रणभूमि से भागने के बहाने के रूप में कर रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक मजबूत समाज की नींव परिवारों के नैतिक मूल्यों और संस्कारों पर टिकी होती है; यदि वे नष्ट हो जाएं तो अधर्म का प्रसार तेजी से होता है।

**श्लोक संख्या: 1.41**

अधर्माभिभवात्कृ णा प्रदुष्यन्ति कु लस्त्रियः ।  
स्त्रीषु दुष्टासु वाष्प्येय जायते वर्णसङ्करः ॥ 41 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

हे कृ णा! अधर्म के अधिक बढ़ जाने से कु ल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं और हे वाष्प्येय (वृष्णिवंशोत्पन्न कृ णा)! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर (अवांछित संतानें) उत्पन्न होती हैं।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन सामाजिक ताने-बाने के बिखरने की बात कर रहा है। वह कहता है कि जब समाज में अधर्म का बोलबाला होता है, तो सबसे गहरा आघात कु ल की पवित्रता और स्त्री शक्ति की सुरक्षा पर पड़ता है। जब समाज की स्त्रियाँ असुरक्षित या पथभ्रष्ट होती हैं, तो आने वाली पीढ़ी संस्कारों से विहीन हो जाती है। अर्जुन का यह तर्क समाज की नींव को लेकर है, जहाँ नैतिक मूल्यों के हास का डर उसे सता रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... किसी भी समाज और संस्कृति की रक्षा का मुख्य आधार वहाँ की स्त्रियों का सम्मान, सुरक्षा और उच्च संस्कार होते हैं।

**श्लोक संख्या: 1.42**

सङ्करो नरकायैव कु लघ्नानां कु लस्य च ।  
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ 42 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

वह वर्णसंकर कु ल का नाश करने वालों को और कु ल को नरक में ले जाने के लिए ही होता है। पितरों को पिण्ड और जल न मिलने से (श्राद्ध-तर्पण बंद हो जाने से) उनके पितर भी गिर जाते हैं।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन सनातन परंपराओं के टूटने का तर्क आगे बढ़ाता है। वह कहता है कि संस्कारों के बिना जो पीढ़ी आती है, वह अपनी मर्यादाओं को भूल जाती है। इसके कारण पूर्वजों के प्रति जो कृ तज्ञता और तर्पण (पिण्डोदक क्रिया) की परंपरा है, वह लुप्त हो जाती है। यह श्लोक हमें पूर्वजों के प्रति सम्मान और अपनी जड़ों से जुड़े रहने का महत्व समझाता है, जिसे अर्जुन युद्ध न करने का एक और कारण बना रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपनी परंपराओं और पूर्वजों के प्रति कृ तज्ञता की भावना छोड़ देने से समाज सांस्कृ तिक रूप से पतन की ओर चला जाता है।

**श्लोक संख्या: 1.43**

दोषैरैतैः कु लघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।  
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कु लधर्माश्च शाश्वताः ॥ 43 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इन वर्णसंकर पैदा करने वाले दोषों से कु ल का नाश करने वालों के सनातन कु लधर्म और जातिधर्म (सामुदायिक कर्तव्य) नष्ट होते हैं।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन कहता है कि गृहयुद्ध या अपनों के आपसी टकराव से समाज में जो विकृ ति आती है, वह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाले शाश्वत नियमों को समाप्त कर देती है। व्यक्ति अपने मूल कर्तव्यों (जातिधर्म और कु लधर्म) से भटक जाता है। जब समाज की सामूहिक चेतना ही नष्ट हो जाती है, तो नियमों का कोई मोल नहीं रह जाता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक बड़ा विनाश केवल इंसानों को नहीं मारता, बल्कि सदियों से स्थापित नैतिक और सामाजिक व्यवस्था को भी ध्वस्त कर देता है।

**श्लोक संख्या: 1.44**

उत्सन्नकु लधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन |  
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम || 44 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे जनार्दन! जिनके कु लधर्म नष्ट हो गए हैं, ऐसे मनुष्यों का निश्चित रूप से नरक में निवास होता है, ऐसा हम सुनते आए हैं।

**सरल व्याख्या:**

अर्जुन यहाँ अपने बड़ों और गुरुओं से सुनी हुई बातों का हवाला देता है। वह कहता है कि जो समाज अपनी मर्यादा और धर्म को खो देता है, उसका जीवन जीते-जी नरक जैसा कष्टकारी बन जाता है। अर्जुन का यह कथन उसकी गहरी मानसिक पीड़ा को दर्शाता है; वह युद्ध के परिणाम को लेकर इतना भयभीत है कि उसे केवल विनाश और नरक ही सूझ रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब मन में नकारात्मकता हावी होती है, तो सीखी हुई सारी बातें भी केवल भय और निराशा को ही बढ़ावा देने लगती हैं।

**श्लोक संख्या: 1.45**

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् |  
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः || 45 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हा! शोक! हम लोग बुद्धिमान होकर भी महान पाप करने को तैयार हो गए हैं, जो राज्य और सुख के लोभ से अपने बान्धवों को मारने के लिए उद्यत (तैयार) हो गए हैं।

**सरल व्याख्या:**

अब अर्जुन गहरी आत्मग्लानि (Guilt) से घिर चुका है। वह खुद को और पाण्डवों को धिक्कारते हुए कहता है कि हम तो समझदार थे, फिर भी राज्य के छोटे से सुख के लोभ में आकर इतना बड़ा पाप करने चल पड़े हैं। यहाँ अर्जुन का द्वंद्व अपने चरम पर है। वह समझदारी की आड़ में कड़े और अप्रिय निर्णयों से बचना चाह रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य पथ पर मिलने वाले कष्टों को देखकर मन अक्सर बड़े लक्ष्यों को 'लोभ' का नाम देकर खुद को पीछे खींचने का बहाना ढूँढता है।

**श्लोक संख्या: 1.46**

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः |

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् || 46 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

यदि मुझ शस्त्ररहित और सामना न करने वाले को हाथ में शस्त्र लिए हुए धृतराष्ट्र के पुत्र रणभूमि में मार भी दें, तो वह मारना भी मेरे लिए अधिक कल्याणकारी होगा।

**सरल व्याख्या:**

यह अर्जुन के मानसिक अवसाद की पराकाष्ठा है। वह पूरी तरह हथियार डालने को तैयार है। वह कहता है कि इससे तो बेहतर है कि मैं बिना हथियार उठाए खड़ा रहूँ और कौरव मुझे मार डालें। कम से कम मेरे सिर पर अपनों के खून का पाप तो नहीं लगेगा। यह उस वीर अर्जुन के मुख से निकल रहा है जिसने बड़े-बड़े युद्ध जीते थे। जब डिप्रेशन या गहरे तनाव में मनुष्य की बुद्धि काम करना बंद कर देती है, तो वह जीवन से ही हार मान बैठता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब मानसिक मनोबल टूट जाता है, तो महापराक्रमी व्यक्ति भी संघर्ष करने की बजाय खुद को पूरी तरह समर्पित (**Surrender**) कर देना बेहतर समझता है।

**श्लोक संख्या: 1.47**

सञ्जय उवाच |

एवमुक्त्वार्जुनः सङ् ख्ये रथोपस्थ उपाविशत |

विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः || 47 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

संजय बोले—रणभूमि में शोक से उद्विग्न (व्याकुल) मन वाले अर्जुन ने इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुष को त्यागकर रथ के पिछले भाग में बैठ गए।

**सरल व्याख्या:**

यह पहले अध्याय का अंतिम दृश्य है। कु रुक्षेत्र का मैदान सज चुका है, शंख बज चुके हैं, बाण चलने ही वाले हैं, और ऐसे में पाण्डवों का मुख्य योद्धा अर्जुन अपने हाथ से धनुष-बाण छोड़कर रोता हुआ रथ के पिछले हिस्से में बैठ जाता है। उसका मन शोक और भ्रम से भर चुका है। यह श्लोक यह दिखाता है कि बाहरी साधन कितने भी श्रेष्ठ क्यों न हों, जब तक भीतर मन का संतुलन और वैचारिक स्पष्टता नहीं होगी, इंसान कर्मक्षेत्र में खड़ा नहीं रह सकता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की कमजोरी व्यक्ति को सबसे महत्वपूर्ण क्षण में भी निष्क्रिय और हताश कर देती है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः || १ ||



---

अध्याय **2** सांख्ययोग

Satyaaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 2.01

सञ्जय उवाच |  
तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् |  
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः || 01 ||

### हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आंसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले, शोकयुक्त उस अर्जुन से मधुसूदन (भगवान श्रीकृष्ण) ने यह वचन कहा।

### सरल व्याख्या:

पहले अध्याय में अर्जुन का जो विषाद (अवसाद) शरीर और मन पर हावी हुआ था, वह यहाँ आंसुओं के रूप में बह रहा है। श्रीकृष्ण अर्जुन की इस दशा को देख रहे हैं। यहाँ कृष्ण को 'मधुसूदन' कहा गया है, जो यह संकेत देता है कि जैसे भगवान ने मधु राक्षस का संहार किया था, वैसे ही अब वे अर्जुन के भीतर के अज्ञान और शोक रूपी राक्षस का संहार करने वाले हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब मनुष्य अपनी समस्याओं के बोझ से टूटकर पूरी तरह व्याकुल हो जाता है, तब उसके भीतर का अहंकार शांत होता है और वह परम चेतना (ईश्वर/विवेक) के उपदेश को सुनने के योग्य बनता है।

## श्लोक संख्या: 2.02

श्रीभगवानुवाच |  
कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् |  
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन || 02 ||

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान बोले—हे अर्जुन! इस विषम समय में तुम्हें यह कायरता (मोह) किस कारण से प्राप्त हुई? क्योंकि इसका आश्रय न तो श्रेष्ठ पुरुष करते हैं, न यह स्वर्ग को देने वाला है और न कीर्ति को करने वाला ही है।

### सरल व्याख्या:

गीता में यहाँ से भगवान श्रीकृष्ण का पहला संवाद शुरू होता है। वे अर्जुन को सांत्वना देने के बजाय सीधे फटकार लगाते हैं। वे पूछते हैं कि संकट की इस घड़ी में तुम्हारे भीतर यह 'कश्मल' (मानसिक गंदगी या कायरता) कहाँ से आ गई? कृष्ण कहते हैं कि यह व्यवहार किसी श्रेष्ठ व्यक्ति (अनार्य) के योग्य नहीं है, न ही इससे इस लोक में कीर्ति मिलेगी और न परलोक में गति।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक सच्चा मार्गदर्शक या गुरु संकट के समय झूठी सहानुभूति देकर मनुष्य की कमज़ोरी को बढ़ावा नहीं देता, बल्कि उसे झकझोर कर उसके वास्तविक स्वरूप की याद दिलाता है।



### श्लोक संख्या: 2.03

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते |

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप || 03 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! नपुंसकता (कायरता) को मत प्राप्त हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है। हे परन्तप (शत्रुओं को तपाने वाले)! हृदय की इस तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिए खड़े हो जाओ।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन को 'पार्थ' (पृथापुत्र) और 'परन्तप' (शत्रुओं को परास्त करने वाला) कहकर उसकी वास्तविक क्षमता को जगाते हैं। वे कहते हैं कि यह नपुंसकता या कायरता तुम्हारे स्वभाव के बिल्कुल विपरीत है। यह जो डर तुम्हें महसूस हो रहा है, यह कोई महान त्याग नहीं बल्कि 'हृदय की तुच्छ दुर्बलता' है। इसे तुरंत छोड़ो और खड़े हो जाओ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की कमजोरी को महानता का मुखौटा नहीं पहनाना चाहिए; जब कर्तव्य सामने हो, तो हर प्रकार के मानसिक भय को झटक कर कर्म में जुट जाना ही एकमात्र मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 2.04

अर्जुन उवाच |

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन |

इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन || 04 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे मधुसूदन! मैं रणभूमि में किस प्रकार बाणों से भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूंगा? क्योंकि हे अरिसूदन (शत्रुओं का नाश करने वाले)! वे दोनों ही परम पूजनीय हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान की डांट सुनकर अर्जुन अपनी कमजोरी को सही ठहराने के लिए नैतिक तर्क देता है। वह कहता है कि सामने कोई साधारण शत्रु नहीं हैं, बल्कि भीष्म पितामह (जिन्होंने पाला) और द्रोणाचार्य (जिन्होंने विद्या दी) खड़े हैं। जो पूजनीय हैं, जिनके पैर छुए जाने चाहिए, उन पर मैं बाण कैसे चला सकता हूँ? अर्जुन का यह तर्क दिखाता है कि वह अभी भी सांसारिक रिश्तों और सामाजिक मर्यादाओं के द्वंद्व में फंसा हुआ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब व्यक्तिगत भावनाएं और आदरणीय संबंध कर्तव्य के आड़े आ जाते हैं, तो मनुष्य का विवेक यह तय नहीं कर पाता कि बड़ा धर्म क्या है।

## श्लोक संख्या: 2.05

गुरूनहत्वा हि महानुभावान्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके |  
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्नुधिरप्रदिग्धान् || 05 ||

### हिन्दी अनुवाद:

महानुभाव गुरुजनों को न मारकर इस संसार में भीख मांगकर खाना भी कल्याणकारी है; क्योंकि गुरुजनों को मारकर भी इस संसार में रुधिर (खून) से सने हुए अर्थ और काम रूप भोगों को ही तो भोगूंगा।

### सरल व्याख्या:

अर्जुन अवसाद में इतना आगे बढ़ जाता है कि वह कहता है कि क्षत्रिय धर्म छोड़कर भीख मांगना बेहतर है, लेकिन मैं अपने गुरुओं की हत्या नहीं करूँगा। वह तर्क देता है कि अगर हम युद्ध जीत भी गए, तो वह ऐश्वर्य और सुख अपनों के खून से सना हुआ होगा। ऐसे सुख से क्या आनंद मिलेगा? अर्जुन यहाँ केवल तात्कालिक शारीरिक विनाश को देख रहा है, उस वृहत्तर सामाजिक न्याय को नहीं जिसके लिए यह युद्ध हो रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब बुद्धि मोहग्रस्त होती है, तो व्यक्ति अपने गौरवमयी इतिहास और उत्तरदायित्व को भूलकर पलायन (भागने) को ही सर्वोत्तम उपाय मानने लगता है।

## श्लोक संख्या: 2.06

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः |  
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थितः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः || 06 ||

### हिन्दी अनुवाद:

और हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिए क्या श्रेष्ठ है—युद्ध करना या न करना; अथवा हम जीतेंगे या वे हमें जीतेंगे। जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने खड़े हैं।

### सरल व्याख्या:

यहाँ अर्जुन अपनी मानसिक उलझन (Confusion) को पूरी तरह स्वीकार करता है। वह कहता है कि मैं असमंजस में हूँ कि लड़ना बेहतर है या पीछे हटना। जीत हमारी होगी या उनकी, यह भी अनिश्चित है। और सबसे बड़ी विडंबना यह है कि जिनके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, वे ही सामने शत्रु बनकर खड़े हैं। यह मन की वह स्थिति है जहाँ निर्णय लेने की क्षमता पूरी तरह शून्य हो जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अत्यधिक असमंजस की स्थिति में मनुष्य लाभ-हानि और जय-पराजय के गणित में ऐसा उलझता है कि वह कर्म करने की दिशा ही खो बैठता है।

## श्लोक संख्या: 2.07

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ 07 ॥

### हिन्दी अनुवादः

कायरता रूप दोष से नष्ट हुए स्वभाव वाला और धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित रूप से कल्याणकारी हो, वह मेरे लिए कहिए। मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिए।

### सरल व्याख्या:

यहां अर्जुन अपनी हार स्वीकार करता है। वह मानता है कि उसका स्वभाव कायरता से ग्रस्त हो गया है और वह धर्म-अधर्म का निर्णय करने में असमर्थ है। यहाँ अर्जुन अपना सखा भाव (मित्रता) छोड़कर श्रीकृष्ण के सामने पूरी तरह समर्पित हो जाता है और कहता है—“मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, मुझे सही रास्ता दिखाइए।”

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब तक मनुष्य अपने ज्ञान और अहंकार में रहता है, तब तक उसे सत्य नहीं मिलता। जैसे ही वह अपनी अज्ञानता स्वीकार कर सच्चे गुरु की शरण में जाता है, समाधान का मार्ग खुल जाता है।

## श्लोक संख्या: 2.08

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् ।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ 08 ॥

### हिन्दी अनुवादः

क्योंकि भूमि पर निष्कंटक, धन-धान्य संपन्न राज्य को और देवताओं के आधिपत्य (इन्द्र पद) को प्राप्त करके भी, मैं उस उपाय को नहीं देखता जो मेरी इन्द्रियों को सुखाने वाले इस शोक को दूर कर सके।

### सरल व्याख्या:

अर्जुन स्पष्ट करता है कि उसका यह दुःख कोई साधारण सांसारिक दुःख नहीं है। वह कहता है कि अगर मुझे पूरी पृथ्वी का अखंड राज्य मिल जाए या देवताओं का राजा भी बना दिया जाए, तो भी मेरे भीतर जो इन्द्रियों को सुखाने वाली आग (शोक) लगी है, वह शांत नहीं होगी। बाहरी संपदा कभी आंतरिक खालीपन या मानसिक व्याकुलता को ठीक नहीं कर सकती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक संताप और वैचारिक भ्रम का समाधान बाहरी सुख-सुविधाओं या ऊंचे पदों में नहीं, बल्कि केवल आंतरिक ज्ञान और सही दृष्टिकोण से ही संभव है।

## श्लोक संख्या: 2.09

सञ्जय उवाच |

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप |

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह || 09 ||

### हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—हे राजन्! शत्रुओं को तपाने वाले अर्जुन (गुडाकेश) ने इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहकर, फिर गोविन्द से "मैं युद्ध नहीं करूँगा" यह स्पष्ट कह दिया और चुप हो गए।

### सरल व्याख्या:

संजय धृतराष्ट्र को युद्धभूमि का आँखों देखा हाल बता रहे हैं। अर्जुन ने अपनी सारी बात श्रीकृष्ण के सामने रख दी, अपना समर्पण भी कर दिया, लेकिन अंत में अपनी पुरानी हठ या कमज़ोरी के वश में होकर कह दिया—"न योत्स्य" (मैं युद्ध नहीं करूँगा) और मौन धारण कर लिया। यह दिखाता है कि शरण में जाने के बाद भी मनुष्य का पुराना ढर्रा या उसका अवसाद उसे तुरंत छोड़ने नहीं देता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समर्पण की शुरुआत में भी मनुष्य अपने पुराने विचारों के प्रभाव में रहता है, जहाँ वह सही मार्गदर्शन तो चाहता है पर कर्म करने से कतराता है।

## श्लोक संख्या: 2.10

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत |

सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः || 10 ||

### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! दोनों सेनाओं के बीच में शोक करते हुए उस अर्जुन से हृषीकेश श्रीकृष्ण ने मानो हंसते हुए यह वचन कहा।

### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान कृष्ण की प्रतिक्रिया अद्भुत है। जहाँ अर्जुन रो रहा है, हताश है, वहीं श्रीकृष्ण 'प्रहसन्निव' यानी मुस्कुरा रहे हैं। वे दोनों सेनाओं के बीच खड़े होकर मुस्कुराते हैं। यह मुस्कान करुणा की है, आत्मविश्वास की है और उस सत्य की है जो वे अब अर्जुन को देने जा रहे हैं। एक डॉक्टर जैसे मरीज़ की बीमारी देखकर घबराता नहीं बल्कि इलाज के प्रति आश्वस्त होकर मुस्कुराता है, ठीक वैसे ही कृष्ण मुस्कुरा रहे हैं क्योंकि वे जानते हैं कि अर्जुन का यह भ्रम क्षणिक है और ज्ञान के प्रकाश से दूर हो जाएगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब संसार के थपेड़ों से हारा हुआ व्यक्ति पूर्ण समर्पण करता है, तो ईश्वरीय चेतना मुस्कुराकर उसके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। यहीं से वास्तविक 'गीता-ज्ञान' की गंगा बहना शुरू होती है।

## श्लोक संख्या: 2.11

श्रीभगवानुवाच |  
अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे |  
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः || 11 ||

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—तुम उन लोगों के लिए शोक करते हो जो शोक करने योग्य नहीं हैं और ज्ञानियों जैसी बातें करते हो। जिनके प्राण चले गए हैं उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गए हैं उनके लिए भी बुद्धिमान (पण्डित) लोग शोक नहीं करते।

### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ से गीता का मुख्य दर्शन शुरू करते हैं। वे अर्जुन के विरोधाभास को पकड़ते हैं—एक तरफ अर्जुन रो रहा है और दूसरी तरफ समाजशास्त्र के बड़े-बड़े तर्क दे रहा है। कृष्ण कहते हैं कि जो ज्ञानी होते हैं, वे जानते हैं कि यह शरीर नश्वर है और आत्मा अमर है। इसलिए वे किसी के जीने या मरने पर उस गहरे मोह में नहीं डूबते जो मनुष्य के विवेक को हर ले।

यह श्लोक हमें बताता है कि... वास्तविक ज्ञान बातों में नहीं, बल्कि जीवन की अनिवार्य सच्चाइयों (जैसे मृत्यु) को बिना विचलित हुए स्वीकार करने में दिखाई देता है।

## श्लोक संख्या: 2.12

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः |  
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् || 12 ||

### हिन्दी अनुवाद:

ऐसा कभी नहीं था कि मैं नहीं था, या तुम नहीं थे, अथवा ये राजा लोग नहीं थे; और न ही ऐसा है कि इसके बाद हम सब नहीं रहेंगे।

### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन को काल (Time) की अनंतता का पाठ पढ़ा रहे हैं। वे कहते हैं कि अस्तित्व का कभी अंत नहीं होता। जन्म से पहले भी हम सब थे, आज भी हैं और इस शरीर के नष्ट होने के बाद भी हमारा अस्तित्व रहेगा। हम केवल रूपों के बदलने से डर जाते हैं, जबकि मूल तत्व हमेशा सुरक्षित रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन और चेतना का प्रवाह निरंतर है; मृत्यु केवल एक पड़ाव है, अंत नहीं।

### श्लोक संख्या: 2.13

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा |  
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यती || 13 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जैसे इस देह में जीवात्मा की कुमार (बाल्यावस्था), युवा और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही (मृत्यु के बाद) दूसरे शरीर की प्राप्ति होती है; उस विषय में धीर (बुद्धिमान) मनुष्य मोहित नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

भगवान एक बहुत ही सरल और व्यावहारिक उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि जैसे हमारा बचपन जाता है और जवानी आती है, फिर जवानी जाकर बुढ़ापा आता है, तो हम रोते नहीं हैं क्योंकि हमें पता है कि यह शरीर के विकास का नियम है। ठीक इसी प्रकार, बुढ़ापे के बाद अगला शरीर मिलना भी एक स्वाभाविक बदलाव है। जो धैर्यवान व्यक्ति इस नियम को समझता है, वह मृत्यु से नहीं घबराता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परिवर्तन संसार का शाश्वत नियम है; शरीर के बदलावों को सहजता से स्वीकार करना ही परिपक्वता है।

### श्लोक संख्या: 2.14

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः |  
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! इन्द्रियों और विषयों के संयोग (मात्रास्पर्श) तो केवल सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख को देने वाले हैं। ये आने-जाने वाले और अनित्य हैं, इसलिए हे भारत (अर्जुन)! तुम उनको सहन करो।

#### सरल व्याख्या:

हमारे जीवन में सुख और दुःख कैसे आते हैं? इन्द्रियों (आँख, कान, त्वचा आदि) का जब बाहरी दुनिया के विषयों से संपर्क होता है, तो अनुकूल होने पर सुख और प्रतिकूल होने पर दुःख महसूस होता है। जैसे सर्दी और गर्मी आती है और चली जाती है, वैसे ही सुख और दुःख भी क्षणभंगुर (Temporary) हैं। कृष्ण कहते हैं कि इनसे प्रभावित होकर अपना कर्तव्य मत छोड़ो, बल्कि इन्हें समभाव से सहना सीखो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी अनुकूल या प्रतिकूल हों, वे स्थायी नहीं रहतीं; मानसिक मजबूती के लिए धैर्यपूर्वक टिके रहना (तितिक्षा) आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 2.15

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ |  
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! सुख और दुःख को समान समझने वाले जिस धीर मनुष्य को ये इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष (अमरत्व) प्राप्त करने के योग्य होता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति सुख के आने पर बहुत अधिक उछलता नहीं और दुःख के आने पर पूरी तरह टूटता नहीं, वही वास्तव में आत्मज्ञानी और महान है। ऐसे समभाव (Balance) में रहने वाला व्यक्ति ही जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य यानी मानसिक शांति और अमरत्व को प्राप्त कर सकता है। सुख-दुःख में तटस्थ रहना ही सबसे बड़ी साधना है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक स्थिरता और समभाव ही जीवन की सभी चिंताओं से मुक्ति (मोक्ष) का एकमात्र द्वार है।

### श्लोक संख्या: 2.16

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः |  
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

असत्य (जिसका अस्तित्व परिवर्तनशील है, जैसे शरीर) का तो कोई अस्तित्व नहीं है और सत्य (जो कभी नहीं बदलता, जैसे आत्मा) का कभी अभाव नहीं होता। इन दोनों का ही तत्व, तत्वदर्शियों (ज्ञानियों) द्वारा देखा गया है।

#### सरल व्याख्या:

यह श्लोक दर्शन की दृष्टि से बहुत गहरा है। यहाँ 'सत्य' और 'असत्य' को परिभाषित किया गया है। जो सदा रहे, जो कभी न बदले, वही सत्य है। जो बदल जाए या नष्ट हो जाए, वह असत्य (या अनित्य) है। यह संसार और हमारा शरीर लगातार बदल रहा है, इसलिए यह सदा एक सा नहीं रह सकता। लेकिन इसके भीतर जो चेतना है, वह अपरिवर्तनशील है। ज्ञानी पुरुष इसी अविनाशी तत्व पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... नश्वर चीजों के नष्ट होने पर शोक करना व्यर्थ है; जो शाश्वत है, उस पर भरोसा रखना ही बुद्धिमानी है।

### श्लोक संख्या: 2.17

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।  
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तुम उस तत्व को अविनाशी (जिसका कभी नाश न हो) समझो, जिससे यह संपूर्ण जगत व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जिस परम चेतना या आत्मा ने इस पूरे ब्रह्मांड को अपने भीतर समाया हुआ है, उसे कभी नष्ट नहीं किया जा सकता। कोई भी अस्त्र, शस्त्र, सेना या शक्ति उस मूल चेतना को छू भी नहीं सकती। जब आत्मा अमर और सुरक्षित है, तो अर्जुन का यह डर कि 'मैं मार दूँगा' या 'ये मर जाएँगे', केवल उसके अज्ञान को दिखाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे जीवन की मूल ऊर्जा और आत्मा अमर है, उसे बाहरी संसार की कोई भी आपदा नष्ट नहीं कर सकती।

### श्लोक संख्या: 2.18

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।  
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस अविनाशी, अप्रमेय (जो बुद्धि या इन्द्रियों से पूरी तरह मापा न जा सके) और नित्य जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान कहे गए हैं; इसलिए हे भारत! तुम युद्ध करो।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि नष्ट होने वाली चीज़ केवल यह भौतिक शरीर है। जो आत्मा इसके भीतर रहती है, वह अनंत और शाश्वत है। जब शरीर का अंत निश्चित ही है, और आत्मा को मारा नहीं जा सकता, तो फिर कर्तव्य से भागना कैसा? कृष्ण अर्जुन को उसके क्षत्रिय धर्म की याद दिलाते हुए कहते हैं कि न्याय की रक्षा के लिए उठो और अपनी पूरी शक्ति से युद्ध करो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर का अंत तो एक दिन होना ही है, इसलिए मृत्यु के भय से अपने अनिवार्य कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों से मुंह नहीं मोड़ना चाहिए।



### श्लोक संख्या: 2.19

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।

उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है और जो इसे मरा हुआ मानता है, वे दोनों ही सत्य को नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न ही किसी के द्वारा मारा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन के मन में यह गहरी ग्लानि थी कि वह अपने हाथों से अपने सगे-संबंधियों की हत्या करने जा रहा है। श्रीकृष्ण उसके इसी भ्रम पर चोट करते हैं। वे कहते हैं कि यह सोचना ही गलत है कि कोई किसी को मार सकता है। मारने वाला और मरने वाला, दोनों ही केवल शरीर के स्तर पर सोचते हैं। आत्मा इन सब क्रियाओं से परे, अछूती और शाश्वत रहती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तापन का अहंकार (कि 'मैंने किया' या 'मैं मार रहा हूँ') ही मनुष्य के बंधन और दुःख का मूल कारण है।

### श्लोक संख्या: 2.20

न जायते म्रियते वा कदाचि न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यह आत्मा किसी भी काल में न तो जन्म लेता है और न मरता है; और न यह एक बार होकर फिर होने वाला ही है। यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।

#### सरल व्याख्या:

यह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को बताने वाला सबसे प्रसिद्ध और सुंदर श्लोक है। आत्मा पर संसार के नियम लागू नहीं होते। इसके छह विकार नहीं होते (जैसे जन्म लेना, बढ़ना, बदलना, बूढ़ा होना और नष्ट होना)। यह अजन्मा (जिसका जन्म न हुआ हो), नित्य (हमेशा रहने वाला) और सनातन (सबसे पुराना पर हमेशा नया) है। जब तलवार चलती है या बाण लगता है, तो वह केवल मिट्टी के बने इस शरीर को नष्ट करता है, भीतर बैठी उस दिव्य चेतना को नहीं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हम मूल रूप से यह हाड़-मांस का शरीर नहीं, बल्कि वह अमर चेतना हैं जो हर परिस्थिति और भौतिक विनाश से परे हमेशा सुरक्षित रहती है।

## श्लोक संख्या: 2.21

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् || 21 ||

### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो पुरुष इस आत्मा को अविनाशी, नित्य, अजन्मा और अव्यय (क्षय रहित) जानता है, वह पुरुष कैसे किसी को मरवाता है और कैसे किसी को मारता है?

### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जब आत्मा का मूल स्वभाव ही ऐसा है कि वह कभी नष्ट नहीं हो सकती, तो फिर मरने और मारने की बात ही निरर्थक हो जाती है। जो व्यक्ति इस परम सत्य को गहराई से जान लेता है, उसके भीतर से यह भ्रम मिट जाता है कि वह किसी का जीवन ले रहा है। वह स्वयं को केवल एक माध्यम समझकर अपना कर्तव्य निभाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य के भीतर का यह भ्रम और कर्तापन का अहंकार समाप्त हो जाता है कि 'मैं किसी को नष्ट कर रहा हूँ'।

## श्लोक संख्या: 2.22

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही || 22 ||

### हिन्दी अनुवाद:

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नए शरीरों में प्रवेश करती है।

### सरल व्याख्या:

यह गीता के सबसे प्रसिद्ध और सुंदर उदाहरणों में से एक है। भगवान आत्मा के बदलने की प्रक्रिया को कपड़ों के बदलने जैसा सरल बताते हैं। जब हमारे कपड़े पुराने या फट जाते हैं, तो हम उन्हें बदलकर नए कपड़े पहन लेते हैं; इसके लिए हम दुखी नहीं होते। ठीक वैसे ही, यह शरीर जब अपना उद्देश्य पूरा कर लेता है, तो आत्मा इसे छोड़कर नया शरीर धारण कर लेती है। मृत्यु केवल एक आवरण का बदलना है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मृत्यु जीवन का अंत नहीं है, बल्कि चेतना द्वारा एक पुराने माध्यम को छोड़कर नया माध्यम चुनने की एक अत्यंत स्वाभाविक प्रक्रिया है।

### श्लोक संख्या: 2.23

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, इसको आग जला नहीं सकती, इसको जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती।

#### सरल व्याख्या:

संसार की कोई भी भौतिक वस्तु या प्रकृति का कोई भी तत्व (अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी) आत्मा को प्रभावित नहीं कर सकता। अर्जुन का धनुष 'गांडीव' या शत्रुओं के बाण केवल भौतिक शरीरों को काट सकते हैं, लेकिन उस परम चेतना को छू भी नहीं सकते। आत्मा इन सभी प्राकृतिक और भौतिक सीमाओं से सर्वथा परे है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे भीतर का मूल तत्व पूर्णतः सुरक्षित और अजेय है; संसार की कोई भी आपदा या संकट उसे नष्ट नहीं कर सकता।

### श्लोक संख्या: 2.24

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य (न कटने वाला) है, यह अदाह्य (न जलने वाला) है, यह अक्लेद्य (न गलने वाला) और निःसंदेह अशोष्य (न सूखने वाला) है। यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण पिछले श्लोक की बात को और दृढ़ करते हुए आत्मा के गुणों को विस्तार से बताते हैं। वे कहते हैं कि आत्मा 'सर्वगत' यानी हर जगह मौजूद है, 'स्थाणुः' यानी स्थिर है, और 'अचलः' है। जो चीज़ कभी हिल नहीं सकती, जिसे बदला नहीं जा सकता, वही हमारा वास्तविक स्वरूप है। इसलिए बाहरी बदलावों को देखकर व्याकुल होना अज्ञानता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मा समय और स्थान (Time and Space) की सीमाओं से परे है; यह सदा एक रस रहने वाला सनातन सत्य है।

## श्लोक संख्या: 2.25

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते |  
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि || 25 ||

### हिन्दी अनुवाद:

यह आत्मा अव्यक्त (इन्द्रियों से न दिखने वाला), अचिन्त्य (बुद्धि से न सोचने योग्य) और अविकारी (बदलाव रहित) कहा जाता है। इसलिए हे अर्जुन! इस आत्मा को ऐसा जानकर तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

### सरल व्याख्या:

हमारी आँखें जो देख सकती हैं, वह 'व्यक्त' है। लेकिन आत्मा इन भौतिक इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आती, इसलिए वह 'अव्यक्त' है। हमारा मन जिसके बारे में कल्पना नहीं कर सकता, वह 'अचिन्त्य' है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जब तुम इस अविनाशी और अपरिवर्तनीय सत्य को समझ जाओगे, तो तुम्हारा सारा शोक अपने आप ही समाप्त हो जाएगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब हम अपनी दृष्टि को दृश्य (शरीर) से हटाकर द्रष्टा (आत्मा) पर केंद्रित करते हैं, तो मानसिक संताप का अंत हो जाता है।

## श्लोक संख्या: 2.26

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् |  
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि || 26 ||

### हिन्दी अनुवाद:

और यदि तुम इस आत्मा को सदा जन्म लेने वाला और सदा मरने वाला ही मानते हो, तो भी हे महाबाहो (विशाल भुजाओं वाले अर्जुन)! तुम्हें इस प्रकार शोक करना योग्य नहीं है।

### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ तर्क का एक दूसरा पहलू सामने रखते हैं। वे कहते हैं कि मान लो, अगर तुम इस उच्च आध्यात्मिक दर्शन (आत्मा की अमरता) को नहीं भी मानते और यह सोचते हो कि शरीर के साथ ही जीवन पैदा होता है और नष्ट होता है, तो भी तुम्हारा रोना व्यर्थ है। क्योंकि जो चीज़ प्रकृति के नियम के अनुसार हर पल बदल रही है, उस पर शोक करने का कोई तार्किक आधार नहीं है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... यदि हम संसार को केवल भौतिक दृष्टि से भी देखें, तो भी प्रकृति के अनिवार्य नियमों (जैसे मृत्यु) पर विलाप करना नासमझी ही है।

## श्लोक संख्या: 2.27

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च |  
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि || 27 ||

### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है; इसलिए इस बिना उपाय वाले (अपरिहार्य) विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए।

### सरल व्याख्या:

यह श्लोक जीवन के सबसे बड़े और अकाट्य सत्य को सामने रखता है। जिसने भी इस संसार में आकार लिया है, उसका अंत होना तय है। और जिसका अंत हुआ है, उसका पुनः प्रकट होना भी उतना ही निश्चित है। यह चक्र ऐसे ही चलता रहता है। जब यह नियम 'अपरिहार्य' है—यानी इसे बदला ही नहीं जा सकता—तो फिर उस बात के लिए रोना कैसा जिसे कोई टाल नहीं सकता?

यह श्लोक हमें बताता है कि... जो चीजें हमारे नियंत्रण में नहीं हैं और प्रकृति का अटल नियम हैं, उन्हें सहजता से स्वीकार कर लेना ही बुद्धिमानी है।

## श्लोक संख्या: 2.28

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत |  
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना || 28 ||

### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! संपूर्ण प्राणी जन्म से पहले अव्यक्त (बिना शरीर के) थे, मध्य काल में व्यक्त (शरीर युक्त) दिखाई देते हैं और मृत्यु के बाद फिर अव्यक्त हो जाने वाले हैं; फिर ऐसी स्थिति में शोक क्या करना?

### सरल व्याख्या:

भगवान् संसार के जीवों की स्थिति को एक नाटक या प्रवाह की तरह समझाते हैं। जन्म से पहले हम कहाँ थे, हमें नहीं पता (अव्यक्त)। मृत्यु के बाद हम कहाँ जाएँगे, वह भी आँखों से नहीं दिखता (अव्यक्त)। हम केवल बीच के इस थोड़े से समय में एक आकार में दिखाई दे रहे हैं (व्यक्त)। जो चीज़ शुरुआत और अंत में अदृश्य है, वह केवल बीच में थोड़ी देर के लिए प्रकट हुई है, तो उसके ओझल होने पर कैसा विलाप?

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार के संबंध और रूप पानी के बुलबुले की तरह हैं जो कुछ समय के लिए प्रकट होते हैं और फिर अपने मूल स्रोत में समा जाते हैं।

### श्लोक संख्या: 2.29

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन माश्चर्यवद्ब्रूति तथैव चान्यः ।

आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ 29 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कोई इस आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है, कोई दूसरा इसके तत्व को आश्चर्य की तरह बोलता है और कोई अन्य इसे आश्चर्य की तरह सुनता है; परंतु सुनकर भी इस आत्मा को कोई भी नहीं जान पाता।

#### सरल व्याख्या:

आत्मा का सत्य इतना विस्मयकारी और गहरा है कि जब लोग इसके बारे में पहली बार सुनते या अनुभव करते हैं, तो वे चकित रह जाते हैं। शब्दों के माध्यम से इसे पूरी तरह समझाना कठिन है। लोग इसके बारे में पढ़ते हैं, सुनते हैं, पर जब तक स्वयं भीतर उतरकर इसका अनुभव न करें, तब तक यह सत्य एक रहस्य ही बना रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान कोई बौद्धिक विषय नहीं है जिसे केवल पढ़ कर समझ लिया जाए, यह एक आंतरिक अनुभूति है जो गहरे ध्यान और बोध से घटित होती है।

### श्लोक संख्या: 2.30

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 30 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! सबके शरीर में रहने वाला यह देही (आत्मा) सदा ही अवध्य (जिसका वध न किया जा सके) है; इसलिए संपूर्ण प्राणियों के लिए तुम्हें शोक करना उचित नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ सांख्ययोग के इस पहले चरण का उपसंहार (Conclusion) करते हैं। वे अर्जुन को अंतिम रूप से आश्वस्त करते हैं कि सामने चाहे भीष्म हों, द्रोण हों या कोई भी जीव हो—उनके भीतर रहने वाला तत्व हमेशा सुरक्षित है, उसे कभी मारा नहीं जा सकता। जब मूल सत्य यह है, तो फिर कर्तव्य पथ पर खड़े होकर इन सब सांसारिक शरीरों के लिए आँसू बहाना बंद करो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन का मूल तत्व परम पावन और अमर है, इस दृढ़ विश्वास के साथ मनुष्य को अपने कर्तव्य पथ पर निर्भर होकर आगे बढ़ना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 2.31

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ 31 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अपने धर्म (कर्तव्य) को देखकर भी तुम्हें भयभीत या विचलित नहीं होना चाहिए; क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी मार्ग नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अब अर्जुन को व्यावहारिक और सामाजिक कर्तव्य (स्वधर्म) के धरातल पर ला रहे हैं। वे कहते हैं कि यदि आध्यात्मिक दृष्टि से परे हटकर तुम्हारे सामाजिक उत्तरदायित्व को भी देखा जाए, तो एक क्षत्रिय का मूल स्वभाव और कर्तव्य समाज में न्याय की रक्षा करना है। अन्याय के विरुद्ध खड़े होना और धर्मयुद्ध लड़ना ही एक योद्धा के लिए सबसे बड़ा और पवित्र मार्ग है, इससे पीछे हटना आत्मघाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समाज में हमारी जो भूमिका या कर्तव्य तय है, संकट के समय उससे पीछे न हटकर उसका पूरी निष्ठा से पालन करना ही हमारा वास्तविक स्वधर्म है।

### श्लोक संख्या: 2.32

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ 32 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! अपने आप प्राप्त हुआ और खुले हुए स्वर्ग के द्वार के समान इस प्रकार के युद्ध को भाग्यशाली क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि यह युद्ध तुमने स्वयं नहीं थोपा है, बल्कि यह अधर्म के चरम पर पहुँचने के कारण स्वतः सामने आया है। न्याय की स्थापना का ऐसा अवसर किसी भी सच्चे कर्मवीर के लिए एक वरदान की तरह होता है, जो उसके लिए उन्नति के मार्ग (स्वर्गद्वार) खोलता है। ऐसे धर्मयुद्ध में भाग लेने का अवसर बड़े भाग्य से ही किसी को मिलता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन में जब अन्याय या विपरीत परिस्थितियों से लड़ने का अवसर स्वतः सामने आए, तो उसे संकट नहीं बल्कि स्वयं को प्रमाणित करने का एक ईश्वरीय अवसर मानना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 2.33

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि |

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

किंतु यदि तुम इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करोगे, तो अपने स्वधर्म और कीर्ति (यश) को खोकर पाप को प्राप्त होगे।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्तव्य से भागने के गंभीर परिणामों के प्रति सचेत करते हैं। वे कहते हैं कि यदि तुम इस समय युद्ध के मैदान से पैर पीछे खींचते हो, तो संसार इसे तुम्हारा त्याग नहीं बल्कि तुम्हारी कायरता मानेगा। ऐसा करने से तुम समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी (स्वधर्म) को तो तोड़ोगे ही, अपना यश भी खो दोगे और एक गलत उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण पाप के भागी बनोगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने अनिवार्य उत्तरदायित्वों से मुंह मोड़ना सात्विकता नहीं है, बल्कि वह एक प्रकार का मानसिक अपराध और पाप ही है।

### श्लोक संख्या: 2.34

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् |

सम्भावितस्य चाकीर्तिं मरणदतिरिच्यते || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

और सब लोग तुम्हारी बहुत काल तक रहने वाली अकीर्ति (अपयश) का कथन करेंगे; और सम्मानित मनुष्य के लिए अपयश, मृत्यु से भी बढ़कर (बढ़कर दुःखद) होता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन के क्षत्रिय स्वाभिमान को झकझोरते हैं। वे कहते हैं कि समाज में तुम्हारी पहचान एक महान् शूरवीर के रूप में है। यदि तुम यहाँ से भाग गए, तो आने वाली पीढ़ियाँ सदियों तक तुम्हारी कायरता की बातें करेंगी। एक ऐसा व्यक्ति जिसने जीवन भर सम्मान पाया हो, उसके लिए समाज में होने वाली बदनामी और अपयश का दुःख शारीरिक मृत्यु से भी कहीं अधिक भयानक होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक गौरवमयी और मूल्यवान् जीवन जीने वाले व्यक्ति के लिए सिद्धांतों से समझौता करके जीवित रहने से बेहतर अपने सिद्धांतों के लिए संघर्ष करना होता है।



### श्लोक संख्या: 35

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः ।

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ 35 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिन महारथियों की दृष्टि में तुम पहले बहुत सम्मानित थे, वे सब तुम्हें डर के मारे युद्ध से हटा हुआ मानेंगे और उनकी दृष्टि में तुम अत्यंत तुच्छता (लघुता) को प्राप्त हो जाओगे।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन सोच रहा था कि युद्ध न करके वह अपनों पर दया दिखा रहा है। लेकिन श्रीकृष्ण कड़वी सच्चाई सामने रखते हुए कहते हैं कि दुर्योधन और अन्य महारथी तुम्हारी इस दया को नहीं समझेंगे। वे यही सोचेंगे कि अर्जुन डर गया और युद्ध भूमि छोड़कर भाग गया। जिन शत्रुओं के सामने तुम्हारा मान-सम्मान बहुत ऊंचा था, वहाँ तुम पूरी तरह हल्के और तुच्छ मान लिए जाओगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दुनिया अक्सर हमारे आंतरिक इरादों को नहीं, बल्कि हमारे बाहरी कर्मों को देखती है; इसलिए अपनी कमज़ोरी को ऊंचे विचारों की आड़ में छिपाना व्यर्थ है।

### श्लोक संख्या: 2.36

अवाच्यवादांश्च बहून्बदिष्यन्ति तवाहिताः ।

निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ 36 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और तुम्हारे शत्रु तुम्हारे सामर्थ्य (वीरता) की निंदा करते हुए तुम्हें बहुत से न कहने योग्य वचन (कटु वचन) कहेंगे; तुम्हारे लिए उससे बढ़कर और अधिक दुःख की बात क्या होगी?

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि तुम्हारे विरोधी तुम्हारी वीरता पर प्रश्न उठाएंगे और ऐसे अपशब्द कहेंगे जो सुने भी नहीं जा सकते। जिस अर्जुन ने जीवन भर पुरुषार्थ की साधना की हो, उसके लिए अपनी आंखों के सामने अपनी ही सामर्थ्य की निंदा सुनना सबसे बड़ा मानसिक कष्ट होगा। कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं कि भागने का रास्ता तुम्हें शांति नहीं, बल्कि और अधिक गहरा मानसिक संताप देगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परिस्थितियों से भागकर कोई भी व्यक्ति मानसिक शांति नहीं पा सकता; संघर्ष से पलायन करना हमेशा और अधिक अपमान तथा दुःख की ओर ले जाता है।

### श्लोक संख्या: 2.37

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् |  
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः || 37 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि तू युद्ध में मारा गया तो स्वर्ग को प्राप्त होगा और यदि जीत गया तो पृथ्वी के राज्य को भोगेगा। इसलिए हे कौन्तेय! युद्ध के लिए निश्चय करके खड़ा हो जा।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन को पूर्ण संकल्प लेने के लिए कह रहे हैं। यहाँ स्वर्ग का अर्थ केवल सुख नहीं, बल्कि कर्तव्य पथ पर बलिदान से मिलने वाली परम गति है। हार हो या जीत, दोनों ही स्थितियों में साधक का लाभ ही है क्योंकि वह अपने धर्म पर अडिग रहा। पलायन में केवल अपमान और पतन है, जबकि संघर्ष में उन्नति निश्चित है। अतः मन के संशय को त्यागकर कर्म में जुट जाना ही एकमात्र मार्ग है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य पथ पर होने वाला नुकसान भी वास्तव में एक आध्यात्मिक लाभ ही होता है, इसलिए परिणाम की चिंता छोड़ संकल्प के साथ कार्य करना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 2.38

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ |  
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि || 38 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

सुख-दुःख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को प्राप्त नहीं होगा।

#### सरल व्याख्या:

यह निष्काम कर्म की नींव है। जब मनुष्य कर्म को केवल अपनी पसंद या लाभ के लिए करता है, तब वह पाप-पुण्य के बंधन में फँसता है। लेकिन जब कर्म केवल 'ईश्वर की आज्ञा' और 'कर्तव्य' समझकर किया जाता है, जिसमें व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं होता, तो वह कर्म बंधन मुक्त कर देता है। मन की समता ही वह ढाल है जो हमें कर्मों के विषैले प्रभाव से बचाती है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक संतुलन और निरपेक्ष भाव से किया गया कर्म कभी भी मनुष्य के पतन का कारण नहीं बनता।

### श्लोक संख्या: 2.39

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।  
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ 39 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिए ज्ञान (सांख्य) के विषय में कही गई, अब तू इसे कर्मयोग के विषय में सुन, जिस बुद्धि से युक्त होकर तू कर्मों के बंधन को पूरी तरह काट सकेगा।

#### सरल व्याख्या:

अब तक भगवान ने आत्मा की अमरता का ज्ञान दिया। अब वे उस ज्ञान को क्रिया में उतारने की कला सिखा रहे हैं। केवल यह जानना कि 'मैं आत्मा हूँ' पर्याप्त नहीं है, बल्कि संसार में रहते हुए कर्मों के बीच उस बोध को कैसे बनाए रखना है कि कर्म हमें न बांधें, यही योग है। यह योग ही कर्मों की बेड़ियों को काटने की सामर्थ्य रखता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... सैद्धांतिक ज्ञान जब व्यावहारिक आचरण (योग) में बदलता है, तभी वह मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

### श्लोक संख्या: 2.40

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।  
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ 40 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस निष्काम कर्मयोग के मार्ग में आरम्भ का नाश नहीं होता और न ही इसमें कोई उल्टा फल मिलता है। इस धर्म का थोड़ा सा भी अंश महान भय से रक्षा कर लेता है।

#### सरल व्याख्या:

सांसारिक कार्यों में यदि काम पूरा न हो तो फल नहीं मिलता, लेकिन इस साधना के पथ पर किया गया छोटा सा प्रयास भी कभी व्यर्थ नहीं जाता। वह आत्मा पर एक स्थाई संस्कार छोड़ता है। इसमें कोई हानि का भय नहीं है। इस पथ पर बढ़ा गया एक भी छोटा कदम मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र और अज्ञान के महान डर से बचा लेता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... आध्यात्मिक मार्ग पर की गई छोटी सी भी प्रगति शाश्वत होती है और वह साधक के कल्याण का आधार बनती है।

## श्लोक संख्या: 2.41

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन |

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् || 41 ||

### हिन्दी अनुवाद:

हे कुरुनन्दन! इस मार्ग में निश्चयात्मक बुद्धि एक ही होती है, किन्तु अस्थिर विचार वाले मनुष्यों की बुद्धियाँ बहुत शाखाओं वाली और अनन्त होती हैं।

### सरल व्याख्या:

सच्चे साधक का लक्ष्य केवल एक होता है—परमात्मा की प्राप्ति। इसलिए उसकी बुद्धि एकाग्र और अडिग रहती है। इसके विपरीत, जो केवल सांसारिक इच्छाओं में उलझे हैं, उनका मन हजारों दिशाओं में भटकता रहता है। जैसे एक केंद्र से जुड़ी पहिये की तिलियाँ स्थिर रहती हैं, वैसे ही लक्ष्य से जुड़ी बुद्धि ही शांति प्राप्त कर सकती है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... दृढ़ निश्चय और एकनिष्ठ लक्ष्य ही मानसिक एकाग्रता और आध्यात्मिक सफलता की कुंजी है।

## श्लोक संख्या: 2.42, 2.43 और 2.44

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः |

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः || 42 ||

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् |

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति || 43 ||

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् |

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते || 44 ||

### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो भोगों में तन्मय हैं और वेदों के केवल कर्मकांडों में रुचि रखते हैं, वे दिखावटी वचनों में उलझे रहते हैं। वे स्वर्ग को ही परम लक्ष्य मानते हैं। ऐसे भोगों और ऐश्वर्य में आसक्त चित्त वाले पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं हो पाती।

### सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ दिखावटी धार्मिकता पर चोट करते हैं। जो लोग धर्म को केवल अपनी मनोकामनाएं पूरी करने का साधन मानते हैं, वे कभी सत्य को नहीं जान पाते। वे मंत्रों और क्रियाओं का उपयोग केवल सुख-सुविधाओं के लिए करते हैं। जिनका मन 'क्या मिलेगा' के लोभ में फँसा है, उनकी बुद्धि कभी 'समाधि' (परमात्मा में पूर्ण ठहराव) की स्थिति तक नहीं पहुँच सकती।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... सांसारिक लालसा और दिखावटी कर्मकांड ईश्वर की प्राप्ति में सबसे बड़े अवरोध हैं।

## श्लोक संख्या: 2.45

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ 45 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

वेद तीनों गुणों (सत्, रज, तम) के कार्यों का वर्णन करते हैं; हे अर्जुन! तू इन तीनों गुणों से ऊपर उठ। द्वंद्वों से रहित होकर, नित्य सत्त्व गुण में स्थित हो और भविष्य की चिंता तथा प्राप्त की रक्षा के मोह को छोड़कर आत्मपरायण बन।

### सरल व्याख्या:

संसार प्रकृति के तीन गुणों का खेल है। भगवान् अर्जुन को इस खेल से बाहर निकलने का आदेश देते हैं। 'निर्योगक्षेम' का अर्थ है— जो नहीं है उसे पाने की तड़प और जो है उसे खोने का डर, इन दोनों को छोड़ देना। जब मनुष्य खुद को पूरी तरह ईश्वर को सौंप देता है और अपने भीतर की आत्मा में स्थित होता है, तभी वह वास्तविक स्वतंत्रता का अनुभव करता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक गुणों और चिंताओं से ऊपर उठकर आत्मा में स्थिर होना ही परम सिद्धि है।

## श्लोक संख्या: 2.46

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ 46 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

सब ओर से जल से परिपूर्ण बड़े जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को जानने वाले ज्ञानी का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।

### सरल व्याख्या:

जब प्यासा व्यक्ति गंगा के किनारे पहुँच जाता है, तो उसे कुएँ की आवश्यकता नहीं रहती। वैसे ही, जिसे परमात्मा का सीधा अनुभव हो गया है, उसके लिए शास्त्रों के शब्द और कर्मकांडों की विधियाँ गौण (कम महत्व की) हो जाती हैं। शास्त्र केवल मार्ग दिखाते हैं, लेकिन परमात्मा ही गंतव्य है। गंतव्य पर पहुँचने के बाद मार्ग के नक्शे की आवश्यकता नहीं रहती।

ये श्लोक हमें बताता है कि... आत्मिक अनुभव के सामने संसार का समस्त किताबी ज्ञान और विधियाँ छोटी पड़ जाती हैं।

### श्लोक संख्या: 2.47

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन |  
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि || 47 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल की इच्छा वाला मत बन और तेरी आसक्ति कर्म न करने में भी न हो।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता का सबसे महत्वपूर्ण संदेश है। मनुष्य केवल कर्म करने में स्वतंत्र है, परिणाम उसके हाथ में नहीं है। जब हम फल की चिंता करते हैं, तो हम वर्तमान के कर्म को ठीक से नहीं कर पाते। भगवान कहते हैं कि न तो फल का लालच रखो और न ही फल न मिलने के डर से कर्म छोड़ो (आलसी बनो)। बस उसे अपना कर्तव्य मानकर सर्वश्रेष्ठ प्रयास करो।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्म को ही पूजा मानना और परिणाम को ईश्वर पर छोड़ देना ही शांति और सफलता का सूत्र है।

### श्लोक संख्या: 2.48

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय |  
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते || 48 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! आसक्ति को त्यागकर तथा सफलता और असफलता में समान भाव रखकर योग में स्थित होकर कर्मों को कर। यह 'समत्व' ही योग कहलाता है।

#### सरल व्याख्या:

योग का वास्तविक अर्थ है—मन का संतुलन। काम पूरा हो जाए तो अहंकार न आए और अधूरा रह जाए तो शोक न हो। इस मानसिक स्थिरता के साथ जो भी कार्य किया जाता है, वह योग है। साधक को चाहिए कि वह बाहरी दुनिया के उतार-चढ़ाव के बीच भी अपने भीतर की शांति को न खोए।

ये श्लोक हमें बताता है कि... जीवन की हर स्थिति में मन की समता बनाए रखना ही वास्तविक योग की परिभाषा है।

### श्लोक संख्या: 2.49

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ 49 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! इस समत्व बुद्धि योग की अपेक्षा स्वार्थ के लिए किया गया कर्म अत्यंत निम्न श्रेणी का है। इसलिए तू बुद्धि की शरण खोज; क्योंकि फल के लिए काम करने वाले लोग अत्यंत दीन (कृपण) हैं।

#### सरल व्याख्या:

जो केवल अपने स्वार्थ के लिए काम करते हैं, वे भिखारी की तरह हैं जो हमेशा फल की उम्मीद में बेचैन रहते हैं। भगवान कहते हैं कि कर्म के पीछे का भाव (इंटेंशन) महत्वपूर्ण है। अपनी बुद्धि को स्थिर करो और फल की दासता से मुक्त हो जाओ। जो केवल परमात्मा के लिए कर्म करता है, वही वास्तव में अमीर और स्वतंत्र है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... फल की इच्छा से किया गया कार्य मानसिक दरिद्रता है, जबकि निष्काम कर्म बुद्धिमानी है।

### श्लोक संख्या: 2.50

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ 50 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

समबुद्धि से युक्त पुरुष इसी जन्म में पुण्य और पाप दोनों का त्याग कर देता है। इसलिए तू योग में लग जा; कर्मों में यह कुशलता ही योग है।

#### सरल व्याख्या:

'योगः कर्मसु कौशलम्'—कर्म को इस प्रकार करने की कला कि वह बंधन न बने, वही योग है। एक कुशल व्यक्ति संसार में सब कुछ करते हुए भी उससे अछूता रहता है, जैसे कीचड़ में कमल। जब कर्म केवल सेवा भाव से होता है, तो वह व्यक्ति को पाप और पुण्य के चक्र से ऊपर उठा देता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... अनासक्त भाव से श्रेष्ठतम कर्म करना ही जीवन जीने की वास्तविक कला है।

### श्लोक संख्या: 2.51

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः |  
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् || 51 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर, जन्म के बंधन से मुक्त हो, परम पद (परमानंद) को प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

इच्छाएँ ही जन्म का कारण बनती हैं। जब साधक फल की आसक्ति छोड़ देता है, तो उसकी यात्रा पूर्ण हो जाती है। वह उस स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ कोई रोग, शोक या दुख (अनामय) नहीं है। यह स्थिति कर्म के फल को परमात्मा को समर्पित करने से ही प्राप्त होती है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... फल का त्याग करने से ही मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष पाता है।

### श्लोक संख्या: 2.52 और 2.53

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति |  
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च || 52 ||  
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला |  
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि || 53 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस समय तेरी बुद्धि मोह रूपी दलदल को पार कर जाएगी, उस समय तू सब भोगों से विरक्त हो जाएगा। भाँति-भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल हो जाएगी, तब तू योग को प्राप्त होगा।

#### सरल व्याख्या:

अभी अर्जुन की बुद्धि दूसरों की बातों और मोह में फँसी है। भगवान कहते हैं कि जब तुम इस मानसिक कचरे से बाहर निकलोगे, तो तुम्हें बाहरी उपदेशों की आवश्यकता नहीं रहेगी। जब तुम्हारा मन बिना किसी विक्षेप के परमात्मा में स्थिर हो जाएगा, तभी तुम वास्तव में उनसे जुड़ पाओगे।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... मोह का त्याग और मन की अचल स्थिरता ही ईश्वर से मिलन का एकमात्र द्वार है।



## श्लोक संख्या: 2.54

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम् ॥ 54 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन ने कहा—हे केशव! समाधि में स्थित स्थिर बुद्धि वाले पुरुष के क्या लक्षण हैं? वह कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है?

### सरल व्याख्या:

अर्जुन अब उस व्यक्ति के बारे में जानना चाहता है जो इस ज्ञान को जी रहा है। वह समझना चाहता है कि एक ज्ञानी का व्यवहार आम लोगों से कैसे अलग होता है ताकि वह स्वयं भी उस मार्ग पर चल सके।

ये श्लोक हमें बताता है कि... जिज्ञासु शिष्य हमेशा ज्ञान के व्यावहारिक पक्ष को समझने का प्रयास करता है।

## श्लोक संख्या: 2.55

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ 55 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् ने कहा—हे पार्थ! जिस समय मनुष्य मन की समस्त कामनाओं को त्याग देता है और अपने आप से अपने आप में ही संतुष्ट रहता है, वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।

### सरल व्याख्या:

स्थितप्रज्ञ वह है जिसकी खुशी किसी बाहरी वस्तु पर निर्भर नहीं है। वह अपने भीतर ही आनंद का सागर पा चुका है। जब मन की सारी भाग-दौड़ शांत हो जाती है और व्यक्ति स्वयं में पूर्ण महसूस करता है, तब वह स्थिर बुद्धि वाला कहलाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... बाहरी इच्छाओं का अंत और आंतरिक संतोष ही पूर्ण पुरुष की पहचान है।

### श्लोक संख्या: 2.56

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ 56 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

दुखों में जिसका मन व्याकुल नहीं होता, सुखों की प्राप्ति की जिसकी लालसा खत्म हो गई है और जिसके राग, भय तथा क्रोध नष्ट हो गए हैं, वह मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

स्थितप्रज्ञ के जीवन में भी परिस्थितियाँ आती हैं, पर वे उसके भीतर उथल-पुथल नहीं मचा पातीं। वह सुख में बहुत खुश नहीं होता और दुख में टूटता नहीं। उसने अपने सबसे बड़े शत्रुओं—राग (अत्यधिक लगाव), भय और क्रोध—को जीत लिया है। वह एक शांत झील की तरह है जिसमें कंकड़ फेंकने पर भी गहराई विचलित नहीं होती।

ये श्लोक हमें बताता है कि... विपरीत स्थितियों में भी मन की शांति न खोना ही वास्तविक साधना है।

### श्लोक संख्या: 2.57

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 57 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष सर्वत्र आसक्ति रहित है और शुभ या अशुभ वस्तु को पाकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, उसकी बुद्धि स्थिर है।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञानी व्यक्ति संसार के साथ जुड़ा तो है पर बंधा नहीं है। वह हर परिस्थिति को एक 'साक्षी' (गवाह) की तरह देखता है। जैसे सूर्य गंदे नाले पर भी चमकता है और गंगा पर भी, पर वह खुद अछूता रहता है, वैसे ही ज्ञानी शुभ और अशुभ दोनों में निष्पक्ष रहता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... किसी भी वस्तु या व्यक्ति के प्रति मोह न रखना ही बुद्धि की स्थिरता का लक्षण है।

**श्लोक संख्या: 2.58**

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ 58 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों को विषयों से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

**सरल व्याख्या:**

कछुआ अपनी रक्षा के लिए अपने अंगों को अपने मजबूत कवच में खींच लेता है। वैसे ही, साधक को पता होता है कि कब उसे अपनी इन्द्रियों को बाहरी प्रलोभनों से बचाना है। वह इन्द्रियों का गुलाम नहीं होता, बल्कि उनका स्वामी होता है। वह केवल उतना ही विषयों को ग्रहण करता है जितना जीवन के लिए अनिवार्य है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रियों पर पूरा नियंत्रण होना ही आत्मिक सुरक्षा का मार्ग है।

**श्लोक संख्या: 2.59**

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ 59 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इन्द्रियों द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस पुरुष की आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

**सरल व्याख्या:**

अगर आप जबरदस्ती किसी चीज को छोड़ें, तो वह बाहर से तो छूट जाती है पर मन में उसकी याद बनी रहती है। यह मन का खिंचाव (रस) तब तक नहीं मरता जब तक आपको उससे भी बड़ी खुशी (परमात्मा का अनुभव) न मिल जाए। छोटे सुख को छोड़ने के लिए बड़े सुख का मिलना जरूरी है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... केवल बाहरी त्याग पर्याप्त नहीं है, आंतरिक वासनाएँ केवल ईश्वर के प्रेम से ही समाप्त होती हैं।

श्लोक संख्या: 2.60 और 2.61

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः |  
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः || 60 ||  
तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः |  
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता || 61 ||

हिन्दी अनुवाद:

हे कौन्तेय! यत्न करते हुए बुद्धिमान मनुष्य के मन को भी ये चंचल इन्द्रियाँ जबरदस्ती हर लेती हैं। इसलिए उन सबको वश में करके, मुझमें परायण होकर बैठे; क्योंकि जिसकी इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

सरल व्याख्या:

इन्द्रियाँ इतनी ताकतवर हैं कि वे ज्ञानी का भी पैर फिसला सकती हैं। इसलिए भगवान कहते हैं कि केवल अपनी शक्ति पर भरोसा मत करो, बल्कि 'मत्परः' (मेरे आश्रित) हो जाओ। जब मन ईश्वर से जुड़ जाता है, तो उसे बाहरी चीजों में स्वाद नहीं आता और इन्द्रियाँ अपने आप शांत हो जाती हैं।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... इन्द्रियों को जीतने का सरल तरीका उन्हें ईश्वर की सेवा में लगा देना है।

श्लोक संख्या: 2.62 और 2.63

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते |  
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते || 62 ||  
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः |  
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति || 63 ||

हिन्दी अनुवाद:

विषयों का चिंतन करने वाले पुरुष की उनमें आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से कामना, कामना से क्रोध, क्रोध से भ्रम, भ्रम से स्मृति का नाश, और स्मृति नाश से बुद्धि का नाश हो जाता है, जिससे मनुष्य का पतन हो जाता है।

सरल व्याख्या:

यह पतन की पूरी प्रक्रिया है। विनाश 'सोचने' से शुरू होता है। जब आप बार-बार किसी चीज के बारे में सोचते हैं, तो उसे पाने की जिद (काम) पैदा होती है। जब वह नहीं मिलती, तो गुस्सा आता है। गुस्से में इंसान अपना विवेक खो देता है और सही-गलत की पहचान (स्मृति) भूल जाता है। अंत में वह खुद को नष्ट कर लेता है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... अपने विचारों की दिशा को संभालना ही जीवन की रक्षा करना है।

श्लोक संख्या: 2.64 और 2.65

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् |  
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति || 64 ||  
प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते |  
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते || 65 ||

हिन्दी अनुवाद:

किन्तु अपने वश में किए हुए मन वाला पुरुष, राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। इस प्रसन्नता से उसके सम्पूर्ण दुखों का नाश हो जाता है।

सरल व्याख्या:

साधना का अर्थ दुनिया छोड़ना नहीं, बल्कि दुनिया के बीच बिना राग-द्वेष के रहना है। ऐसा व्यक्ति संसार की वस्तुओं का उपयोग तो करता है, पर उनका गुलाम नहीं होता। ऐसा मन हमेशा खिला हुआ और प्रसन्न रहता है। और जहाँ सच्ची प्रसन्नता है, वहाँ कोई दुख टिक नहीं सकता।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... संयमित मन ही वास्तविक शांति और अखंड खुशी का स्रोत है।

श्लोक संख्या: 2.66

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना |  
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् || 66 ||

हिन्दी अनुवाद:

जिसका मन वश में नहीं है, उसमें निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती और न ही कर्तव्य का भाव होता है। शांति के बिना सुख कहाँ से मिल सकता है?

सरल व्याख्या:

सुख का सीधा रास्ता शांति से होकर जाता है। आप अरबपति होकर भी अगर मन से अशांत हैं, तो आप सुखी नहीं हैं। शांति के लिए मन का स्थिर होना जरूरी है। जिसका मन बेलगाम घोड़े की तरह भाग रहा है, वह जीवन के वास्तविक आनंद को कभी नहीं छू सकता।

ये श्लोक हमें बताता है कि... मन पर नियंत्रण ही सुख और शांति की अनिवार्य शर्त है।

**श्लोक संख्या: 2.67 और 2.68**

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते |  
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि || 67 ||  
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीताणि सर्वशः |  
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता || 68 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

जैसे जल में नाव को हवा हर लेती है, वैसे ही इन्द्रियों के पीछे भागता हुआ मन मनुष्य की बुद्धि को हर लेता है। इसलिए जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, उसकी बुद्धि स्थिर है।

**सरल व्याख्या:**

अगर नाव चलाने वाला हवा के साथ ही बहने लगे, तो नाव कभी किनारे नहीं पहुँचेगी। वैसे ही, अगर हम अपनी इन्द्रियों की हर मांग को पूरा करने लगे, तो हमारा विवेक खत्म हो जाएगा। बुद्धि को बचाने के लिए इन्द्रियों की लगाम हाथ में रखना जरूरी है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... इन्द्रियों की गुलामी ही बुद्धि के विनाश का कारण बनती है।

**श्लोक संख्या: 2.69**

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी |  
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः || 69 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

सम्पूर्ण प्राणियों के लिए जो रात्रि के समान है (आत्मज्ञान), उसमें संयमी पुरुष जागता है और जिसमें सब प्राणी जागते हैं (सांसारिक भोग), वह मुनि के लिए रात्रि के समान है।

**सरल व्याख्या:**

ज्ञानी और आम आदमी की दुनिया बिल्कुल उलटी है। आम आदमी जिसे 'रोशनी' समझकर भाग रहा है (पैसा, वासना, अहंकार), ज्ञानी के लिए वह अंधेरा और व्यर्थ है। जहाँ लोग सो रहे हैं (सत्य, शांति, सेवा), ज्ञानी वहीं अपनी आँखें खुली रखता है। उनकी प्राथमिकताएं एक-दूसरे के विपरीत होती हैं।

ये श्लोक हमें बताता है कि... सत्य के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति संसार के झूठे आकर्षणों में कभी नहीं फँसता।

### श्लोक संख्या: 2.70

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।  
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी || 70 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जैसे समुद्र में नदियाँ उसे विचलित किए बिना समा जाती हैं, वैसे ही जिस पुरुष में सब भोग बिना विकार पैदा किए समा जाते हैं, वही शांति प्राप्त करता है।

#### सरल व्याख्या:

समुद्र अपनी जगह स्थिर रहता है, चाहे उसमें कितनी ही नदियाँ गिरें। वैसे ही, ज्ञानी के सामने संसार के सारे सुख आते हैं, पर वे उसके मन को हिला नहीं पाते। वह हमेशा अपनी शांति में स्थित रहता है। जो इच्छाओं के पीछे भागता है, वह कभी शांत नहीं हो सकता।

ये श्लोक हमें बताता है कि... पूर्णता वही है जहाँ बाहरी परिस्थितियाँ आपके आंतरिक संतुलन को न बिगाड़ सकें।

### श्लोक संख्या: 2.71

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।  
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमिधिगच्छति || 71 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर, लालसा रहित, ममता रहित और अहंकार रहित होकर विचरता है, वही शांति को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

शांति पाने के तीन अवरोध हैं—इच्छा (Wanting), ममता (Mine) और अहंकार (I)। जब मनुष्य यह समझ जाता है कि कुछ भी उसका नहीं है और वह केवल एक निमित्त है, तब उसका बोझ उतर जाता है। ऐसा व्यक्ति दुनिया में रहते हुए भी एक आजाद पंछी की तरह होता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... 'मैं' और 'मेरा' के भाव को छोड़ना ही परम शांति का मार्ग है।

## श्लोक संख्या: 2.72

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ 72 ॥

### हिन्दी अनुवादः

हे पार्थ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इसे प्राप्त होकर मनुष्य कभी मोहित नहीं होता और अंतकाल (मृत्यु के समय) में भी इस स्थिति में स्थित होकर वह ब्रह्म-निर्वाण (परमानंद) को प्राप्त हो जाता है।

### सरल व्याख्या:

यह अध्याय का शिखर है। 'ब्राह्मी स्थिति' का अर्थ है वह अवस्था जहाँ साधक का अपना अहंकार पूरी तरह मिट जाता है और केवल परमात्मा का अनुभव शेष रहता है। जैसे गंगा समुद्र में मिलकर समुद्र ही हो जाती है, वैसे ही इस स्थिति में पहुँचा पुरुष ईश्वरमय हो जाता है। मोह का दलदल सदा के लिए पीछे छूट जाता है। यदि कोई जीवन के अंतिम क्षण में भी इस सत्य को पहचान ले और स्वयं को शरीर के बजाय आत्मा जान ले, तो वह जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर परमानंद में विलीन हो जाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा में स्थित होना ही जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है, जो मृत्यु के भय को मिटाकर शाश्वत शांति प्रदान करती है।



॥ ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



### अध्याय 3: कर्मयोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 3.01 - 3.02

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन |  
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव || 01 ||  
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे |  
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् || 02 ||

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन ने कहा—हे जनार्दन! यदि आप कर्म की अपेक्षा ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं, तो फिर हे केशव! आप मुझे इस घोर युद्ध (कर्म) में क्यों लगाते हैं? आप मिले-जुले वचनों से मेरी बुद्धि को मोहित कर रहे हैं, इसलिए निश्चय करके एक बात कहिए जिससे मेरा कल्याण हो।

### सरल व्याख्या:

अर्जुन दुविधा में है। दूसरे अध्याय में भगवान ने ज्ञान की प्रशंसा की और फिर युद्ध करने को भी कहा। अर्जुन को लग रहा है कि यदि ज्ञान (बैठकर चिंतन करना) ही श्रेष्ठ है, तो फिर कर्म की भाग-दौड़ और हिंसा क्यों? वह अपने कल्याण का सीधा रास्ता पूछना चाहता है। वास्तव में, यह हम सबकी दुविधा है—क्या संसार को छोड़कर भक्ति करना श्रेष्ठ है या संसार में रहकर कर्तव्य करना?

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... साधक जब ज्ञान और कर्म के समन्वय को नहीं समझ पाता, तो उसके मन में दुविधा पैदा होती है, जिसका समाधान गुरु द्वारा ही संभव है।

### श्लोक संख्या: 3.03

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ |  
ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् || 03 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे निष्ठाप अर्जुन! इस लोक में दो प्रकार की निष्ठाएँ (साधना मार्ग) मेरे द्वारा पहले कही गई हैं—सांख्य योगियों के लिए 'ज्ञानयोग' और योगियों के लिए 'कर्मयोग'।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् स्पष्ट करते हैं कि मंज़िल एक ही है, पर मार्ग दो हैं। जो विचार प्रधान हैं और बुद्धि से सत्य को खोजते हैं, उनके लिए 'ज्ञानयोग' है। जो क्रिया प्रधान हैं और कर्म के माध्यम से ईश्वर को पाना चाहते हैं, उनके लिए 'कर्मयोग' है। भगवान् यह भी संकेत देते हैं कि अर्जुन के स्वभाव के लिए कर्मयोग ही श्रेष्ठ है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... मनुष्य की मानसिक प्रवृत्ति के अनुसार साधना के मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं, पर गंतव्य एक ही है।

### श्लोक संख्या: 3.04

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते |  
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति || 04 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मनुष्य न तो कर्मों को न करने से 'नैष्कर्म्य' (निष्कामता) को प्राप्त होता है और न ही केवल कर्मों के त्याग (संन्यास) मात्र से सिद्धि को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

लोग समझते हैं कि काम छोड़ देना ही संन्यास है, पर भगवान् कहते हैं कि हाथ-पैर रोक लेने से मन शांत नहीं होता। असली निष्कामता तब आती है जब कर्म किए जाएँ पर उनमें फल का मोह न हो। कर्मों से भागे बिना उन्हें कुशलता से करना ही वास्तविक सिद्धि का मार्ग है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों से भागना समाधान नहीं है, बल्कि कर्मों के प्रति दृष्टिकोण बदलना ही समाधान है।

### श्लोक संख्या: 3.05

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।  
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ 05 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

निश्चित रूप से कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र के लिए भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता; क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृति के गुणों द्वारा विवश होकर कर्म करने के लिए बाध्य है।

#### सरल व्याख्या:

यह जीवन का एक अटल सत्य है। जब हम सो रहे होते हैं, तब भी सांस लेना, पाचन होना और हृदय का धड़कना जारी रहता है। हमारा स्वभाव (सत्, रज, तम गुण) हमें हमेशा कुछ न कुछ करने के लिए प्रेरित करता रहता है। चूंकि कर्म अनिवार्य है, इसलिए उसे अज्ञान में करने के बजाय ज्ञान के साथ करना ही बुद्धिमानी है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्म करना मनुष्य की विवशता और प्रकृति का स्वभाव है, अतः कर्म का पूर्ण त्याग असंभव है।

### श्लोक संख्या: 3.06

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।  
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ 06 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को तो रोक लेता है, किन्तु मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिंतन करता रहता है, वह मूढ़ बुद्धि वाला 'पाखंडी' या 'मिथ्याचारी' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

यह उन लोगों के लिए चेतावनी है जो बाहर से तो महात्मा बनते हैं पर भीतर से सांसारिक इच्छाओं में डूबे रहते हैं। अगर शरीर शांत है पर मन वासनाओं में दौड़ रहा है, तो वह साधना नहीं, धोखा है। ऐसा दमन केवल मानसिक विकृति पैदा करता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... बाहरी त्याग से अधिक महत्वपूर्ण आंतरिक शुद्धि है।

### श्लोक संख्या: 3.07

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।

कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ 07 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

किन्तु हे अर्जुन! जो मनुष्य मन से इन्द्रियों को वश में करके, अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आरम्भ करता है, वही श्रेष्ठ है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान सच्चे साधक की पहचान बताते हैं। वह दुनिया में रहकर अपना काम तो करता है, पर उसका मन विषयों में नहीं फँसता। वह इन्द्रियों का दमन नहीं करता, बल्कि उन्हें सही दिशा में लगा देता है। ऐसा व्यक्ति समाज में रहते हुए भी एक कमल के फूल की तरह अछूता और श्रेष्ठ रहता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... अनासक्त भाव से अपने कर्तव्य कर्मों को करना ही जीवन जीने की श्रेष्ठ विधि है।

### श्लोक संख्या: 3.08

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ 08 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तू शास्त्र सम्मत नियत कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा।

#### सरल व्याख्या:

भगवान एक व्यावहारिक बात कहते हैं। अगर कोई काम नहीं करेगा, तो उसे भोजन कहाँ से मिलेगा? शरीर को चलाने के लिए भी कर्म आवश्यक है। इसलिए आलस्य और अकर्मण्यता को छोड़कर अपने हिस्से का काम करना ही धर्म है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्म जीवन का आधार है, इसके बिना अस्तित्व ही संभव नहीं है।

### श्लोक संख्या: 3.09

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ 09 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ (परमात्मा या दूसरों की सेवा) के लिए किए जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त अन्य कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य कर्मों से बंधता है। इसलिए हे कौन्तेय! तू आसक्ति छोड़कर उसी (यज्ञ) के लिए कर्म कर।

#### सरल व्याख्या:

'यज्ञ' का अर्थ केवल हवन नहीं है, बल्कि वह हर कार्य है जो निस्वार्थ भाव से समाज या ईश्वर के लिए किया जाए। जब हम अपने स्वार्थ (सिर्फ मेरे लिए) के लिए काम करते हैं, तो वह बंधन बन जाता है। लेकिन जब हम कर्म को एक पूजा या सेवा बना देते हैं, तो वह हमें मुक्त कर देता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... निस्वार्थ भाव से किया गया सेवा रूपी कर्म ही मनुष्य को बंधनों से मुक्त करता है।

### श्लोक संख्या: 3.10

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

प्रजापति ब्रह्मा ने कल्प के आदि में यज्ञ सहित प्रजाओं को रचकर उनसे कहा कि तुम लोग इस यज्ञ द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुम लोगों को इच्छित भोग प्रदान करने वाला हो।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि के आरंभ में ही यह विधान बनाया गया कि मनुष्य का जीवन 'यज्ञ' यानी परस्पर सहयोग और सेवा के बिना अधूरा है। ब्रह्मा जी ने सिखाया कि यह यज्ञ भाव ही वह कामधेनु है जो तुम्हारी सभी आवश्यकताओं को पूरा करेगा। जब हम स्वार्थ छोड़कर एक-दूसरे के हित के लिए कर्म करते हैं, तभी समाज और व्यक्ति की वास्तविक उन्नति संभव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निस्वार्थ कर्म और सेवा भाव ही मनुष्य की प्रगति का मूल आधार है।

### श्लोक संख्या: 3.11

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः |  
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ || 11 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

तुम लोग इस यज्ञ द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें; इस प्रकार निस्वार्थ भाव से एक-दूसरे को उन्नत करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे।

#### सरल व्याख्या:

यह जीवन एक चक्र है। जब हम अपने शुभ कर्मों से प्रकृति और दैवीय शक्तियों का पोषण करते हैं, तो बदले में वे शक्तियाँ हमें सुख और अनुकूलता प्रदान करती हैं। मनुष्य और प्रकृति के बीच यह लेन-देन जब निस्वार्थ होता है, तब वह 'परम कल्याण' का मार्ग बन जाता है। हमें प्रकृति से जो मिलता है, उसे कृतज्ञता के साथ वापस लौटाना ही धर्म है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति और मनुष्य के बीच परस्पर सद्भाव और कर्तव्य पालन ही सुखद जीवन की कुंजी है।

### श्लोक संख्या: 3.12

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः |  
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः || 12 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ द्वारा बढ़ाए हुए देवता तुम लोगों को बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं द्वारा दिए हुए भोगों को जो पुरुष उनको दिए बिना स्वयं भोगता है, वह निश्चय ही चोर है।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि की व्यवस्था से हमें भोजन, जल और वायु जैसे अनगिनत उपहार मिलते हैं। यदि हम इन सुखों का उपभोग तो करते हैं, लेकिन बदले में समाज या प्रकृति के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते, तो हम एक 'चोर' के समान हैं। जो केवल लेता है और देता कुछ नहीं, वह ऋण के जाल में फँस जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल अपने भोग के लिए जीना अनैतिक है; प्राप्त सुखों के बदले कर्तव्य निभाना अनिवार्य है।



### श्लोक संख्या: 3.13

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग केवल अपने शरीर पोषण के लिए ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जो व्यक्ति अपने कर्मों का फल पहले दूसरों की सेवा और ईश्वर के अर्पण में लगाता है, उसका जीवन पवित्र हो जाता है। वह जो कुछ भी ग्रहण करता है, वह 'प्रसाद' बन जाता है। इसके विपरीत, जो केवल अपनी भूख और स्वार्थ को शांत करने के लिए संसाधन जुटाता है, वह अनजाने में बुराई और तनाव (पाप) को ही संचित करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बाँटकर और सेवा भाव से जीना ही मानसिक और आध्यात्मिक शुद्धि का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 3.14 - 3.15

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ 14 ॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वृष्टि (वर्षा) से होती है, वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ विहित कर्मों से उत्पन्न होने वाला है। कर्म समुदाय को तू वेद से उत्पन्न जान और वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुआ है; इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ कर्म की दिव्यता का विज्ञान समझा रहे हैं। जीवन अन्न पर, अन्न वर्षा पर और वर्षा प्रकृति के संतुलन (यज्ञ) पर टिकी है। यह यज्ञ श्रेष्ठ कर्मों से संभव होता है और ऐसे कर्मों का ज्ञान अविनाशी परमात्मा से आता है। अतः जब भी कोई निस्वार्थ कर्म किया जाता है, वहाँ साक्षात् परमात्मा मौजूद होते हैं।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... हमारे छोटे से छोटे कर्तव्य कर्म का गहरा संबंध उस अनंत ईश्वरीय व्यवस्था से है।

### श्लोक संख्या: 3.16

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो पुरुष इस लोक में इस प्रकार चलाए हुए सृष्टि-चक्र के अनुसार नहीं वर्तता (कर्तव्य पालन नहीं करता), वह इन्द्रिय-भोगों में रमण करने वाला पापायु पुरुष व्यर्थ ही जीता है।

#### सरल व्याख्या:

यह संपूर्ण ब्रह्मांड एक चक्र की तरह घूम रहा है जहाँ हर अंश दूसरे के काम आ रहा है। जो मनुष्य इस चक्र को जानते हुए भी आलस्यवश अपना कर्तव्य पूरा नहीं करता और केवल इन्द्रियों के सुख में डूबा रहता है, उसका जीवन व्यर्थ है। वह सृष्टि की लय को बिगाड़ता है और स्वयं भी अशांति प्राप्त करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सृष्टि के नियमों और कर्तव्यों की अवहेलना करने वाला व्यक्ति अपना जीवन निष्फल कर लेता है।

### श्लोक संख्या: 3.17

यस्त्वारतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।

आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु जो मनुष्य आत्मा में ही प्रीति रखने वाला, आत्मा में ही तृप्त और आत्मा में ही संतुष्ट है, उसके लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता।

#### सरल व्याख्या:

जब कोई व्यक्ति निरंतर साधना और निष्काम कर्म करते हुए आत्मज्ञान की उस अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ उसकी खुशी किसी बाहरी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति पर निर्भर नहीं रहती, तब वह कर्मों के 'बंधन' से मुक्त हो जाता है। वह स्वयं में ही पूर्ण है, इसलिए उसे अब कुछ पाने के लिए कर्म करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण आत्मतृप्ति की अवस्था प्राप्त होने पर ही व्यक्ति कर्मों के दायित्व से ऊपर उठता है।

### श्लोक संख्या: 3.18

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन |  
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः || 18 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न ही कर्मों के न करने से; तथा समस्त प्राणियों में भी उसका किसी स्वार्थ का संबंध नहीं रहता।

#### सरल व्याख्या:

जो व्यक्ति आत्मज्ञानी हो चुका है, वह कर्मों के बंधन से ऊपर उठ जाता है। वह इसलिए कर्म नहीं करता कि उसे कुछ पाना है, और न ही इसलिए कर्म छोड़ता है कि उसे कुछ बचाना है। उसकी प्रसन्नता उसके भीतर से आती है, बाहर के किसी व्यक्ति या वस्तु से नहीं। वह पूर्णतः स्वतंत्र है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञानी पुरुष फल की इच्छा से मुक्त होकर केवल लोक-कल्याण के लिए सहज भाव से कार्य करता है।

### श्लोक संख्या: 3.19

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर |  
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः || 19 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा अपने कर्तव्य कर्म को कर; क्योंकि आसक्ति रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

चूँकि अभी वह पूर्ण अवस्था नहीं आई जहाँ कर्म स्वतः शांत हो जाएँ, इसलिए भगवान अर्जुन को 'अनासक्त' (Detached) रहने की सलाह देते हैं। काम करना तो जरूरी है, पर काम में फँसना गलत है। जब हम फल की चिंता छोड़कर केवल कर्म पर ध्यान देते हैं, तो वही कर्म हमारी साधना बन जाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... फल की आसक्ति छोड़कर किया गया निरंतर कर्म ही ईश्वर तक पहुँचने का सीधा मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 3.20

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः |

लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि || 20 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

राजा जनक जैसे अनेक ज्ञानी जन भी कर्मों के द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिए लोक-कल्याण (लोक-संग्रह) को देखते हुए भी तुझे कर्म करना ही उचित है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान उदाहरण देते हैं कि बड़े-बड़े राजाओं ने महलों में रहकर और राज-काज संभालते हुए भी मोक्ष पाया। उन्होंने कर्म को बाधा नहीं माना। ज्ञानी व्यक्ति इसलिए कर्म करता है ताकि वह समाज को रास्ता दिखा सके और संसार की व्यवस्था बनी रहे। इसे 'लोक-संग्रह' कहा जाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाना और आदर्श प्रस्तुत करना साधना का ही एक अंग है।

### श्लोक संख्या: 3.21

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः |

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते || 21 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य मनुष्य भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण (आदर्श) प्रस्तुत कर देता है, समस्त जन-समुदाय उसी के अनुसार चलने लगता है।

#### सरल व्याख्या:

आम लोग हमेशा अपने से ऊपर के व्यक्तियों को देखते हैं। अगर किसी समाज के मार्गदर्शक (नेता, माता-पिता या गुरु) आलसी हो जाएँ या धर्म छोड़ दें, तो पूरी जनता भटक जाएगी। इसलिए श्रेष्ठ व्यक्तियों पर यह बड़ी जिम्मेदारी है कि वे कठिन समय में भी अपने कर्तव्य से न डिगें।

ये श्लोक हमें बताता है कि... हमारे आचरण का प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है, इसलिए हमें एक आदर्श व्यक्तित्व प्रस्तुत करना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 3.22

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।  
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! तीनों लोकों में मेरे लिए न तो कुछ कर्तव्य है और न ही कोई ऐसी वस्तु है जिसे प्राप्त करना बाकी हो, फिर भी मैं कर्म में ही लगा रहता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान स्वयं का उदाहरण देते हैं। वे पूर्ण हैं, उन्हें किसी भी कर्म से कुछ हासिल नहीं करना है, फिर भी वे एक रथ चलाने वाले के रूप में अर्जुन की सेवा कर रहे हैं। वे सिखा रहे हैं कि जब स्वयं ईश्वर कर्म कर रहे हैं, तो मनुष्य को कर्मों का त्याग करने का अहंकार नहीं करना चाहिए।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्म केवल अभाव की पूर्ति के लिए नहीं, बल्कि सृष्टि की मर्यादा बनाए रखने के लिए किया जाता है।

### श्लोक संख्या: 3.23

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।  
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि हे पार्थ! यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मों में न लगूँ, तो सब मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करेंगे।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि लोग उन्हें अपना आदर्श मानते हैं। यदि वे कर्म करना बंद कर दें, तो पूरी दुनिया इसे बहाना बनाकर आलसी और अकर्मण्य हो जाएगी। ईश्वर का अवतार मनुष्य को सक्रिय और जागृत बनाने के लिए होता है, न कि उसे आलस्य की ओर धकेलने के लिए।

ये श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ पदों पर बैठे लोगों को अपनी जिम्मेदारी के प्रति हमेशा सावधान रहना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 3.24

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम् ।

सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब लोक नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगे और मैं वर्णसंकरता (अव्यवस्था) का करने वाला होऊँगा तथा इस समस्त प्रजा का विनाश करने वाला बनूँगा।

#### सरल व्याख्या:

भगवान समझाते हैं कि कर्म ही इस सृष्टि को थामे हुए है। यदि सूरज उगना बंद कर दे या हवा बहना बंद कर दे, तो प्रलय आ जाएगी। वैसे ही यदि मनुष्य अपने कर्तव्यों से भागने लगे, तो समाज में अराजकता फैल जाएगी। कर्म का त्याग करना धर्म नहीं, बल्कि सृष्टि के विनाश का कारण बन सकता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य का त्याग सामाजिक पतन और अव्यवस्था को जन्म देता है।

### श्लोक संख्या: 3.25

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ 25 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्ति रहित विद्वान को भी लोक-कल्याण की इच्छा से उसी प्रकार कर्म करना चाहिए।

#### सरल व्याख्या:

अज्ञानी व्यक्ति बहुत मेहनत करता है क्योंकि उसे फल का लालच है। भगवान कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति को भी उतनी ही लगन से काम करना चाहिए, पर उसका उद्देश्य लालच नहीं बल्कि 'लोक-सेवा' होना चाहिए। कर्म में ढिलाई नहीं होनी चाहिए, केवल कर्म के पीछे का भाव बदलना चाहिए।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कुशलता और लगन ज्ञानी और अज्ञानी दोनों में होनी चाहिए, केवल उद्देश्य का अंतर होता है।

### श्लोक संख्या: 3.26

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम् ।  
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानी पुरुषों की बुद्धि में विद्वान को भ्रम उत्पन्न नहीं करना चाहिए, बल्कि स्वयं योग में स्थित होकर और सब कर्मों को अच्छी तरह करते हुए उनसे भी वैसा ही करवाना चाहिए।

#### सरल व्याख्या:

अगर कोई ज्ञानी अचानक अज्ञानियों से कहे कि "कर्म सब माया है, इसे छोड़ दो", तो वे अज्ञानी कर्म तो छोड़ देंगे पर ज्ञान नहीं पा सकेंगे। इससे वे भ्रमित हो जाएंगे। ज्ञानी का काम है कि वह खुद कर्म करके दिखाए और धीरे-धीरे दूसरों को भी निष्काम कर्म की ओर प्रेरित करे।

ये श्लोक हमें बताता है कि... उपदेश से अधिक प्रभावशाली स्वयं का आचरण होता है, जो दूसरों को सही दिशा देता है।

### श्लोक संख्या: 3.27

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।  
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ 27 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वास्तव में सब कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाते हैं, किन्तु अहंकार से मोहित अंतःकरण वाला पुरुष 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मानता है।

#### सरल व्याख्या:

साधना का एक महत्वपूर्ण पड़ाव यह जानना है कि शरीर, मन और इन्द्रियाँ प्रकृति के तीन गुणों (सत्, रज, तम) के प्रभाव में काम कर रही हैं। जैसे मोटर बिजली से चलती है, वैसे ही शरीर प्रकृति से चल रहा है। 'मैं कर रहा हूँ'—यह विचार ही वह पर्दा है जो हमें सत्य से दूर रखता है। इस अहंकार को मिटाना ही कर्मयोग का लक्ष्य है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कर्तापन का भाव ही अज्ञान का मूल है, जो हमें कर्मों के बंधन में बाँधता है।

### श्लोक संख्या: 3.28

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ।

गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ 28 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु हे महाबाहो! गुण-विभाग और कर्म-विभाग के तत्त्व को जानने वाला महापुरुष यह मानकर कि 'गुण ही गुणों में बरत रहे हैं', उनमें आसक्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञानी व्यक्ति यह समझ लेता है कि इन्द्रियाँ (जो प्रकृति के गुणों से बनी हैं) अपने विषयों में (जो भी गुणों से बने हैं) काम कर रही हैं। वह स्वयं को उस क्रिया से अलग एक साक्षी (Observer) के रूप में देखता है। वह जानता है कि वह आत्मा है और आत्मा कुछ नहीं करती। इस बोध के कारण वह कर्म करते हुए भी बंधन मुक्त रहता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं को प्रकृति के कार्यों से पृथक् अनुभव करना ही वास्तविक स्वतंत्रता है।

### श्लोक संख्या: 3.29

प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ।

तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥ 29 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

प्रकृति के गुणों से अत्यंत मोहित हुए मनुष्य गुणों और कर्मों में आसक्त रहते हैं; उन पूर्णतया न समझने वाले मंदबुद्धि अज्ञानियों को पूर्ण ज्ञानी विचलित न करे।

#### सरल व्याख्या:

जो लोग पूरी तरह संसार के भोगों और शरीर के मोह में फँसे हैं, वे अभी सत्य को नहीं समझ सकते। उन्हें एकदम से बड़े प्रवचन देकर उनके विश्वास को नहीं हिलाना चाहिए। ज्ञानी को धैर्य रखना चाहिए और उन्हें धीरे-धीरे उनकी अपनी क्षमता के अनुसार उन्नति की ओर ले जाना चाहिए।

ये श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान देने में पात्रता का ध्यान रखना आवश्यक है ताकि अज्ञानी भ्रमित न हों।



### श्लोक संख्या: 3.30

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा ।  
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ 30 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मुझमें अपने सब कर्मों को अर्पित करके, अध्यात्म बुद्धि के साथ, आशा, ममता और संताप से रहित होकर तू युद्ध कर।

#### सरल व्याख्या:

यह कर्मयोग का सर्वोच्च उपदेश है। भगवान कहते हैं—"कर्तापन मुझे सौंप दो, फल की उम्मीद छोड़ दो, 'मेरा' का भाव हटा दो और मन की घबराहट को मिटाकर अपना कर्तव्य पूरा करो।" जब हम ईश्वर को केंद्र में रखकर काम करते हैं, तो युद्ध जैसा कठिन कार्य भी एक पवित्र साधना बन जाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरार्पण बुद्धि और मानसिक शांति के साथ किया गया कर्म ही जीवन का लक्ष्य है।

### श्लोक संख्या: 3.31 - 3.32

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।  
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥ 31 ॥  
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।  
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ 32 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य दोष दृष्टि से रहित होकर और श्रद्धापूर्वक मेरे इस मत का सदा अनुसरण करते हैं, वे भी कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। किन्तु जो लोग मुझमें दोष निकालते हुए मेरे इस मत का अनुसरण नहीं करते, उन सबको तू ज्ञान में मोहित और नष्ट हुआ ही समझ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान के शब्दों में श्रद्धा रखना जरूरी है। जो लोग केवल कमियाँ ढूँढते हैं, वे ज्ञान की गहराई को कभी नहीं छू सकते। जो इस मार्ग पर चलता है, वह कर्मों के जाल से निकल जाता है। जो अहंकारवश इसका विरोध करता है, वह अपनी बुद्धि का ही नुकसान करता है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... श्रद्धापूर्वक सत्य को स्वीकार करना ही प्रगति का मार्ग है, जबकि संशय और दोष-दृष्टि विनाश का कारण है।

### श्लोक संख्या: 3.33

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि |  
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति (स्वभाव) के अनुसार ही चेष्टा करता है; क्योंकि सभी प्राणी अपनी प्रकृति को ही प्राप्त होते हैं, फिर इसमें किसी का हठ (दमन) क्या करेगा?

#### सरल व्याख्या:

हर इंसान अपने जन्मजात संस्कारों और स्वभाव से बंधा है। यहाँ तक कि ज्ञानी का भी अपना एक विशेष स्वभाव होता है। भगवान कहते हैं कि जबरदस्ती अपनी प्रवृत्तियों को दबाने से काम नहीं चलेगा। स्वभाव को धीरे-धीरे साधना के माध्यम से दिशा देनी पड़ती है, उसे कुचलना संभव नहीं है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... अपनी प्रकृति को जानकर उसे उचित दिशा देना ही बुद्धिमानी है, व्यर्थ का दमन नहीं।

### श्लोक संख्या: 3.34

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ |  
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इन्द्रिय-इन्द्रिय के अर्थ में (विषयों में) राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं; मनुष्य को उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिए, क्योंकि वे दोनों ही इसके मार्ग में रुकावट डालने वाले शत्रु हैं।

#### सरल व्याख्या:

जैसे ही हम कुछ देखते या सुनते हैं, या तो हमें उससे प्रेम (राग) हो जाता है या नफरत (द्वेष)। भगवान कहते हैं कि ये दोनों ही जंजीरें हैं। साधक को इन दोनों प्रतिक्रियाओं से ऊपर उठना चाहिए। जो चीज मिल रही है उसे बिना मोह के स्वीकार करना और जो नहीं है उसे बिना द्वेष के छोड़ना ही साधना है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... राग और द्वेष ही हमारी प्रगति के असली बाधक हैं, जिनसे सावधान रहना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 3.35

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ 35 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म की अपेक्षा, गुणों से रहित अपना धर्म श्रेष्ठ है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी है, किन्तु दूसरे का धर्म भय को देने वाला है।

#### सरल व्याख्या:

स्वधर्म का अर्थ है वह कर्तव्य जो आपके स्वभाव के अनुसार है। दूसरों की नकल करना मानसिक अशांति लाता है। भले ही आपका काम छोटा हो, पर यदि वह आपका स्वाभाविक धर्म है, तो वही आपको शांति देगा। पराया धर्म (स्वभाव के विपरीत काम) ऊपर से कितना भी अच्छा लगे, वह अंततः नुकसान ही पहुँचाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... अपनी सहज प्रकृति के अनुसार कर्तव्य पालन करना ही आत्मिक संतोष का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 3.36

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।

अनिच्छन्नपि वाष्पेय बलादिव नियोजितः ॥ 36 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन ने पूछा—हे वाष्पेय! फिर यह मनुष्य न चाहता हुआ भी किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है, मानो उसे किसी ने बलपूर्वक लगा दिया हो?

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन हम सबकी व्यथा पूछ रहा है। हम जानते हैं कि क्रोध या लालच बुरा है, फिर भी हम हार जाते हैं। वह कौन सी गुप्त शक्ति है जो हमें गलत काम करने पर मजबूर करती है?

### श्लोक संख्या: 3.37

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ 37 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—रजोगुण से उत्पन्न होने वाला यह 'काम' (इच्छा) ही है और यही 'क्रोध' है। यह बहुत खाने वाला (कभी न तृप्त होने वाला) और बड़ा पापी है; इसे ही तू इस विषय में अपना शत्रु जान।

#### सरल व्याख्या:

असली दुश्मन हमारी इच्छाएँ (काम) हैं। जब इच्छा पूरी नहीं होती, तो वह क्रोध में बदल जाती है। यह इच्छा कभी खत्म नहीं होती, यह आग में घी की तरह है। यही वह शक्ति है जो हमसे गलत काम करवाती है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... अनियंत्रित कामनाएँ ही सब बुराइयों की जड़ और हमारी सबसे बड़ी दुश्मन हैं।

### श्लोक संख्या: 3.38

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ 38 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस प्रकार धुँ से अग्नि, धूल से दर्पण और झिल्ली से गर्भ ढका रहता है, उसी प्रकार उस काम (इच्छा) के द्वारा यह ज्ञान ढका हुआ है।

#### सरल व्याख्या:

हम सबके भीतर ज्ञान का प्रकाश है, पर उसे कामनाओं के धुँ ने ढँक रखा है। जैसे गंदे शीशे में चेहरा नहीं दिखता, वैसे ही वासनाओं से भरे मन में परमात्मा का दर्शन नहीं होता। यह आवरण जितना गहरा होगा, मनुष्य उतना ही भ्रमित रहेगा।

ये श्लोक हमें बताता है कि... इच्छाएँ हमारे विवेक को धुंधला कर देती हैं, जिससे हम सत्य को नहीं देख पाते।

### श्लोक संख्या: 3.39

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा |  
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च || 39 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कौन्तेय! इस कभी न तृप्त होने वाली और अग्नि के समान जलने वाली कामरूपी ज्ञानियों के नित्य शत्रु द्वारा मनुष्य का ज्ञान ढका हुआ है।

#### सरल व्याख्या:

इच्छा एक ऐसा शत्रु है जो कभी दोस्त नहीं बनता। अज्ञानी को तो लगता है कि इच्छा पूरी होने पर शांति मिलेगी, पर ज्ञानी जानता है कि इच्छा तो आग की तरह है जो और बढ़ेगी। यह हमारे विवेक को निरंतर जलाती रहती है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... कामनाओं की पूर्ति से शांति नहीं मिलती, बल्कि वे और अधिक प्रबल होती जाती हैं।

### श्लोक संख्या: 3.40

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते |  
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् || 40 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—ये सब इस काम के निवास स्थान कहे जाते हैं। यह काम इन सबके द्वारा ही ज्ञान को ढँककर जीवात्मा को मोहित करता है।

#### सरल व्याख्या:

दुश्मन कहाँ छिपा है? वह हमारी इन्द्रियों में (देखने-सुनने के लालच में), हमारे मन में (ख्वाबों में) और हमारी बुद्धि में (गलत तर्कों में) छिपा बैठा है। वह यहीं से हमें कंट्रोल करता है और हमें अंधकार की ओर ले जाता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-संयम के लिए इन्द्रियों, मन और बुद्धि को शुद्ध करना अनिवार्य है।

### श्लोक संख्या: 3.41

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ |

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् || 41 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए हे भरतश्रेष्ठ! तू पहले इन्द्रियों को वश में करके, ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले इस पापी काम को निश्चय ही मार डाल।

#### सरल व्याख्या:

भगवान समाधान बताते हैं—सबसे पहले अपनी इन्द्रियों पर ब्रेक लगाओ। जब तक बाहरी इनपुट (देखना, सुनना) कंट्रोल में नहीं होगा, मन शांत नहीं होगा। इस इच्छा रूपी शत्रु को खत्म करना ही होगा क्योंकि यह केवल सुख ही नहीं छीनता, बल्कि हमारे सोचने-समझने की शक्ति (ज्ञान-विज्ञान) को भी नष्ट कर देता है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रिय-निग्रह ही इच्छाओं पर विजय पाने का पहला और अनिवार्य कदम है।

### श्लोक संख्या: 3.42

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः |

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः || 42 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

शरीर से परे इन्द्रियाँ कही जाती हैं, इन्द्रियों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है और जो बुद्धि से भी परे है, वह 'वह' (आत्मा) है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक नक्शा देते हैं। हमारा शरीर सबसे कमजोर है, उससे ताकतवर इन्द्रियाँ हैं, उनसे ताकतवर मन है, मन से ताकतवर बुद्धि है। लेकिन इन सबसे ऊपर 'आत्मा' है। अगर हम खुद को आत्मा के स्तर पर खड़ा कर लें, तो हम मन और इन्द्रियों को आसानी से काबू कर सकते हैं।

ये श्लोक हमें बताता है कि... आत्मा की शक्ति सर्वोच्च है, और उसकी शरण में रहकर ही मन को जीता जा सकता है।

### श्लोक संख्या: 3.43

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ 43 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस प्रकार बुद्धि से परे उस आत्मा को जानकर और बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके, हे महाबाहो! तू इस कामरूपी दुर्जेय शत्रु को मार डाल।

#### सरल व्याख्या:

इस अध्याय का निष्कर्ष है—अपनी आत्मिक शक्ति को पहचानो। जब तुम जान जाओगे कि तुम उस अविनाशी परमात्मा का हिस्सा हो, तो ये तुच्छ सांसारिक इच्छाएं तुम्हें नहीं डरा पाएंगी। अपनी बुद्धि को आत्मा में स्थिर करो और फिर उस स्थिर बुद्धि से इस कठिन शत्रु 'काम' को परास्त करो। यही असली युद्ध है और यही कर्मयोग की विजय है।

ये श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-साक्षात्कार ही सभी मानसिक विकारों और इच्छाओं पर अंतिम विजय पाने का उपाय है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram





## अध्याय 4: ज्ञानकर्मसंन्यासयोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 4.01

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—मैंने इस अविनाशी योग को कल्प के आदि में सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने राजा इक्ष्वाकु से कहा।

### सरल व्याख्या:

भगवान् इस ज्ञान की प्राचीनता और प्रामाणिकता को स्पष्ट कर रहे हैं। यह योग कोई नया विचार नहीं है, बल्कि सृष्टि के आरम्भ से चला आ रहा शाश्वत सत्य है। यह ज्ञान सबसे पहले सूर्य को दिया गया, जो ऊर्जा और प्रकाश का प्रतीक है, ताकि वे इसे संसार में फैला सकें। इससे पता चलता है कि यह ज्ञान राजाओं और ऋषियों के माध्यम से समाज के संचालन के लिए उपयोग किया जाता था।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य शाश्वत और अपरिवर्तनीय है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी महापुरुषों द्वारा हस्तांतरित किया जाता है।

## श्लोक संख्या: 4.02

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।

स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

हे परंतप अर्जुन! इस प्रकार परंपरा से प्राप्त इस योग को राजर्षियों ने जाना, किन्तु वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में लुप्तप्राय हो गया।

### सरल व्याख्या:

ज्ञान जब परंपरा से जुड़ा रहता है, तब तक जीवित रहता है। लेकिन समय के प्रभाव से, मनुष्यों की स्वार्थपरता और विस्मृति के कारण यह दिव्य योग लुप्त हो गया। यहाँ 'नष्ट' होने का अर्थ यह नहीं कि सत्य समाप्त हो गया, बल्कि यह कि लोगों के अनुभव और आचरण से ओझल हो गया। भगवान् पुनः उसी लुप्त कड़ी को जोड़ने आए हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समय के साथ आध्यात्मिक ज्ञान धुंधला पड़ जाता है, जिसे पुनः जाग्रत करने की आवश्यकता होती है।

### श्लोक संख्या: 4.03

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ 03 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझसे कहा है, क्योंकि तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है; इसलिए यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन को इस ज्ञान का पात्र मानते हैं। ज्ञान केवल बुद्धिमान होने से नहीं, बल्कि 'हृदय' के शुद्ध होने से प्राप्त होता है। अर्जुन भक्त भी है और मित्र भी, अर्थात् उसमें समर्पण और प्रेम दोनों हैं। यह योग एक 'रहस्य' है क्योंकि इसे केवल तर्क से नहीं, बल्कि अनुभव और श्रद्धा से ही समझा जा सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने के लिए पात्रता और गुरु के प्रति श्रद्धा का भाव होना अनिवार्य है।

### श्लोक संख्या: 4.04

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ।

कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ 04 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—आपका जन्म तो अभी हाल का है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है; अतः मैं इस बात को कैसे समझूँ कि आप ही ने कल्प के आदि में सूर्य से यह योग कहा था?

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ एक जिज्ञासु साधक की तरह प्रश्न कर रहे हैं। वे कृष्ण को उनके मानवीय शरीर के रूप में देख रहे हैं। उन्हें आश्चर्य है कि वर्तमान समय के कृष्ण ने हजारों साल पहले सूर्य को उपदेश कैसे दिया होगा। यह प्रश्न हम सबके मन में उठने वाले संशय का प्रतिनिधित्व करता है जो ईश्वर के अजन्मे स्वरूप को नहीं पहचान पाते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानवीय बुद्धि की एक सीमा है, जिसके पार जाने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है।

#### श्लोक संख्या: 4.05

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन |  
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप || 05 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे परंतप अर्जुन! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूँ, किन्तु तू नहीं जानता।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ 'जीव' और 'ईश्वर' के अंतर को स्पष्ट करते हैं। आत्मा अमर है और वह अनेक शरीरों से गुजरती है। जीव अपनी अज्ञानता और माया के कारण पिछले जन्मों को भूल जाता है, लेकिन परमात्मा माया के स्वामी हैं, इसलिए उन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान का पूर्ण ज्ञान रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान के अभाव में मनुष्य स्वयं को केवल इस वर्तमान शरीर तक सीमित मान लेता है, जबकि वह अनंत यात्रा का हिस्सा है।

#### श्लोक संख्या: 4.06

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् |  
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया || 06 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं अजन्मा और अविनाशी स्वरूप होते हुए भी तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी, अपनी प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अपने अवतार का रहस्य बताते हैं। वे साधारण मनुष्य की तरह कर्मों के वश होकर जन्म नहीं लेते। वे प्रकृति के तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) के स्वामी हैं, उनके गुलाम नहीं। वे अपनी दिव्य शक्ति (योगमाया) का आश्रय लेकर स्वेच्छा से संसार में शरीर धारण करते हैं ताकि धर्म की रक्षा हो सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का जन्म दिव्य और अलौकिक है, वे प्रकृति के नियमों से ऊपर हैं।

#### श्लोक संख्या: 4.07

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत |

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् || 07 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् प्रकट होता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह ईश्वर के धरती पर आने का समय निश्चित करता है। 'धर्म' का अर्थ है वह व्यवस्था जो सृष्टि को धारण करती है। जब समाज में नैतिकता गिर जाती है, अन्याय बढ़ जाता है और मानवता का पतन होने लगता है, तब परमात्मा स्वयं को साकार रूप में प्रकट करते हैं ताकि बिगड़े हुए संतुलन को पुनः सुधारा जा सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर अधर्म को अनियंत्रित नहीं होने देते और समय-समय पर स्वयं हस्तक्षेप करते हैं।

#### श्लोक संख्या: 4.08

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् |

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे || 08 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

साधु पुरुषों के उद्धार के लिए, पापकर्म करने वालों के विनाश के लिए और धर्म की भलीभाँति स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अवतार के तीन मुख्य कार्य हैं: सज्जन व्यक्तियों की रक्षा करना, जिनके मन में ईश्वरीय प्रेम है; नकारात्मक प्रवृत्तियों और बुराई का अंत करना; और समाज में न्याय व धर्म की मर्यादा को फिर से स्थापित करना। यहाँ विनाश का भाव केवल वध नहीं, बल्कि अधर्म की बुद्धि का शुद्धिकरण भी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय शक्ति का उद्देश्य सदैव न्याय और सत्य की विजय सुनिश्चित करना है।

### श्लोक संख्या: 4.09

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः |

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन || 09 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्व से जान लेता है, वह शरीर को त्यागकर फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता, बल्कि मुझे ही प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान के अवतार और उनके द्वारा किए गए कार्यों को साधारण मानवीय क्रिया न मानकर, उन्हें ईश्वरीय संकल्प के रूप में समझना ही 'तत्व से जानना' है। जो व्यक्ति इस गहराई को समझ लेता है, उसके भीतर का मोह और अहंकार नष्ट हो जाता है। ऐसा ज्ञानी पुरुष मृत्यु के पश्चात जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर परमात्मा में विलीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के दिव्य स्वरूप का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 4.10

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः |

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिनके राग, भय और क्रोध सर्वथा नष्ट हो गए हैं और जो मुझमें अनन्य प्रेमपूर्वक स्थित हैं, ऐसे मेरे आश्रित रहने वाले बहुत से भक्त उपर्युक्त ज्ञानरूपी तप से पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं।

#### सरल व्याख्या:

मुक्ति पाने की विधि बताई गई है। सबसे पहले आसक्ति (राग), असुरक्षा (भय) और क्रोध का त्याग करना होगा। जब मन इन विकारों से खाली होता है, तभी वह परमात्मा के प्रेम से भर सकता है। इस शुद्धिकरण की प्रक्रिया को 'ज्ञान का तप' कहा गया है। इतिहास में अनेक महापुरुषों ने इसी मार्ग पर चलकर ईश्वरत्व को प्राप्त किया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक विकारों से मुक्ति और ईश्वर पर पूर्ण निर्भरता ही आत्म-साक्षात्कार का आधार है।

### श्लोक संख्या: 4.11

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ अपनी निष्पक्षता प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि जो जिस भाव से मेरी शरण लेता है, मैं उसे उसी रूप में प्राप्त होता हूँ। चाहे कोई उन्हें सखा माने, स्वामी माने या निराकार सत्य के रूप में खोजे, वे हर पुकार का उत्तर देते हैं। अंततः संसार की हर खोज, चाहे अनजाने में ही क्यों न हो, परमात्मा की ही ओर एक कदम है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के साथ हमारा जैसा भाव और संबंध होगा, उनकी प्राप्ति भी हमें वैसी ही होगी।

### श्लोक संख्या: 4.12

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस मनुष्य लोक में कर्मों के फल को चाहने वाले लोग देवताओं का पूजन किया करते हैं, क्योंकि कर्मों से उत्पन्न होने वाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।

#### सरल व्याख्या:

ज्यादातर मनुष्य संसार की वस्तुओं जैसे धन, मान और सफलता के पीछे भागते हैं। इन क्षणभंगुर इच्छाओं की पूर्ति के लिए वे विभिन्न शक्तियों की उपासना करते हैं, और सांसारिक सफलता जल्दी मिल भी जाती है। लेकिन भगवान यहाँ संकेत दे रहे हैं कि तात्कालिक लाभ के बदले उस शाश्वत शांति की खोज करनी चाहिए जो निष्काम भाव से मिलती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक सफलता सुलभ है, परंतु आत्मिक उन्नति के लिए धैर्य और निस्वार्थ भाव की आवश्यकता होती है।

### श्लोक संख्या: 4.13

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।  
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों का समूह गुण और कर्मों के विभाग पूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। इस प्रकार उस सृष्टि-रचना आदि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान।

#### सरल व्याख्या:

समाज की व्यवस्था गुणों (स्वभाव) और कर्मों (कार्यक्षमता) के आधार पर बनाई गई है। व्यक्ति की प्रवृत्ति ही उसके वर्ण का निर्धारण करती है। भगवान स्पष्ट करते हैं कि यद्यपि यह व्यवस्था उन्होंने रची है, फिर भी वे इसमें लिप्त नहीं हैं। वे सब कुछ करते हुए भी स्वयं को इनसे ऊपर और निर्लिप्त रखते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय विधान गुणों और कर्मों पर आधारित है, और परमात्मा सब कुछ रचकर भी अलिप्त रहते हैं।

### श्लोक संख्या: 4.14

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।  
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कर्मों के फल में मेरी स्पृहा (आसक्ति) नहीं है, इसलिए मुझे कर्म लिप्त नहीं करते। इस प्रकार जो मुझे तत्व से जान लेता है, वह भी कर्मों से नहीं बँधता।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा कर्म तो करते हैं, लेकिन उनके पीछे कोई निजी इच्छा या स्वार्थ नहीं होता, इसीलिए कर्मों का बंधन उन पर लागू नहीं होता। जो मनुष्य इस सत्य को समझ लेता है और ईश्वर के इसी आदर्श को अपने जीवन में उतारता है, वह भी कर्म करते हुए उनके फलों के जाल में नहीं फँसता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म नहीं, बल्कि फल की इच्छा ही बंधन का असली कारण है।



### श्लोक संख्या: 4.15

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

पूर्वकाल के मुमुक्षुओं (मोक्ष चाहने वालों) ने भी ऐसा जानकर ही कर्म किए हैं, इसलिए तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किए जाने वाले कर्मों को ही कर।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि प्राचीन काल के महान ऋषियों और राजाओं ने भी इसी निष्काम भाव को अपनाकर अपने कर्तव्यों का पालन किया और मुक्ति प्राप्त की। वे अर्जुन को सलाह देते हैं कि उसे कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए, बल्कि उन्हीं महापुरुषों के पदचिह्नों पर चलकर अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य का पालन करते हुए भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते भाव निष्काम हो।

### श्लोक संख्या: 4.16

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कर्म क्या है और अकर्म क्या है—इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित (भ्रमित) हो जाते हैं। इसलिए वह कर्म तत्व मैं तुझे भलीभाँति समझाकर कहूँगा, जिसे जानकर तू अशुभ (संसार-बंधन) से मुक्त हो जाएगा।

#### सरल व्याख्या:

कर्म की परिभाषा केवल हाथ-पैर हिलाना नहीं है। कभी-कभी शांत बैठना भी एक बड़ा कर्म होता है और कभी-कभी भाग-दौड़ करते हुए भी मनुष्य भीतर से अकर्ता होता है। इस सूक्ष्म भेद को समझना बड़े-बड़े विद्वानों के लिए भी कठिन है। भगवान् इसी गुत्थी को सुलझाने का आश्वासन देते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म की प्रकृति बहुत सूक्ष्म है और इसे समझना आध्यात्मिक मार्ग के लिए अनिवार्य है।

### श्लोक संख्या: 4.17

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।

अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए; क्योंकि कर्म की गति गहन है।

#### सरल व्याख्या:

तीन प्रकार की क्रियाओं को समझना ज़रूरी है: 'कर्म' (शास्त्र सम्मत कर्तव्य), 'विकर्म' (वर्जित या गलत कार्य) और 'अकर्म' (वह स्थिति जहाँ कर्म फल पैदा नहीं करता)। कर्मों का परिणाम कैसे और कब मिलता है, यह अत्यंत जटिल है, इसलिए साधक को बहुत विवेकपूर्ण होना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सही, गलत और फलहीन कर्म के बीच का अंतर जानना ही विवेक है।

### श्लोक संख्या: 4.18

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।

स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है और जो अकर्म में कर्म देखता है, वह मनुष्यों में बुद्धिमान है और वह योगी समस्त कर्मों को करने वाला है।

#### सरल व्याख्या:

सच्चा योगी वह है जो शरीर से कर्म करते हुए भी भीतर से यह अनुभव करता है कि 'मैं कुछ नहीं कर रहा' (कर्म में अकर्म)। वहीं, यदि कोई बाहर से निष्क्रिय बैठा है पर उसका मन इच्छाओं में दौड़ रहा है, तो वह वास्तव में कर्म ही कर रहा है (अकर्म में कर्म)। इस सत्य को जानने वाला ही पूर्ण ज्ञानी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर की क्रिया से अधिक मन की अवस्था और कर्तापन का भाव महत्वपूर्ण है।

### श्लोक संख्या: 4.19

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः ।

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसके संपूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं तथा जिसके कर्म ज्ञानरूपी अग्नि द्वारा भस्म हो गए हैं, उस महापुरुष को ज्ञानी जन भी पंडित कहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञानी वह है जो किसी व्यक्तिगत इच्छा (काम) या स्वार्थपूर्ण योजना (संकल्प) के बिना कार्य करता है। जब कर्म केवल सेवा और ईश्वर के निमित्त होते हैं, तो वे कोई नया बंधन पैदा नहीं करते। ज्ञान की यह अग्नि पुराने संचित कर्मों के प्रभाव को वैसे ही जला देती है जैसे आग ईंधन को।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वार्थ रहित कर्म ही मनुष्य को कर्मों के बोझ से मुक्त करता है।

### श्लोक संख्या: 4.20

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः ।

कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो समस्त कर्मफलों में आसक्ति का त्याग करके सदा संतुष्ट और किसी के भी आश्रय से रहित है, वह कर्मों में अच्छी प्रकार प्रवृत्त होने पर भी वास्तव में कुछ भी नहीं करता।

#### सरल व्याख्या:

ऐसा व्यक्ति बाहरी संसाधनों या लोगों पर अपनी खुशी के लिए निर्भर नहीं होता (निराश्रय)। वह अपने आप में ही तृप्त रहता है। वह संसार के सभी कार्य बड़ी कुशलता से करता है, लेकिन क्योंकि उसका हृदय फलों से नहीं जुड़ा होता, इसलिए वह उन कार्यों के प्रभाव से अछूता रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आंतरिक संतोष और अनासक्ति ही कर्म को बंधनमुक्त बनाती है।

### श्लोक संख्या: 4.21

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसने अंतःकरण और शरीर को जीत लिया है, जो समस्त भोगों की सामग्री से रहित है और जिसने सब प्रकार के संग्रह का त्याग कर दिया है, ऐसा आशा रहित पुरुष केवल शरीर संबंधी कर्म करता हुआ भी पाप को प्राप्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ उस साधक का वर्णन है जो मन और इन्द्रियों का स्वामी बन चुका है। वह भविष्य की किसी इच्छा (आशा) के अधीन नहीं है और न ही वह वस्तुओं को इकट्ठा करने के मोह में फँसा है। वह केवल जीवित रहने के लिए आवश्यक कार्य करता है, इसलिए उसके कर्मों से कोई नया संस्कार या पाप उत्पन्न नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन पर नियंत्रण और अपरिग्रह (संग्रह न करना) मनुष्य को कर्मों के दोष से बचाता है।

### श्लोक संख्या: 4.22

यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।

समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो बिना इच्छा के अपने आप प्राप्त हुए पदार्थ में सदा संतुष्ट रहता है, जिसमें ईर्ष्या का सर्वथा अभाव है और जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों से सर्वथा अतीत हो गया है, ऐसा सिद्धि और असिद्धि में सम रहने वाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता।

#### सरल व्याख्या:

सच्चा योगी वह है जिसे जो मिल जाए उसी में संतोष है। वह किसी से तुलना या जलन (ईर्ष्या) नहीं करता। चाहे काम सफल हो (सिद्धि) या असफल (असिद्धि), उसका मन शांत रहता है। सुख-दुख के द्वन्द्व उसे विचलित नहीं करते, इसलिए उसके कर्म उसे संसार में नहीं बाँधते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समता का भाव ही कर्मयोग की सफलता का मुख्य लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 4.23

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः |  
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसकी आसक्ति सर्वथा नष्ट हो गई है, जो देहाभिमान और ममता से रहित है और जिसका चित्त निरंतर परमात्मा के ज्ञान में स्थित रहता है, ऐसे केवल यज्ञ के लिए कर्म करने वाले मनुष्य के संपूर्ण कर्म विलीन हो जाते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य कर्म को केवल स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि एक 'यज्ञ' (निस्वार्थ सेवा) के रूप में करता है, तो उसके कर्मों का कोई फल शेष नहीं रहता। उसका मन हर समय सत्य के बोध में टिका होता है, जिससे उसके द्वारा किए गए सभी कार्य परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान और निस्वार्थ सेवा भाव से किए गए कर्म मनुष्य के प्रारब्ध के बोझ को मिटा देते हैं।

### श्लोक संख्या: 4.24

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् |  
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना || 24 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस यज्ञ में अर्पण भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है और ब्रह्मरूप कर्ता द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में जो आहुति दी गई है, वह भी ब्रह्म ही है— उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले मनुष्य द्वारा प्राप्त करने योग्य फल भी ब्रह्म ही है।

#### सरल व्याख्या:

यह अद्वैत दृष्टि का वर्णन है। ज्ञानी अनुभव करता है कि जो पात्र वह उपयोग कर रहा है, जो सामग्री वह चढ़ा रहा है, जो अग्नि जल रही है और वह स्वयं—सब कुछ परमात्मा (ब्रह्म) का ही अंश है। जब पूरी क्रिया ही ब्रह्ममय हो जाती है, तब उस कर्म का परिणाम भी परमात्मा ही होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हर कार्य में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करना ही सबसे बड़ी समाधि है।

### श्लोक संख्या: 4.25

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते |  
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति || 25 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

दूसरे योगीजन देवताओं के पूजन रूप यज्ञ का ही भलीभाँति अनुष्ठान करते हैं और अन्य योगीजन परब्रह्म परमात्मा रूप अग्नि में अभेद दर्शन रूप यज्ञ द्वारा ही आत्मा का हवन करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यज्ञ के विभिन्न प्रकार बताए जा रहे हैं। कुछ साधक श्रद्धापूर्वक देवताओं की उपासना कर यज्ञ करते हैं। वहीं, जो ज्ञानमार्गी हैं, वे अपने 'अहंकार' और 'पृथक् अस्तित्व' को परमात्मा के ज्ञान की अग्नि में विलीन कर देते हैं। वे स्वयं को परमात्मा से अलग नहीं देखते, यही उनका यज्ञ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूजा का बाहरी रूप और ज्ञान का आंतरिक मार्ग, दोनों ही यज्ञ की श्रेणियाँ हैं।

### श्लोक संख्या: 4.26

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति |  
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति || 26 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अन्य योगी कानों आदि समस्त इन्द्रियों को संयम रूप अग्नियों में हवन करते हैं और दूसरे योगी शब्द आदि समस्त विषयों को इन्द्रिय रूप अग्नियों में हवन करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

इन्द्रियों पर नियंत्रण भी एक यज्ञ है। कुछ लोग अपनी इन्द्रियों को बाहरी विषयों से खींचकर संयम की अग्नि में डालते हैं (दमन नहीं, नियंत्रण)। कुछ ऐसे हैं जो विषयों का उपयोग तो करते हैं, लेकिन इन्द्रियों की अग्नि में उन्हें इस तरह स्वाहा करते हैं कि उनमें कोई राग-द्वेष पैदा न हो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रियों को वश में रखना और विषयों के प्रति अनासक्त रहना भी एक बड़ी साधना है।

### श्लोक संख्या: 4.27

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे |

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते || 27 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

दूसरे योगी इन्द्रियों की संपूर्ण क्रियाओं को और प्राणों की समस्त क्रियाओं को ज्ञान से प्रकाशित आत्मसंयम योग रूप अग्नि में हवन करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ ध्यान योग की बात है। साधक अपनी इन्द्रियों की चंचलता और प्राणों की गति (साँस) को रोककर उन्हें 'आत्मसंयम' में लगा देता है। यह क्रिया ज्ञान द्वारा प्रकाशित होती है, अर्थात् इसमें कोई ज़बरदस्ती नहीं बल्कि समझदारी होती है। वह अपनी पूरी ऊर्जा को आत्मा के भीतर केंद्रित कर देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर और प्राणों की ऊर्जा को आत्मा की ओर मोड़ना ही वास्तविक आत्मसंयम है।

### श्लोक संख्या: 4.28

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे |

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः || 28 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

कितने ही पुरुष द्रव्य संबंधी यज्ञ करने वाले हैं, कितने ही तपस्या रूप यज्ञ करने वाले हैं तथा दूसरे कितने ही योग रूप यज्ञ करने वाले हैं और कितने ही अहिंसा आदि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील साधक स्वाध्याय रूप ज्ञानयज्ञ करने वाले हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान साधना की विविधता को मान्यता देते हैं। कोई अपनी संपत्ति का दान (द्रव्ययज्ञ) करता है, कोई उपवास या कठिन नियम (तपोयज्ञ) अपनाता है, कोई अष्टांग योग करता है और कोई शास्त्रों का मनन व आत्म-चिन्तन (ज्ञानयज्ञ) करता है। सभी अपनी निष्ठा के अनुसार उन्नति कर रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की प्राप्ति के अनेक द्वार हैं, और हर निस्वार्थ प्रयास यज्ञ के समान पवित्र है।

### श्लोक संख्या: 4.29

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे |

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः || 29 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

दूसरे कितने ही योगीजन अपान वायु में प्राण वायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगी प्राण वायु में अपान वायु को हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ प्राणायाम की सूक्ष्म क्रियाओं का वर्णन है। श्वास को अंदर लेना, बाहर छोड़ना और कुंभक (साँस रोकना)—इनके माध्यम से योगी अपने चित्त को स्थिर करते हैं। यह शरीर के भीतर चलने वाली ऊर्जा को नियंत्रित कर एकाग्रता प्राप्त करने का यज्ञ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्राणों पर विजय प्राप्त करना मन को वश में करने का एक सशक्त साधन है।

### श्लोक संख्या: 4.30

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति |

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः || 30 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

दूसरे कितने ही नियमित आहार करने वाले पुरुष प्राणों को प्राणों में ही हवन करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश करने वाले और यज्ञों के तत्व को जानने वाले हैं।

#### सरल व्याख्या:

आहार पर नियंत्रण (संयमित भोजन) भी एक यज्ञ है। जो लोग अनुशासन के साथ जीवन जीते हैं और अपनी ऊर्जा का अपव्यय नहीं करते, उनके सभी पाप (मानसिक विकार) इन यज्ञों द्वारा नष्ट हो जाते हैं। भगवान कहते हैं कि ये सभी विधियाँ साधक को शुद्ध करने के लिए ही बनाई गई हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अनुशासन और यज्ञ का भाव मनुष्य के भीतर की बुराइयों को जलाकर उसे निर्मल बना देता है।



### श्लोक संख्या: 4.31

यज्ञशिष्यामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ 31 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! यज्ञ से बचे हुए अमृत का अनुभव करने वाले योगी सनातन परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं और यज्ञ न करने वाले पुरुष के लिए तो यह मनुष्य लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा?

#### सरल व्याख्या:

'यज्ञ-शिष्ट' का अर्थ है अपने कर्तव्यों और सेवा के बाद जो कुछ बचे उसे ग्रहण करना। ऐसा जीवन जीने वाला व्यक्ति परमानंद (अमृत) को प्राप्त होता है। इसके विपरीत, जो व्यक्ति केवल अपने स्वार्थ के लिए जीता है और त्याग नहीं करता, उसे इस संसार में भी कभी मानसिक शांति और संतोष नहीं मिल सकता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निस्वार्थ सेवा और त्याग ही इस लोक और परलोक में सुख का एकमात्र मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 4.32

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।

कर्मजान्विद्धि तान्त्सर्वानिवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ 32 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इसी प्रकार और भी बहुत तरह के यज्ञ वेदों की वाणी में विस्तार से कहे गए हैं। उन सबको तू कर्मों से उत्पन्न होने वाला जान। इस प्रकार जानकर तू कर्म-बंधन से मुक्त हो जाएगा।

#### सरल व्याख्या:

ईश्वर तक पहुँचने के जितने भी मार्ग (यज्ञ) पिछले श्लोकों में बताए गए हैं, वे सभी कर्म (क्रिया) के माध्यम से ही सिद्ध होते हैं। भगवान समझा रहे हैं कि कर्म से भागना नहीं है, बल्कि कर्म को यज्ञ के रूप में करना सीखना है। इस सत्य को समझने वाला व्यक्ति कर्म करते हुए भी बंधनमुक्त रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म ही वह माध्यम है जिससे सभी प्रकार के यज्ञ पूर्ण होते हैं और मोक्ष प्राप्त होता है।

### श्लोक संख्या: 4.33

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञानयज्ञः परन्तप |

सर्व कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे परंतप अर्जुन! द्रव्यमय यज्ञ (वस्तुओं के दान आदि) की अपेक्षा 'ज्ञानयज्ञ' अत्यंत श्रेष्ठ है, क्योंकि हे पार्थ! संपूर्ण मात्र कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।

#### सरल व्याख्या:

धन या वस्तुओं का त्याग करना अच्छा है, लेकिन अपने अज्ञान का त्याग करना और सत्य को जानना उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। सभी शारीरिक और मानसिक कर्मों का अंतिम लक्ष्य ज्ञान प्राप्त करना ही है। जब ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो कर्मों की आवश्यकता और उनका फल—दोनों ही उस ज्ञान के प्रकाश में विलीन हो जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान ही समस्त साधनाओं और कर्मों की पूर्णता है।

### श्लोक संख्या: 4.34

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया |

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ। उनको भलीभाँति दंडवत प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से, वे तत्व को जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

#### सरल व्याख्या:

परम ज्ञान केवल पुस्तकों से नहीं मिलता, इसके लिए एक जीवित गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु से ज्ञान पाने की तीन शर्तें हैं: पूर्ण विनम्रता (प्रणिपात), अहंकार रहित जिज्ञासा (परिप्रश्न) और निष्काम सेवा। जब शिष्य इन गुणों से युक्त होता है, तब अनुभवी महापुरुष उसके भीतर ज्ञान का संचार करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गुरु के प्रति समर्पण और सीखने की सच्ची तड़प ही ज्ञान प्राप्ति का द्वार खोलती है।

### श्लोक संख्या: 4.35

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव |  
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि || 35 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस ज्ञान को जानकर तू फिर इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं होगा तथा जिस ज्ञान के द्वारा तू संपूर्ण भूतों को पहले अपने में और फिर मुझ परमात्मा में देखेगा।

#### सरल व्याख्या:

सच्चा ज्ञान वह है जो मनुष्य के भीतर के भ्रम और शोक को जड़ से मिटा दे। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर मनुष्य को यह बोध होता है कि संसार के सभी प्राणी उसकी अपनी ही आत्मा के विस्तार हैं और अंततः सभी परमात्मा में ही स्थित हैं। यह सर्वत्र एकात्म भाव का दर्शन है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान मनुष्य को मोह से मुक्त कर उसे ब्रह्मांडीय एकता का अनुभव कराता है।

### श्लोक संख्या: 4.36

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः |  
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि || 36 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूपी नौका द्वारा निस्संदेह संपूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जाएगा।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञान की महिमा इतनी अपार है कि यह अतीत के भयंकर से भयंकर पापों को भी अर्थहीन कर देती है। जैसे एक नौका मनुष्य को गहरे समुद्र से पार ले जाती है, वैसे ही आत्मज्ञान मनुष्य को उसके कर्मों के बुरे संस्कारों और दुखों से पार निकाल देता है। यह मनुष्य को नई चेतना प्रदान करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान में सबसे पतित व्यक्ति का भी उद्धार करने की अमोघ शक्ति है।

### श्लोक संख्या: 4.37

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।  
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ 37 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञानरूपी अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्म कर देती है।

#### सरल व्याख्या:

जब ज्ञान की अग्नि भीतर जलती है, तो वह मनुष्य के कर्मों के संचित भंडार को जलाकर राख कर देती है। इसका अर्थ यह है कि ज्ञानी पुरुष के कर्म अब उसके लिए कोई नया बंधन या अगला जन्म पैदा नहीं करते। ज्ञान के प्रकाश में कर्म की 'पकड़' समाप्त हो जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान कर्मों के सूक्ष्म संस्कारों को नष्ट कर मनुष्य को पूर्णतः मुक्त कर देता है।

### श्लोक संख्या: 4.38

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।  
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥ 38 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है। उस ज्ञान को कालान्तर में योग द्वारा सिद्ध हुआ मनुष्य अपने आप ही अपनी आत्मा में पा लेता है।

#### सरल व्याख्या:

संसार में ज्ञान से बढ़कर पावन कुछ भी नहीं है, क्योंकि यह मन की गहराई तक की अशुद्धि को मिटा देता है। यह ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता; जब मनुष्य निष्काम कर्मयोग में परिपक्व हो जाता है, तो समय आने पर यह सत्य उसके हृदय में स्वयं ही प्रकट हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर अभ्यास और शुद्ध आचरण से ज्ञान स्वतः ही भीतर जाग्रत होता है।

### श्लोक संख्या: 4.39

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ 39 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रद्धा रखने वाला, तत्परता से लगा हुआ और इन्द्रियों को वश में रखने वाला मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह तत्काल ही परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञान पाने की तीन अनिवार्य योग्यताएँ हैं: सत्य में अटूट विश्वास (श्रद्धा), ज्ञान पाने की तीव्र लगन (तत्परता) और इन्द्रियों पर विजय। जो इन तीनों को साध लेता है, उसे ज्ञान प्राप्त होता है और उस ज्ञान का तात्कालिक परिणाम है—शाश्वत और असीम शांति।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा और आत्म-संयम ही वे चाबियाँ हैं जिनसे शांति का द्वार खुलता है।

### श्लोक संख्या: 4.40

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ 40 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

विवेकहीन, श्रद्धारहित और संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् उन बाधाओं के प्रति सचेत करते हैं जो विनाश की ओर ले जाती हैं। जिसे सही-गलत का बोध नहीं (अज्ञ), जिसके हृदय में श्रद्धा नहीं और जो हर बात पर केवल संदेह करता है, वह कभी प्रगति नहीं कर सकता। संशय करने वाला व्यक्ति हमेशा अशांत रहता है, उसे न तो संसार में सुख मिलता है और न ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संदेह और अविश्वास आध्यात्मिक और मानसिक पतन का सबसे बड़ा कारण हैं।

#### श्लोक संख्या: 4.41

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् |

आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय || 41 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! जिसने योग के द्वारा कर्मों का संन्यास (परमात्मा में अर्पण) कर दिया है और जिसने ज्ञान द्वारा अपने समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे आत्मपरायण पुरुष को कर्म नहीं बाँधते।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ उपदेश का सार बताते हैं। जिस व्यक्ति ने निष्काम कर्मयोग के माध्यम से अपने सभी कार्यों को ईश्वर को समर्पित कर दिया है और आत्मज्ञान के द्वारा जिसके मन की सारी दुविधाएँ और शंकाएँ समाप्त हो गई हैं, वह पूरी तरह सजग और स्थिर हो जाता है। ऐसे महापुरुष के लिए कर्म केवल एक लीला मात्र रह जाते हैं, वे उसे संसार के बंधनों में नहीं जकड़ सकते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों का समर्पण और ज्ञान द्वारा संशय की निवृत्ति ही पूर्ण स्वतंत्रता का आधार है।

#### श्लोक संख्या: 4.42

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः |

छित्त्वेन संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत || 42 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए हे भरतवंशी अर्जुन! तू अपने हृदय में स्थित इस अज्ञानजनित संशय को ज्ञानरूपी तलवार द्वारा काटकर समत्वयोग में स्थित हो जा और युद्ध के लिए खड़ा हो जा।

#### सरल व्याख्या:

अध्याय के अंत में भगवान अर्जुन को अंतिम आदेश देते हैं। अर्जुन के मन में जो मोह और डर था, वह केवल 'अज्ञान' के कारण था। भगवान कहते हैं कि विवेक और ज्ञान की तलवार उठाओ और इस संशय को जड़ से काट डालो। वे अर्जुन को 'समत्व' (सुख-दुख में समान रहना) में स्थित होने और अपना क्षत्रिय धर्म (युद्ध) निभाने के लिए प्रेरित करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ कर्म से भागना नहीं, बल्कि अज्ञान और संशय को मिटाकर अधिक दृढ़ता से अपना कर्तव्य निभाना है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानकर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



## अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

Satyaanubhuti Ashram



## श्लोक संख्या: 5.01

अर्जुन उवाच ।

संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।

यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! आप कर्मों के संन्यास (त्याग) की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इसलिए इन दोनों में से जो एक मेरे लिए निश्चित रूप से कल्याणकारी हो, वह मुझे कहिए।

### सरल व्याख्या:

अर्जुन फिर से दुविधा में हैं। पिछले अध्याय के अंत में भगवान ने ज्ञान की तलवार से संशय काटने को कहा (जो संन्यास की ओर संकेत है) और फिर युद्ध करने को भी कहा (जो कर्मयोग है)। अर्जुन को लगता है कि कर्मों को छोड़ देना और कर्मों को करना, ये दो विपरीत दिशाएँ हैं। वह जानना चाहता है कि उसके स्वभाव के लिए सबसे सरल और श्रेष्ठ रास्ता कौन सा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... साधक अक्सर बाहरी क्रियाओं के त्याग और आंतरिक अनासक्ति के बीच के अंतर को लेकर भ्रमित रहता है।

## श्लोक संख्या: 5.02

श्रीभगवानुवाच ।

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान बोले—कर्मसंन्यास और कर्मयोग, ये दोनों ही परम कल्याण करने वाले हैं, किन्तु उन दोनों में भी कर्मसंन्यास की अपेक्षा कर्मयोग (साधन में सुगम होने के कारण) श्रेष्ठ है।

### सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि दोनों मार्गों का लक्ष्य एक ही है—मोक्ष। लेकिन, कर्मों का पूर्ण त्याग (संन्यास) मन की अत्यंत परिपक्व अवस्था में ही संभव है। सामान्य मनुष्य के लिए संसार में रहकर, अपने कर्तव्यों को निभाते हुए निष्काम भाव रखना (कर्मयोग) अधिक व्यावहारिक और श्रेष्ठ मार्ग है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म से भागने की अपेक्षा कर्म को सेवा बनाना अधिक सुगम और प्रभावशाली साधना है।

### श्लोक संख्या: 5.03

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।  
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ 03 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! जो पुरुष न किसी से द्वेष करता है और न किसी की आकांक्षा करता है, वह सदा संन्यासी ही समझने योग्य है; क्योंकि राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से रहित पुरुष सुखपूर्वक संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

असली संन्यासी वह नहीं है जिसने भगवा वस्त्र पहन लिए या घर छोड़ दिया, बल्कि वह है जिसके मन में न किसी के प्रति नफरत है और न ही कुछ पाने की तड़प। जो सुख-दुख, लाभ-हानि में विचलित नहीं होता, वह घर-गृहस्थी में रहते हुए भी एक संन्यासी ही है और वह कर्मों के बंधन में नहीं फँसता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संन्यास का संबंध वेशभूषा से नहीं, बल्कि मन की निर्लिप्तता और समता से है।

### श्लोक संख्या: 5.04

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।  
एकमप्यास्थितः सम्यग्भयोर्विन्दते फलम् ॥ 04 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सांख्ययोग (ज्ञानयोग) और कर्मयोग को अज्ञानी लोग अलग-अलग फल देने वाला कहते हैं, न कि पंडित (ज्ञानी); क्योंकि दोनों में से एक में भी अच्छी प्रकार स्थित पुरुष दोनों के फल रूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञानमार्ग (विचार द्वारा सत्य तक पहुँचना) और कर्ममार्ग (सेवा द्वारा अहंकार मिटाना) ऊपरी तौर पर अलग दिख सकते हैं, पर वे एक ही सत्य के दो पहलू हैं। यदि कोई एक मार्ग पर भी पूरी ईमानदारी और गहराई से चले, तो वह उसी परम शांति को प्राप्त होगा जो दूसरे मार्ग से मिलती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मार्ग की विविधता से गंतव्य नहीं बदलता; पूर्ण निष्ठा ही सफलता की कुंजी है।

### श्लोक संख्या: 5.05

यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्यौगैरपि गम्यते ।

एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ 05 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

ज्ञानयोगियों द्वारा जो परम पद प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फल रूप में एक देखता है, वही वास्तव में देखता है।

#### सरल व्याख्या:

ज्ञान और कर्म का मिलन ही वास्तविक दर्शन है। जो यह समझ लेता है कि कर्म के बिना ज्ञान केवल कोरी बातें हैं और ज्ञान के बिना कर्म केवल भटकाव है, वही सत्य को देख पाता है। दोनों का अंतिम परिणाम 'अहंकार की निवृत्ति' और 'परमात्मा की प्राप्ति' ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य के मार्ग अलग हो सकते हैं, परंतु उनका अनुभव और परिणाम सदैव एक ही होता है।

### श्लोक संख्या: 5.06

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ 06 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु हे महाबाहो! कर्मयोग के बिना संन्यास (मन, इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाले कर्मों में कर्तापन का त्याग) प्राप्त होना कठिन है; और कर्मयोग से युक्त मुनि शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

बिना निष्काम कर्म के अभ्यास के सीधा संन्यास लेना दुखी होने जैसा है, क्योंकि मन की शुद्धि के बिना कर्मों का त्याग केवल आलस्य या दमन बन जाता है। लेकिन जो कर्मयोग के माध्यम से अपने स्वभाव को शुद्ध कर चुका है, वह बहुत जल्दी परमात्मा के साथ एकरूपता का अनुभव कर लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मयोग वह आधार है जिस पर ज्ञान और संन्यास की ऊँची इमारत खड़ी होती है।

### श्लोक संख्या: 5.07

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।  
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ 07 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तःकरण वाला है तथा संपूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

एक श्रेष्ठ कर्मयोगी की पहचान यह है कि वह अपनी इन्द्रियों और मन का स्वामी होता है। सबसे बड़ी बात यह कि वह हर प्राणी में अपनी ही आत्मा (परमात्मा) को देखता है। ऐसी दिव्य दृष्टि के कारण वह संसार के सारे कार्य करते हुए भी उनमें उसी तरह नहीं फँसता जैसे जल में कमल।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सबके प्रति आत्मभाव और आत्म-संयम ही कर्म की जंजीरों को तोड़ता है।

### श्लोक संख्या: 5.08 - 5.09

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।  
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशज्जिघ्रस्नच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥ 08 ॥  
प्रलपन्सृजन्गृह्णन्निषन्निमिषन्नपि ।  
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥ 09 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तत्व को जानने वाला सांख्ययोगी तो देखता हुआ, सुनता हुआ, स्पर्श करता हुआ, सूँघता हुआ, भोजन करता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आँखों को खोलता और मूँदता हुआ भी —'इन्द्रियाँ ही अपने विषयों में बरत रही हैं'—ऐसा मानकर निस्संदेह यही समझे कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह अकर्तापन की पराकाष्ठा है। ज्ञानी जानता है कि शरीर की सभी क्रियाएँ (देखना, खाना, साँस लेना) प्रकृति के नियमों और इन्द्रियों के स्वभाव के अनुसार हो रही हैं। वह स्वयं को इन क्रियाओं का कर्ता नहीं मानता। वह एक 'साक्षी' की तरह रहता है, जिससे उसे कर्मों का कोई बंधन नहीं लगता।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... स्वयं को शरीर की क्रियाओं से अलग और दृष्टा रूप में देखना ही वास्तविक स्वतंत्रता है।

### श्लोक संख्या: 5.10

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।  
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पाप से वैसे ही लिप्त नहीं होता, जैसे कमल का पत्ता जल से लिप्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् कर्मयोग का सबसे सुंदर उदाहरण देते हैं। कमल का पत्ता पानी में ही रहता है, पर पानी की एक बूँद भी उस पर नहीं ठहरती। ठीक वैसे ही, जो व्यक्ति अपने हर कार्य को ईश्वर की सेवा मानकर उन्हें समर्पित कर देता है और फल की चिंता छोड़ देता है, वह इस संसार के दुखों और बुराइयों के बीच रहकर भी उनसे अछूता रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरार्पण बुद्धि ही संसार रूपी सागर में सुरक्षित रहने का सबसे सरल उपाय है।

### श्लोक संख्या: 5.11

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ।  
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कर्मयोगी ममता रहित होकर केवल शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों द्वारा आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

योगी कर्म करना नहीं छोड़ते, बल्कि कर्म करने के पीछे का उद्देश्य बदल देते हैं। वे 'मैं' और 'मेरा' के भाव से ऊपर उठकर कार्य करते हैं। उनके लिए कर्म का फल धन या मान नहीं, बल्कि अपने ही मन और बुद्धि को पवित्र करना (आत्मशुद्धि) होता है। जब कर्तापन का अहंकार हट जाता है, तो कर्म साधना बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म का मुख्य प्रयोजन स्वयं के भीतर छिपे विकारों को साफ करना होना चाहिए।

## श्लोक संख्या: 5.12

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।  
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ 12 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है और जो परमात्मा में युक्त नहीं है, वह कामना के कारण फल में आसक्त होकर बँध जाता है।

### सरल व्याख्या:

शांति कहाँ है? जो व्यक्ति परिणाम की चिंता छोड़कर केवल कर्तव्य पर ध्यान देता है, वह उस स्थायी शांति को प्राप्त करता है जो ईश्वर से मिलती है। लेकिन जो व्यक्ति अपनी इच्छाओं के वश में है और हर काम के बदले कुछ चाहने की लालसा रखता है, वह हमेशा तनाव और दुखों के बंधन में फँसा रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... फल की आसक्ति ही अशांति का द्वार है और निष्कामता ही परम शांति का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 5.13

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी |  
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् || 13 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसका अन्तःकरण अपने वश में है, ऐसा सांख्ययोगी सब कर्मों को मन से त्यागकर नौ द्वारों वाले शरीर रूपी घर में न कुछ करता हुआ और न करवाता हुआ ही सुखपूर्वक अपने स्वरूप में स्थित रहता है।

#### सरल व्याख्या:

शरीर को एक 'नौ द्वारों वाले नगर' की तरह बताया गया है। ज्ञानी पुरुष इस नगर में रहने वाला एक निर्लिप्त निवासी है। वह जानता है कि इन्द्रियाँ अपना कार्य कर रही हैं, लेकिन वह स्वयं (आत्मा) अकर्ता है। वह भीतर से पूरी तरह शांत और सुखी रहता है क्योंकि वह स्वयं को देह की क्रियाओं का कर्ता या प्रेरक नहीं मानता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं को शरीर से अलग अनुभव करना ही सच्ची सुखद स्थिति है।

### श्लोक संख्या: 5.14

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः |  
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परमात्मा न तो मनुष्यों के कर्तृत्व की (कि मैं करता हूँ), न कर्मों की और न कर्मफल के संयोग की ही रचना करते हैं; किन्तु स्वभाव (प्रकृति) ही बरत रहा है।

#### सरल व्याख्या:

यह एक बहुत बड़ा सत्य है। भगवान किसी को मजबूर नहीं करते कि वह यह काम करे, न ही वे कर्मों के फल का विधान स्वार्थवश रचते हैं। मनुष्य अपने पिछले संस्कारों और प्रकृति के गुणों (स्वभाव) के अनुसार कर्म करता है। परमात्मा साक्षी हैं; यह सारा संसार प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने आप संचालित हो रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा निर्लिप्त हैं; मनुष्य के कर्म और उनके परिणाम उसकी अपनी प्रकृति और पसंद का हिस्सा हैं।

### श्लोक संख्या: 5.15

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः |  
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभ कर्म को ही ग्रहण करते हैं, किन्तु अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, उसी से सब जीव मोहित हो रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान न तो हमारे पापों का हिस्सा बनते हैं और न ही हमारे पुण्यों का। वे इन सबसे परे हैं। तो फिर हमें दुख-सुख क्यों मिलते हैं? क्योंकि हमारा विवेक 'अज्ञान' की चादर से ढका हुआ है। हम स्वयं को शरीर और कर्ता मान लेते हैं, जिससे मोह पैदा होता है और हम कर्मों के फल के चक्र में फँस जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अज्ञान ही जीव के कष्टों का कारण है, परमात्मा किसी को दुख या सुख देने के जिम्मेदार नहीं हैं।

### श्लोक संख्या: 5.16

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः |  
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु जिनका वह अज्ञान आत्मज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के समान उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है।

#### सरल व्याख्या:

जैसे सूर्य के निकलते ही रात का अंधेरा गायब हो जाता है, वैसे ही जैसे ही आत्मज्ञान जाग्रत होता है, अज्ञान की परतें हट जाती हैं। तब साधक को परमात्मा की उपस्थिति का अनुभव वैसे ही साफ़ होने लगता है जैसे दिन के उजाले में हर वस्तु स्पष्ट दिखती है। ज्ञान सब भ्रमों को जलाकर सत्य को सामने ले आता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान ही वह प्रकाश है जो परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराता है।



### श्लोक संख्या: 5.17

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणा ।

गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और जो सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही निरंतर एकीभाव से स्थित हैं, ऐसे ज्ञान द्वारा पापरहित हुए पुरुष अपुनरावृत्ति को (अर्थात् परमगति को) प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब किसी का पूरा ध्यान, बुद्धि और निष्ठा केवल परमात्मा में ही रम जाती है, तो उसके भीतर के सारे मैल (पाप और वासनाएँ) ज्ञान द्वारा धुल जाते हैं। ऐसा व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है और उस परम स्थिति को पा लेता है जहाँ से फिर लौटना नहीं पड़ता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा में पूर्ण तन्मयता ही मुक्ति का अचूक उपाय है।

### श्लोक संख्या: 5.18

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

ज्ञानी जन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में भी समदर्शी ही होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

सच्चे ज्ञान की पहचान 'समदृष्टि' है। ज्ञानी व्यक्ति बाहरी शरीर, जाति, बुद्धि या व्यवहार के आधार पर भेद नहीं करता। वह जानता है कि एक विद्वान ब्राह्मण के भीतर भी वही आत्मा है जो एक पशु या समाज के सबसे उपेक्षित व्यक्ति के भीतर है। वह सबमें एक ही ईश्वर के दर्शन करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समता और करुणा ही आत्मज्ञानी के व्यक्तित्व का सबसे बड़ा प्रमाण है।

### श्लोक संख्या: 5.19

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिनका मन समत्व भाव में स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्था में ही संपूर्ण संसार जीत लिया गया है; क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे परमात्मा में ही स्थित हैं।

#### सरल व्याख्या:

संसार को जीतने का अर्थ उसे अधीन करना नहीं, बल्कि मन को समता में टिका देना है। चूँकि परमात्मा निर्दोष हैं और सबमें समान रूप से व्याप्त हैं, इसलिए जो व्यक्ति समता को अपना लेता है, वह जीते-जी परमात्मा का रूप हो जाता है। उसे मुक्ति के लिए मृत्यु का इंतज़ार नहीं करना पड़ता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जिसका मन राग-द्वेष से मुक्त होकर सम हो गया, उसने जीवन का लक्ष्य पा लिया।

### श्लोक संख्या: 5.20

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।

स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष प्रिय को प्राप्त होकर हर्षित नहीं होता और अप्रिय को प्राप्त होकर उद्विग्न नहीं होता, वह स्थिर बुद्धि, संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्म में ही स्थित है।

#### सरल व्याख्या:

ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति की मानसिक स्थिति का वर्णन है। जीवन में अनुकूल परिस्थिति आने पर वह अहंकार में नहीं फूलता और प्रतिकूलता आने पर घबराता नहीं। उसकी बुद्धि स्थिर रहती है और वह किसी भी भ्रम (मोह) में नहीं फँसता। ऐसा संतुलित व्यक्ति ही वास्तव में परमात्मा के साथ जुड़ा हुआ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हर्ष और शोक में संतुलन बनाए रखना ही आध्यात्मिक परिपक्वता की निशानी है।

### श्लोक संख्या: 5.21

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।  
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

बाहर के विषयों में आसक्ति रहित अंतःकरण वाला साधक आत्मा में स्थित जिस सुख को प्राप्त होता है, वह सच्चिदानंदघन परमात्मा के ध्यान रूप योग में अभिन्न भाव से स्थित पुरुष अक्षय (कभी नष्ट न होने वाले) आनंद का अनुभव करता है।

#### सरल व्याख्या:

संसार की वस्तुओं से मिलने वाला सुख क्षणभंगुर है और इन्द्रियों पर निर्भर है। लेकिन जब साधक अपना ध्यान बाहरी विषयों से हटाकर अपनी आत्मा की ओर मोड़ता है, तो उसे एक ऐसा सुख मिलता है जो किसी वस्तु का मोहताज नहीं है। परमात्मा से जुड़ने पर मिलने वाला यह आनंद स्थायी और अनंत होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा और कभी न समाप्त होने वाला सुख हमारे भीतर ही है, बाहर की वस्तुओं में नहीं।

### श्लोक संख्या: 5.22

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।  
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कौन्तेय! जो इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुख रूप भासते हैं, तो भी वे दुःख के ही हेतु हैं और आदि-अंत वाले (अनित्य) हैं; इसलिए बुद्धिमान विवेकशील पुरुष उनमें नहीं रमता।

#### सरल व्याख्या:

इन्द्रियों के भोगों की एक शुरुआत होती है और एक अंत। वे शुरू में सुखद लगते हैं पर अंत में दुख और रिक्तता छोड़ जाते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति यह समझ लेता है कि ये सुख अस्थायी हैं और इनके पीछे भागना केवल समय की बर्बादी है, इसलिए वह अपनी ऊर्जा को शाश्वत सत्य की खोज में लगाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... क्षणिक सुखों का मोह ही भविष्य के दुखों का कारण बनता है।

### श्लोक संख्या: 5.23

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् |  
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो साधक इस शरीर का अंत होने से पहले ही काम और क्रोध से उत्पन्न होने वाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है, वही पुरुष योगी है और वही सुखी है।

#### सरल व्याख्या:

इच्छा (काम) और गुस्सा (क्रोध) हमारे भीतर उठने वाले तूफानों की तरह हैं। जो व्यक्ति शरीर रहते इन आवेगों को काबू करना सीख जाता है और इनके वश में आकर गलत कार्य नहीं करता, वही वास्तव में स्वतंत्र है। सच्चा सुख वही पा सकता है जिसने अपने मन की लहरों को शांत कर लिया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... काम और क्रोध पर विजय प्राप्त करना ही जीवन की सबसे बड़ी सफलता और सुख का आधार है।

### श्लोक संख्या: 5.24

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः |  
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति || 24 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष अंतरात्मा में ही सुख वाला है, आत्मा में ही रमण करने वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है, वह ब्रह्मरूप हुआ सांख्ययोगी शांत परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

जब किसी की खुशी, शांति और प्रकाश का स्रोत बाहरी दुनिया न होकर उसका अपना अंतर्मन बन जाता है, तो वह व्यक्ति परमात्मा के साथ एकरूप हो जाता है। उसे फिर कहीं और जाने या कुछ और पाने की जरूरत नहीं रहती। वह जीते-जी मुक्ति (निर्वाण) का अनुभव करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अंतर्मुखी होकर आत्म-साक्षात्कार करना ही परमात्मा से मिलन का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 5.25

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ 25 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिनके सब पाप नष्ट हो गए हैं, जिनके सब संशय ज्ञान द्वारा निवृत्त हो गए हैं, जो संपूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शांत परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

मुक्ति केवल व्यक्तिगत शांति नहीं है। ज्ञानी पुरुष वह है जो 'वसुधैव कुटुंबकम्' के भाव से सबके कल्याण में लगा रहता है। उसके मन के सारे द्वन्द्व और संशय खत्म हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति, जो भीतर से शांत और बाहर से सेवाभावी है, सहज ही ईश्वर को पा लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परोपकार और संशयरहित बुद्धि ही आध्यात्मिक पूर्णता की पहचान है।

### श्लोक संख्या: 5.26

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।

अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

काम-क्रोध से रहित, जीते हुए चित्त वाले, आत्मसाक्षात्कारी पुरुषों के लिए सब ओर से शांत परब्रह्म परमात्मा ही प्राप्त है।

#### सरल व्याख्या:

जिसने अपनी इच्छाओं और क्रोध को जीत लिया है, उसके लिए परमात्मा दूर नहीं है। वह जहाँ भी देखता है, उसे ईश्वरीय शांति का ही अनुभव होता है। उसके लिए संसार का बंधन समाप्त हो चुका है और वह हर क्षण मुक्ति की अवस्था में ही रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... वासनाओं से मुक्ति मिलते ही परमात्मा का अनुभव स्वतः होने लगता है।

## श्लोक संख्या: 5.27 - 5.28

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः |  
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ || 27 ||  
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः |  
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः || 28 ||

### हिन्दी अनुवाद:

बाहर के विषय-भोगों को बाहर ही निकालकर और नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जीती हुई हैं, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित हो गया है, वह सदा मुक्त ही है।

### सरल व्याख्या:

यहाँ ध्यान योग की एक संक्षिप्त विधि बताई गई है। बाहरी दुनिया के विचारों को रोककर, अपनी एकाग्रता को केंद्रित करना और श्वास की गति को शांत करना मन को वश में करने का तरीका है। जो मुनि इस प्रकार अभ्यास करते हुए इच्छा, डर और गुस्से को छोड़ देता है, वह शरीर में रहते हुए भी हमेशा के लिए मुक्त है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... ध्यान और आत्म-संयम द्वारा ही मानसिक विकारों को जड़ से मिटाया जा सकता है।

## श्लोक संख्या: 5.29

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् |  
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति || 29 ||

### हिन्दी अनुवाद:

मेरा भक्त मुझे सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला, संपूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा संपूर्ण भूत-प्राणियों का सुहृद (स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी) ऐसा तत्व से जानकर शांति को प्राप्त होता है।

### सरल व्याख्या:

अध्याय का अंतिम श्लोक शांति का महामंत्र है। शांति तब मिलती है जब हमें यह विश्वास हो जाए कि परमात्मा ही हमारे सभी शुभ कर्मों का लक्ष्य है, वे ही इस पूरी सृष्टि के स्वामी हैं, और सबसे बढ़कर—वे हमारे सबसे बड़े मित्र और हितैषी हैं। यह जानकर भक्त निर्भय हो जाता है और उसे परम शांति मिलती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा को अपना परम मित्र और रक्षक मानना ही निर्भयता और शांति का आधार है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



## अध्याय 6: आत्मसंयमयोग

Satyaanubhuti Ashram



## श्लोक संख्या: 6.01

श्रीभगवानुवाच ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी है और वही योगी है; केवल अग्नि का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है और केवल क्रियाओं का त्याग करने वाला योगी नहीं है।

### सरल व्याख्या:

वास्तविक संन्यास बाहरी त्याग में नहीं, बल्कि आंतरिक अनासक्ति में है। जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों को केवल इसलिए पूरा करता है क्योंकि वे उसके धर्म हैं, न कि इसलिए कि उसे उनसे कुछ प्राप्त करना है, वही सच्चा योगी है। केवल अग्नि (सांसारिक सुख) या कर्मों को छोड़ देने से कोई महात्मा नहीं बन जाता; असली त्याग फल की इच्छा का त्याग है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य का पालन करते हुए फल की इच्छा से मुक्त रहना ही योग और संन्यास का वास्तविक स्वरूप है।

## श्लोक संख्या: 6.02

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

हे पाण्डव! जिसे संन्यास कहते हैं, उसे ही तू योग जान; क्योंकि संकल्पों (सांसारिक कामनाओं) का त्याग किए बिना कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

### सरल व्याख्या:

संन्यास और योग अलग नहीं हैं। दोनों की जड़ एक ही है—मन की इच्छाओं और संकल्पों का त्याग। जब तक मन में 'ऐसा हो जाए' या 'वैसा मिल जाए' के संकल्प उठते रहेंगे, तब तक योग घटित नहीं हो सकता। अतः कर्मों को करते हुए भी भीतर से कामनाओं को छोड़ना ही योगी होने की अनिवार्य शर्त है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक संकल्पों का अंत ही योग की शुरुआत है।

### श्लोक संख्या: 6.03

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते |

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते || 03 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मननशील पुरुष के लिए 'कर्म' करना कारण (साधन) कहा जाता है और योगारूढ़ हो जाने पर उस पुरुष के लिए 'शम' (शांति या विक्षेपों का अभाव) कारण कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

जो साधक अभी योग के मार्ग पर चढ़ना शुरू कर रहा है, उसके लिए निष्काम कर्म करना अनिवार्य है क्योंकि कर्म से ही मन शुद्ध होता है। लेकिन जब साधक योग की ऊँचाई पर पहुँच जाता है (योगारूढ़), तब उसके लिए शांति और अंतर्मुखी होना ही मुख्य साधन बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शुरुआत में कर्म प्रधान होता है और सिद्धि प्राप्त होने पर शांति प्रधान हो जाती है।

### श्लोक संख्या: 6.04

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते |

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते || 04 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस काल में मनुष्य न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में संपूर्ण संकल्पों का त्यागी वह पुरुष 'योगारूढ़' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

योग की शिखर अवस्था वह है जहाँ इन्द्रियों के विषय (रूप, रस, गंध आदि) साधक को विचलित नहीं करते। वह कर्म तो करता है, पर उन कर्मों के फलों से उसे कोई लगाव नहीं रहता। जब मन के सारे स्वार्थपूर्ण संकल्प शांत हो जाते हैं, तब उसे योग में पूर्णतः स्थित माना जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण वैराग्य और संकल्पशून्यता ही योगारूढ़ होने की पहचान है।

### श्लोक संख्या: 6.05

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् |

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः || 05 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अपने द्वारा अपना उद्धार करें और अपने आप को अधोगति में न डालें; क्योंकि यह मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है।

#### सरल व्याख्या:

यह श्लोक मनुष्य की व्यक्तिगत जिम्मेदारी पर बल देता है। हमारा मन ही हमें स्वर्ग की ओर ले जा सकता है और वही हमें नरक की ओर गिरा सकता है। यदि हम मन को अनुशासित करते हैं, तो हम स्वयं के सबसे अच्छे मित्र हैं। यदि हम मन के गुलाम बन जाते हैं, तो हम स्वयं के सबसे बड़े शत्रु हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपना उत्थान या पतन हमारे अपने हाथों में है; कोई दूसरा हमारा उद्धार नहीं कर सकता।

### श्लोक संख्या: 6.06

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः |

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् || 06 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस पुरुष द्वारा अपने आप से अपने आप को (मन और इन्द्रियों को) जीत लिया गया है, उसके लिए उसका आत्मा ही उसका मित्र है; किन्तु जिसने अपने आप को नहीं जीता है, उसके लिए उसका आत्मा ही शत्रु के समान शत्रुता में बरतता है।

#### सरल व्याख्या:

जिसने अपने विचारों और इंद्रियों पर विजय पा ली है, उसके लिए उसका अंतर्मन एक सहायक की तरह कार्य करता है जो उसे शांति की ओर ले जाता है। लेकिन जिसका मन अनियंत्रित है, वह मन ही उसे निरंतर भटकन, क्रोध और तनाव देकर उसके साथ शत्रुता का व्यवहार करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-विजय ही वास्तविक मित्रता है, और आत्म-पराजय ही सबसे बड़ी शत्रुता है।

## श्लोक संख्या: 6.07

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः |

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः || 07 ||

### हिन्दी अनुवादः

जिसने अपने आप को जीत लिया है, ऐसे शांत पुरुष के अन्तःकरण में परमात्मा सदैव स्थित रहते हैं; उसके लिए सर्दी-गर्मी, सुख-दुख और मान-अपमान सब एक समान हैं।

### सरल व्याख्या:

जब मन जीत लिया जाता है, तब वह पूर्णतः शांत हो जाता है। ऐसी स्थिति में साधक को द्वंद्व (जैसे ठंड या गर्मी, सुख या दुख) परेशान नहीं करते। वह मान और अपमान दोनों में स्थिर रहता है। इसी परम शांति में उसे परमात्मा का निरंतर अनुभव होता है, क्योंकि उसकी बुद्धि अब बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक समता ही परमात्मा से जुड़ने का वास्तविक प्रवेश द्वार है।

## श्लोक संख्या: 6.08

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः |

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः || 08 ||

### हिन्दी अनुवादः

जिसका अन्तःकरण ज्ञान (शास्त्रीय बोध) और विज्ञान (अनुभवजन्य सत्य) से तृप्त है, जिसकी स्थिति अचल है, जिसने इन्द्रियों को भलीभाँति जीत लिया है और जिसके लिए मिट्टी, पत्थर और स्वर्ण समान हैं, वह योगी 'युक्त' (परमात्मा से जुड़ा हुआ) कहा जाता है।

### सरल व्याख्या:

योग की सिद्धि तब मानी जाती है जब मनुष्य की दृष्टि में दुनिया की मूल्यवान वस्तुएँ (सोना) और मूल्यहीन वस्तुएँ (मिट्टी) एक समान हो जाएँ। उसकी तृप्ति बाहरी दुनिया से नहीं, बल्कि आंतरिक बोध से होती है। ऐसा व्यक्ति संसार की किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान और अनुभव जब एक हो जाते हैं, तब मनुष्य की दृष्टि में समता का भाव जागृत होता है।

### श्लोक संख्या: 6.09

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु |  
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते || 09 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

सुहृद् (बिना कारण हित करने वाला), मित्र, शत्रु, उदासीन (तटस्थ), मध्यस्थ (बिचौलिया), द्वेष्य (घृणा के योग्य) और सम्बन्धियों में तथा साधुओं में और पापियों में भी जो समान बुद्धि रखता है, वह अत्यंत श्रेष्ठ है।

#### सरल व्याख्या:

साधक की प्रगति का सबसे बड़ा मापदंड उसका व्यवहार है। श्रेष्ठ योगी वह है जो केवल अपने प्रियजनों से ही नहीं, बल्कि शत्रुओं और पापियों से भी समता का व्यवहार करता है। उसकी बुद्धि भेदभाव से ऊपर उठ जाती है क्योंकि वह सबमें एक ही आत्म-तत्व को देखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना किसी भेदभाव के सबको एक समान देखना ही सर्वोच्च योग है।

### श्लोक संख्या: 6.10

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः |  
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

योगी को चाहिए कि वह अकेला ही एकांत स्थान में स्थित होकर, मन और शरीर को वश में रखते हुए, आशारहित और संग्रह रहित होकर निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाए।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ साधना के लिए आवश्यक वातावरण और मानसिक स्थिति बताई गई है। योगी को एकांत का सेवन करना चाहिए ताकि बाहरी शोर कम हो। उसे किसी से कोई उम्मीद (आशा) नहीं रखनी चाहिए और अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह (अपरिग्रह) नहीं करना चाहिए। जब मन इन सब से मुक्त होता है, तभी वह परमात्मा में निरंतर एकाग्र हो सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एकांत, संयम और अपरिग्रह ही ध्यान योग के सफल होने की अनिवार्य शर्तें हैं।

## श्लोक संख्या: 6.11 - 6.12

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।

नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ 11 ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ 12 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

शुद्ध भूमि में, जिसके ऊपर क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र बिछे हैं, जो न बहुत ऊँचा है और न बहुत नीचा—ऐसे अपने स्थिर आसन को स्थापित करके, उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए, मन को एकाग्र करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए।

### सरल व्याख्या:

ध्यान के लिए स्थान और आसन का चुनाव महत्वपूर्ण है। स्थान शांत और पवित्र होना चाहिए। आसन ऐसा हो जो शरीर को स्थिरता दे सके, ताकि लम्बे समय तक बैठने में कष्ट न हो। मन को एकाग्र करने का मुख्य उद्देश्य संसार को पाना नहीं, बल्कि अपने ही अन्तःकरण को निर्मल और शांत करना है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... बाहरी शुद्धि और बैठने का अनुशासन मन को एकाग्र करने में सहायक होता है।

### श्लोक संख्या: 6.13 - 6.14

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः |  
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् || 13 ||  
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः |  
मनः संयम्य मच्चित्तौ युक्त आसीत मत्परः || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

काया, सिर और ग्रीवा (गर्दन) को समान एवं अचल धारण करके, स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखते हुए; शांत अन्तःकरण वाला, भयरहित, ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित और मन को संयम में रखकर मुझमें चित्त वाला योगी एकाग्र होकर मेरे परायण होकर बैठे।

#### सरल व्याख्या:

ध्यान के दौरान शरीर की मुद्रा (Posture) का वर्णन है। रीढ़ की हड्डी सीधी होनी चाहिए ताकि ऊर्जा का प्रवाह निर्बाध रहे। दृष्टि को इधर-उधर भटकने से रोकने के लिए नासिका पर ध्यान टिकाना चाहिए। मानसिक रूप से निर्भयता और पूर्ण समर्पण भाव से ही परमात्मा की अनुभूति संभव है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... शारीरिक स्थिरता और मानसिक शांति का समन्वय ही सफल ध्यान की नींव है।

### श्लोक संख्या: 6.15

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः |  
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इस प्रकार निरंतर अपने आप को परमात्मा में लगाता हुआ, संयमित मन वाला योगी मुझमें रहने वाली 'निर्वाण' रूप परम शांति को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

जब योगी निरंतर अभ्यास द्वारा अपने मन को संसार से हटाकर परमात्मा में लीन कर देता है, तो उसे उस शांति का अनुभव होता है जिसे 'निर्वाण' कहा गया है। यह शांति क्षणिक नहीं, बल्कि शाश्वत है और सीधे परमात्मा से जुड़ी होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर अभ्यास और आत्म-संयम से ही परम शांति और मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

### श्लोक संख्या: 6.16

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्रतः ।

न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! यह योग न तो बहुत अधिक खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का; न बहुत अधिक सोने वाले का और न सदा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

#### सरल व्याख्या:

योग अति (Extremes) का मार्ग नहीं है, बल्कि संतुलन का मार्ग है। जो शरीर को बहुत अधिक कष्ट देता है या जो केवल भोगों में डूबा रहता है, वह ध्यान नहीं लगा सकता। योग के मार्ग पर चलने के लिए जीवन के हर व्यवहार में संयम की आवश्यकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... योग सिद्धि के लिए खान-पान और निद्रा का संतुलित होना अनिवार्य है।

### श्लोक संख्या: 6.17

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

दुखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार (विहार अर्थात् घूमना-फिरना) करने वाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि योग जीवन से भागना नहीं, बल्कि उसे सलीके से जीना है। जिसका भोजन, आराम, कार्य और विश्राम संतुलित है, उसके लिए योग सभी दुखों को मिटाने वाली औषधि बन जाता है। अनुशासन ही साधक को मानसिक और शारीरिक कष्टों से मुक्त करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... नियमित और अनुशासित जीवनशैली ही दुखों के विनाश और योग की सफलता का आधार है।



### श्लोक संख्या: 6.18

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते |

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा || 18 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस काल में विशेष रूप से वश में किया हुआ चित्त आत्मा में ही भलीभाँति स्थित हो जाता है, उस काल में संपूर्ण भोगों से स्पृहा (इच्छा) रहित पुरुष 'युक्त' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

योग की स्थिति वह है जब चित्त बाहरी इच्छाओं के पीछे भागना बंद कर दे और स्वयं की आत्मा में ही आनंद लेने लगे। जब किसी भी वस्तु को पाने की लालसा शेष नहीं रहती, तब माना जाता है कि साधक परमात्मा से पूर्णतः जुड़ गया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इच्छाओं का अंत और आत्म-स्थिरता ही योग की पराकाष्ठा है।

### श्लोक संख्या: 6.19

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता |

योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः || 19 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की दी गई है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान एक बहुत सुंदर उदाहरण देते हैं। जैसे हवा के बिना दीपक की लौ बिल्कुल सीधी और स्थिर रहती है, वैसे ही सफल योगी का चित्त विचारों की हवाओं से विचलित नहीं होता। वह परमात्मा के ध्यान में पूरी तरह अचल और एकाग्र हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... विचारों की शांति ही एकाग्रता की वास्तविक शक्ति है।

## श्लोक संख्या: 6.20

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥ 20 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

योग के अभ्यास से निरुद्ध (रुका हुआ) चित्त जिस अवस्था में उपराम (शांत) हो जाता है और जिस अवस्था में वह अपने आप से अपने आप को देखता हुआ अपनी आत्मा में ही संतुष्ट रहता है।

### सरल व्याख्या:

जब निरंतर योग के अभ्यास से मन पूरी तरह स्थिर होकर शांत हो जाता है, तब साधक को अपनी आत्मा का दर्शन होता है। उसे अपनी खुशी के लिए अब बाहरी संसार की आवश्यकता नहीं रह जाती; वह स्वयं के भीतर ही परम संतोष और आनंद का अनुभव करने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-दर्शन और आत्म-संतुष्टि ही योग का सर्वोच्च लक्ष्य है।

## श्लोक संख्या: 6.21

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ 21 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

इन्द्रियों से अतीत, केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनंत आनंद है, उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित यह योगी तत्व से कभी विचलित नहीं होता।

### सरल व्याख्या:

सांसारिक सुख इन्द्रियों के माध्यम से मिलते हैं, लेकिन आत्मा का सुख इन्द्रियों की पहुँच से बाहर है। इसे केवल एक शांत और शुद्ध बुद्धि ही महसूस कर सकती है। एक बार जब योगी इस गहरे आनंद को चख लेता है, तो वह सत्य के मार्ग से कभी पीछे नहीं हटता, चाहे बाहरी परिस्थितियाँ कैसी भी हों।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मिक आनंद संसार के किसी भी शारीरिक सुख से कहीं अधिक गहरा और स्थायी होता है।

### श्लोक संख्या: 6.22

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः |  
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते || 22 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और जिस अवस्था में स्थित योगी बड़े भारी दुख से भी चलायमान नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा का बोध जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसे पाने के बाद मनुष्य को संसार की कोई भी वस्तु आकर्षित नहीं करती। यहाँ तक कि शारीरिक कष्ट या जीवन का सबसे बड़ा दुख भी उसकी मानसिक शांति को भंग नहीं कर सकता। वह पहाड़ की तरह अटल हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-साक्षात्कार वह सर्वोच्च संपदा है जिसके बाद मनुष्य पूर्णतः निर्भय और संतुष्ट हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 6.23

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् |  
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है, जिसका नाम 'योग' है, उसको जानना चाहिए। वह योग न उकताए हुए (धैर्ययुक्त) चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ योग की एक नई परिभाषा देते हैं—"दुखों के साथ संबंध का विच्छेद ही योग है।" योग वह स्थिति है जहाँ दुख आपको छू भी नहीं सकते। इस अवस्था को पाने के लिए साधक को बिना घबराए और बिना थके, अटूट उत्साह और दृढ़ निश्चय के साथ निरंतर अभ्यास करना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... योग दुख का अंत करने वाली विद्या है, जिसे धैर्य और अटूट निश्चय से साधना पड़ता है।

## श्लोक संख्या: 6.24

संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।  
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ 24 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

संकल्प से उत्पन्न होने वाली संपूर्ण कामनाओं को शेष न रहे इस प्रकार (जड़ से) त्यागकर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सभी ओर से भलीभाँति रोककर।

### सरल व्याख्या:

साधना की विधि में सबसे पहले मन में उठने वाले 'संकल्पों' को रोकना होता है, क्योंकि कामनाएँ संकल्पों से ही जन्म लेती हैं। योगी को चाहिए कि वह मन की शक्ति का उपयोग करके इन्द्रियों को उनके विषयों (रूप, रस, शब्द आदि) से पूरी तरह खींच ले। इसमें कोई भी कोताही नहीं बरतनी चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए मन के संकल्पों का त्याग करना अनिवार्य है।

## श्लोक संख्या: 6.25

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।  
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ 25 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति (शांति) को प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके फिर दूसरा कुछ भी चिन्तन न करे।

### सरल व्याख्या:

मन को स्थिर करना रातों-रात संभव नहीं है। धैर्य के साथ धीरे-धीरे मन को संसार से हटाकर आत्मा में टिकाना चाहिए। एक बार जब मन परमात्मा के चिन्तन में लग जाए, तो फिर किसी और वस्तु या विचार को स्थान नहीं देना चाहिए। यह 'शून्य' और 'पूर्ण' की स्थिति है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर और धैर्यपूर्ण अभ्यास से ही मन को पूरी तरह शांत और एकाग्र किया जा सकता है।

### श्लोक संख्या: 6.26

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।  
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यह चंचल और अस्थिर मन जिस-जिस कारण से (विषयों में) विचरता है, उस-उस से रोककर इसे बार-बार आत्मा के ही वश में करना चाहिए।

#### सरल व्याख्या:

मन का स्वभाव ही चंचल है, वह बार-बार भागेगा। लेकिन एक कुशल सारथी की तरह योगी को चाहिए कि जब भी मन किसी विचार में भटके, उसे वहाँ से प्यार और दृढ़ता से वापस खींच लाए और फिर से परमात्मा में लगा दे। यह अभ्यास की निरंतरता ही योग की सफलता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन को बार-बार वापस लाकर आत्मा में लगाना ही एकाग्रता का मूल अभ्यास है।

### श्लोक संख्या: 6.27

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।  
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ 27 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसका मन भलीभाँति शांत है, जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है, ऐसे ब्रह्मरूप हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

जब मन की अशांति और रजोगुण (भाग-दौड़ और बेचैनी) शांत हो जाते हैं, तब योगी पापों के प्रभाव से मुक्त होकर ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है। इस अवस्था में उसे उस 'उत्तम सुख' की प्राप्ति होती है जो शब्दों के परे है। वह स्वयं ही आनंद स्वरूप बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक शांति और गुणों का संतुलन ही सर्वोच्च ईश्वरीय आनंद का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 6.28

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः |  
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते || 28 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

पाप रहित योगी इस प्रकार निरंतर आत्मा को परमात्मा में लगाता हुआ सुखपूर्वक ब्रह्म-प्राप्ति रूप अनंत आनंद का अनुभव करता है।

#### सरल व्याख्या:

जैसे-जैसे साधक का अभ्यास गहरा होता है, उसके पुराने संस्कार और दोष मिटने लगते हैं। वह बिना किसी विशेष प्रयास के सहजता से परमात्मा के साथ जुड़ा रहता है। 'ब्रह्म-संस्पर्श' का अर्थ है ईश्वर के साथ सीधा जुड़ाव, जिससे मिलने वाला सुख असीमित और कभी न खत्म होने वाला होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर योग अभ्यास से जीव और ब्रह्म के बीच की दूरी मिट जाती है।

### श्लोक संख्या: 6.29

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि |  
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः || 29 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

सर्वत्र समभाव से देखने वाला, योगयुक्त आत्मा वाला योगी अपनी आत्मा को संपूर्ण भूतों में स्थित और संपूर्ण भूतों को अपनी आत्मा में देखता है।

#### सरल व्याख्या:

योग की पूर्णता 'समदर्शन' में है। योगी अब केवल अपनी मुक्ति में नहीं रहता, उसे यह अनुभव होने लगता है कि जो आत्मा मेरे भीतर है, वही हर प्राणी, पशु और वनस्पति में है। उसे पूरी सृष्टि अपनी आत्मा का ही विस्तार लगने लगती है। यही वास्तविक अद्वैत भाव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा योगी वही है जो समस्त चराचर जगत को परमात्मा का ही रूप समझकर सबसे प्रेम करता है।

### श्लोक संख्या: 6.30

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति |  
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति || 30 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष मुझको सबमें देखता है और सबको मुझमें देखता है, उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

यह भक्ति और ज्ञान का सुंदर मिलन है। भगवान कहते हैं कि जो व्यक्ति कण-कण में मेरी उपस्थिति देखता है, मैं उससे कभी दूर नहीं होता। वह सदैव मेरी सुरक्षा और सान्निध्य में रहता है। ऐसे भक्त और भगवान के बीच का संबंध अटूट हो जाता है; वे एक-दूसरे से कभी ओझल नहीं होते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का सर्वत्र दर्शन करना ही उनके साथ नित्य जुड़े रहने का रहस्य है।

### श्लोक संख्या: 6.31

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः |  
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते || 31 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष एकत्व भाव में स्थित होकर संपूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझको भजता है, वह योगी सब प्रकार से बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।

#### सरल व्याख्या:

जब योगी को यह अनुभव हो जाता है कि एक ही परमात्मा समस्त प्राणियों में विद्यमान है, तो उसकी भक्ति 'एकत्व' की हो जाती है। फिर वह चाहे संसार के कोई भी कार्य करे, उसका चित्त सदैव परमात्मा से जुड़ा रहता है। उसके लिए कर्म और भक्ति अलग नहीं रह जाते; वह जो कुछ भी करता है, वह ईश्वर की ही सेवा बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सर्वत्र ईश्वर का दर्शन करने वाला व्यक्ति संसार में रहते हुए भी सदैव ईश्वर के सान्निध्य में रहता है।

### श्लोक संख्या: 6.32

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन |

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः || 32 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! जो योगी अपनी भांति ही संपूर्ण भूतों में सुख और दुख को समान देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

#### सरल व्याख्या:

योग की सर्वोच्च अवस्था 'समानुभूति' (Empathy) है। जैसे मनुष्य को अपना सुख प्रिय और अपना दुख अप्रिय लगता है, वैसे ही जो दूसरों के सुख-दुख को भी अपना ही मानकर उनके साथ वैसा ही व्यवहार करता है, वही श्रेष्ठ योगी है। यह दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझने का दिव्य भाव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दूसरों के प्रति संवेदनशीलता और समता का भाव ही आध्यात्मिक प्रगति की सबसे बड़ी कसौटी है।

### श्लोक संख्या: 6.33

अर्जुन उवाच |

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन |

एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे मधुसूदन! जो यह योग आपने समभाव से कहा है, मन के चंचल होने के कारण मैं इसकी नित्य स्थिति को नहीं देख पा रहा हूँ (अर्थात् यह मन में स्थिर नहीं रह पाता)।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ एक व्यवहारिक समस्या उठा रहे हैं। भगवान ने जिस समत्व योग की बात की, वह सुनने में तो श्रेष्ठ है, लेकिन अर्जुन को लगता है कि मन इतना अस्थिर है कि वह इस शांति में टिक ही नहीं पाता। यह हर साधक की मूल समस्या है कि मन की गति उसे योग में स्थिर नहीं होने देती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की चंचलता आध्यात्मिक मार्ग की सबसे बड़ी व्यावहारिक बाधा है।



### श्लोक संख्या: 6.34

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् |  
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि हे कृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, मथ डालने वाला, बड़ा बलवान और दृढ़ है; इसलिए उसका वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यंत कठिन मानता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन मन की शक्ति का वर्णन कर रहे हैं। मन केवल चंचल ही नहीं है, यह बुद्धि को मथ देता है (भ्रमित कर देता है) और बहुत जिद्दी है। जैसे बहती हवा को मुट्ठी में पकड़ना असंभव है, वैसे ही अर्जुन को लगता है कि इस बलवान मन को पूरी तरह वश में करना लगभग नामुमकिन है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन को नियंत्रित करना कठिन कार्य है, जिसके लिए विशेष प्रयासों की आवश्यकता होती है।

### श्लोक संख्या: 6.35

श्रीभगवानुवाच |  
असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् |  
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते || 35 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे महाबाहो! निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है; किन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह 'अभ्यास' और 'वैराग्य' द्वारा वश में किया जाता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन की बात से सहमत हैं, पर वे समाधान भी देते हैं। मन को जीतने के दो ही हथियार हैं: 'अभ्यास' (बार-बार मन को परमात्मा में लगाने की कोशिश) और 'वैराग्य' (संसार के भोगों में दोष देखकर उनसे मोह हटाना)। अभ्यास मन को दिशा देता है और वैराग्य उसे गलत दिशा में जाने से रोकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर प्रयत्न और वैराग्य के बिना मन पर विजय पाना संभव नहीं है।

### श्लोक संख्या: 6.36

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः |  
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्नुमुपायतः || 36 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिसका मन वश में नहीं है, ऐसे पुरुष द्वारा योग प्राप्त होना कठिन है और वश में किए हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधनों (उपायों) से इसे प्राप्त करना सहज है—यह मेरा मत है।

#### सरल व्याख्या:

जिसने अपने अनुशासन और इंद्रियों पर काम नहीं किया, उसके लिए योग केवल एक कल्पना रह जाएगा। लेकिन जिसने मन को जीतना सीख लिया है और जो सही विधियों से प्रयास करता है, उसके लिए परमात्मा का मिलन कठिन नहीं है। सफलता केवल उन्हीं को मिलती है जो अपने मन के स्वामी हैं, गुलाम नहीं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-संयम ही योग की सफलता की पहली और अनिवार्य शर्त है।

### श्लोक संख्या: 6.37

अर्जुन उवाच |  
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः |  
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति || 37 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! जो योग में श्रद्धा रखने वाला है, किन्तु संयमी नहीं है, जिसका मन योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को न प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है?

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ 'योग-भ्रष्ट' साधक की चिंता कर रहे हैं। यदि किसी व्यक्ति के मन में श्रद्धा तो है, पर वह इतना दृढ़ नहीं कि मन को पूरी तरह वश में कर सके और बीच रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो जाए या वह भटक जाए, तो उसका क्या होगा? क्या उसकी सारी मेहनत बेकार चली जाएगी?

यह श्लोक हमें बताता है कि... साधक के मन में अक्सर यह भय रहता है कि यदि साधना पूरी न हुई तो क्या होगा।

### श्लोक संख्या: 6.38

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति |

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि || 38 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! क्या वह भगवत्प्राप्ति के मार्ग में मोहित और आश्रयरहित पुरुष, छिन्न-भिन्न बादल की भाँति दोनों ओर से भ्रष्ट होकर नष्ट तो नहीं हो जाता?

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन को डर है कि ऐसा व्यक्ति 'माया' (संसार) से तो नाता तोड़ चुका है पर 'ब्रह्म' (परमात्मा) तक पहुँच नहीं पाया। वह उस बादल के टुकड़े की तरह तो नहीं हो जाएगा जो हवा में इधर-उधर भटककर बिखर जाता है और कहीं का नहीं रहता? क्या वह लौकिक सुख और पारलौकिक आनंद—दोनों से हाथ धो बैठेगा?

यह श्लोक हमें बताता है कि... अधूरा ज्ञान और अधूरी साधना मनुष्य के मन में अनिश्चितता पैदा करती है।

### श्लोक संख्या: 6.39

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः |

त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते || 39 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कृष्ण! मेरे इस संशय को संपूर्ण रूप से छेदन करने (मिटाने) के लिए आप ही योग्य हैं; क्योंकि आपके सिवा दूसरा इस संशय का छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन पूरी तरह श्री कृष्ण की शरण में हैं। वे जानते हैं कि जन्म-मृत्यु और कर्मों की सूक्ष्म गति का ज्ञान केवल भगवान को ही हो सकता है। वे चाहते हैं कि कृष्ण उनके मन के इस गहरे डर को हमेशा के लिए मिटा दें। यह एक शिष्य का अपने गुरु पर पूर्ण विश्वास है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गहरे आध्यात्मिक संशयों का निवारण केवल एक पूर्ण गुरु या ईश्वर ही कर सकते हैं।

### श्लोक संख्या: 6.40

श्रीभगवानुवाच ।  
पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।  
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥ 40 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे पार्थ! उस पुरुष का न तो इस लोक में नाश होता है और न परलोक में ही; क्योंकि हे प्यारे! आत्म-कल्याण के लिए कर्म करने वाला कोई भी मनुष्य दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता के सबसे सात्वनादायक श्लोकों में से एक है। भगवान् स्पष्ट घोषणा करते हैं कि नेक रास्ते पर चलने वाले का कभी बुरा नहीं होता। यदि साधना अधूरी भी रह जाए, तो भी वह मेहनत बेकार नहीं जाती। ईश्वर के लिए किया गया छोटा सा प्रयास भी साधक की रक्षा करता है और उसे पतन से बचाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भलाई के मार्ग पर किया गया कोई भी प्रयास कभी व्यर्थ नहीं जाता और ईश्वर अपने भक्त का पतन नहीं होने देते।

### श्लोक संख्या: 6.41

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।  
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ 41 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त होकर, उनमें बहुत वर्षों तक निवास करके, फिर शुद्ध आचरण वाले श्रीमानों (सम्पन्न पुरुषों) के घर में जन्म लेता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन के संशय को मिटाते हुए कहते हैं कि साधना कभी व्यर्थ नहीं जाती। जो साधक योग मार्ग से विचलित हो गया था, उसे मृत्यु के बाद पहले तो स्वर्ग आदि दिव्य लोकों में सुख मिलता है। उसके बाद, वह पृथ्वी पर ऐसे पवित्र और समृद्ध परिवार में जन्म लेता है जहाँ उसे भक्ति के संस्कार और साधना की सुविधाएँ आसानी से मिल सकें।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आध्यात्मिक पुरुष का पुनर्जन्म भी उसकी अधूरी साधना को पूरा करने के लिए अनुकूल वातावरण में होता है।

### श्लोक संख्या: 6.42

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।  
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥ 42 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अथवा वह (यदि पहले से ही वैराग्यवान है तो) ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है; परन्तु इस प्रकार का जो यह जन्म है, वह संसार में निश्चय ही अत्यंत दुर्लभ है।

#### सरल व्याख्या:

यदि साधक उच्च कोटि का था और केवल अंत में विचलित हुआ, तो उसे किसी अमीर घर के बजाय सीधे एक योगी परिवार में जन्म मिलता है। ऐसे घर में बचपन से ही उसे आत्मज्ञान का वातावरण मिलता है। भगवान कहते हैं कि ऐसा जन्म मिलना बहुत दुर्लभ है क्योंकि यहाँ से लक्ष्य तक पहुँचना बहुत आसान हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक योगी के घर में जन्म लेना पिछले जन्मों की महान तपस्या का फल है।

### श्लोक संख्या: 6.43

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ।  
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ 43 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वहाँ वह उस पहले शरीर में संग्रह किए हुए बुद्धि के संयोग को (अर्थात् योग के संस्कारों को) अनायास ही प्राप्त हो जाता है और हे कुरुनन्दन! उसके प्रभाव से वह फिर परमात्मा की प्राप्ति रूप सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़कर प्रयत्न करता है।

#### सरल व्याख्या:

नया जन्म मिलने पर पिछले जन्म का ज्ञान और संस्कार उसके भीतर फिर से जाग्रत हो जाते हैं। उसे शून्य से शुरुआत नहीं करनी पड़ती, बल्कि वह वहीं से शुरू करता है जहाँ पिछले जन्म में उसने साधना छोड़ी थी। उसके भीतर की तड़प उसे पहले से भी अधिक तीव्रता के साथ ईश्वर की ओर ले जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी आध्यात्मिक प्रगति हमारी मृत्यु के साथ समाप्त नहीं होती, वह अगले जन्म में भी हमारे साथ चलती है।

### श्लोक संख्या: 6.44

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हियते ह्यवशोऽपि सः |

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते || 44 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वह (विषयों के वश में हुआ भी) उस पिछले अभ्यास के कारण ही परमात्मा की ओर आकर्षित किया जाता है। योग का जिज्ञासु भी शब्दब्रह्म (वेदों में कहे हुए सकाम कर्मों के फल) का अतिक्रमण कर जाता है।

#### सरल व्याख्या:

पिछले जन्म की साधना इतनी शक्तिशाली होती है कि वह साधक को अपनी ओर खींच ही लेती है, भले ही वह अनजाने में संसार की ओर भटकने की कोशिश करे। यहाँ तक कि योग के बारे में केवल जानने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति भी उन लोगों से श्रेष्ठ है जो केवल कर्मकांडों और बाहरी दिखावे में उलझे रहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संस्कार कभी मिटते नहीं; वे मनुष्य को सही समय पर सही मार्ग पर वापस ले आते हैं।

### श्लोक संख्या: 6.45

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः |

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् || 45 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करने वाला योगी तो पिछले अनेक जन्मों के संस्कार-पुंज से इसी जन्म में संसिद्ध होकर, संपूर्ण पापों से रहित होकर, तत्काल ही परम गति को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

जब साधक अपने पिछले जन्मों के अनुभवों और इस जन्म के कठिन परिश्रम को मिला देता है, तो उसकी शुद्धि पूर्ण हो जाती है। उसके मन के सारे विकार नष्ट हो जाते हैं। अनेक जन्मों की यह क्रमिक यात्रा अंततः उसे उस परम लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुँचा देती है, जहाँ फिर कोई बंधन नहीं रहता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर प्रयास और पिछले जन्मों की पूँजी मिलकर मनुष्य को पूर्णता तक पहुँचाती है।

### श्लोक संख्या: 6.46

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः |  
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन || 46 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्र ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है; इसलिए हे अर्जुन! तू योगी बन।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ योग की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। केवल शरीर को कष्ट देने वाला (तपस्वी), केवल किताबी ज्ञान रखने वाला (ज्ञानी), या केवल फल के लिए पुण्य करने वाला (कर्मि)—इन सबसे ऊपर वह योगी है जिसका मन परमात्मा में टिका है। इसलिए भगवान अर्जुन को किसी कर्मकांड में नहीं, बल्कि योग में स्थित होने की सलाह देते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर से जुड़ाव ही संसार की सभी साधनाओं का सार है।

### श्लोक संख्या: 6.47

योगिनामपि सर्वेषां मद्भक्तेनान्तरात्मना |  
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः || 47 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

संपूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मुझमें लगे हुए अन्तरात्मा से मुझको निरंतर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

#### सरल व्याख्या:

अध्याय के अंत में भगवान सबसे ऊँची बात कहते हैं। यद्यपि योग के कई मार्ग हैं, लेकिन जो योगी अपनी पूरी आत्मा और अटूट श्रद्धा के साथ केवल मुझ (परमात्मा) में ही लीन रहता है, वही मेरा सबसे प्रिय और सर्वश्रेष्ठ योगी है। यहाँ ज्ञान और भक्ति का सुंदर मेल दिखाया गया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा और अनन्य प्रेमपूर्वक ईश्वर में लीन रहना ही योग की पराकाष्ठा है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram





## अध्याय 7: ज्ञानविज्ञानयोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 7.01

श्रीभगवानुवाच ।

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युज्जन्मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—हे पार्थ! मुझमें अनन्य प्रेम से आसक्त मन वाला और मेरे ही आश्रित होकर योग में लगा हुआ तू, मुझको संपूर्ण विभूति, बल और ऐश्वर्य आदि गुणों से युक्त जिस प्रकार संशयरहित जानेगा, उसको सुन।

### सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ अर्जुन को यह बताने जा रहे हैं कि पूर्ण ज्ञान क्या है। वे कहते हैं कि जब मन पूरी तरह परमात्मा में टिक जाता है और साधक को यह विश्वास हो जाता है कि ईश्वर ही उसका एकमात्र सहारा है, तब उसे ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का ऐसा ज्ञान मिलता है जिसमें कोई संदेह शेष नहीं रहता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर पर पूर्ण आश्रित होकर ही उनके समग्र रूप को समझा जा सकता है।

## श्लोक संख्या: 7.02

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

मैं तेरे लिए इस रहस्यमयी ज्ञान को अनुभव (विज्ञान) सहित पूर्ण रूप से कहूँगा, जिसको जानकर इस संसार में फिर और कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता।

### सरल व्याख्या:

यहाँ 'ज्ञान' का अर्थ है ईश्वर के परोक्ष स्वरूप को जानना और 'विज्ञान' का अर्थ है उस ज्ञान का साक्षात् अनुभव करना। भगवान् कह रहे हैं कि वे अर्जुन को वह पूर्ण सत्य बताएंगे जिसे जान लेने के बाद मनुष्य की जिज्ञासा शांत हो जाती है और उसे जगत की किसी अन्य विद्या की आवश्यकता नहीं रहती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान ही वह अंतिम सत्य है जो मनुष्य को पूर्णता प्रदान करता है।

### श्लोक संख्या: 7.03

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ 03 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हजारों मनुष्यों में कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और उन प्रयत्न करने वाले सिद्धों में भी कोई एक ही मुझको तत्व से (यथार्थ रूप से) जानता है।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग अत्यंत दुर्लभ है। अधिकांश लोग संसार में ही उलझे रहते हैं। जो थोड़े बहुत लोग ईश्वर की खोज शुरू करते हैं, उनमें से भी बहुत कम लोग अंत तक पहुँच पाते हैं। और जो अंत तक पहुँचते हैं, उनमें से भी कोई विरला ही भगवान के वास्तविक मर्म को समझ पाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य की खोज के लिए असाधारण धैर्य और विशेष कृपा की आवश्यकता होती है।

### श्लोक संख्या: 7.04

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ 04 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—इस प्रकार यह आठ प्रकार से विभाजित मेरी 'अपरा' प्रकृति (जड़ प्रकृति) है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अपनी 'अपरा' प्रकृति का वर्णन कर रहे हैं, जिससे यह दृश्य जगत बना है। इसमें पाँच स्थूल तत्व (पंचमहाभूत) और तीन सूक्ष्म तत्व (मन, बुद्धि, अहंकार) शामिल हैं। यह सब ईश्वर की ही शक्ति का निचला स्वरूप है जो परिवर्तनशील और जड़ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दृश्य जगत और हमारा अहंकार, सब ईश्वर की ही मायावी शक्ति के विभिन्न रूप हैं।

## श्लोक संख्या: 7.05

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 05 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! यह (आठ प्रकार वाली) तो 'अपरा' है, इससे दूसरी को मेरी 'परा' प्रकृति (चेतन प्रकृति) जान, जो जीवस्वरूपा है और जिसके द्वारा यह संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है।

### सरल व्याख्या:

जड़ प्रकृति के अलावा भगवान की एक 'चेतन' शक्ति भी है, जिसे 'परा' प्रकृति या जीवात्मा कहा जाता है। यही वह शक्ति है जो निर्जीव तत्वों में प्राण फूँकती है और पूरे ब्रह्मांड को चलाती है। इसी चेतन तत्व के कारण संसार का अस्तित्व बना हुआ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जड़ प्रकृति शरीर है और परा प्रकृति वह प्राण शक्ति है जो संसार को जीवित रखती है।

**श्लोक संख्या: 7.06**

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय |

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा || 06 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

तू ऐसा समझ कि संपूर्ण भूत (प्राणी) इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पन्न होने वाले हैं; और मैं संपूर्ण जगत का उत्पत्ति तथा प्रलय (विनाश) हूँ।

**सरल व्याख्या:**

जड़ और चेतन के मिलन से ही सभी प्राणियों का जन्म होता है। भगवान स्पष्ट करते हैं कि वे ही इस पूरे ब्रह्मांड के आदि और अंत हैं। जैसे सोने से गहने बनते हैं और अंत में सोना ही रह जाता है, वैसे ही सब कुछ परमात्मा से निकलता है और अंत में उन्हीं में विलीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही इस सृष्टि के परम स्रष्टा और संहारक हैं।

### श्लोक संख्या: 7.07

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ 07 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! मुझके सिवा दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह संपूर्ण जगत सूत्र (धागे) में मणियों के सदृश मुझमें गुंथा हुआ है।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता के सबसे प्रसिद्ध उदाहरणों में से एक है। जैसे एक माला के भीतर धागा छिपा रहता है और वही सभी मणियों को जोड़कर रखता है, वैसे ही भगवान इस संसार के कण-कण में छिपे हुए हैं। उनके बिना संसार का कोई अस्तित्व नहीं है, वे ही सबको एक सूत्र में पिरोए हुए हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर ही ब्रह्मांड का अदृश्य आधार और नियामक शक्ति है।

### श्लोक संख्या: 7.08

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ 08 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! मैं जल में रस हूँ, चंद्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ, संपूर्ण वेदों में 'ॐकार' हूँ, आकाश में शब्द हूँ और मनुष्यों में पुरुषत्व (सामर्थ्य) हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अपनी व्यापकता समझा रहे हैं। वे किसी दूर लोक में नहीं, बल्कि वस्तुओं के मूल गुण में विद्यमान हैं। जल का स्वाद, सूरज की रोशनी, वेदों का सार और मनुष्य की कार्यक्षमता—ये सब ईश्वर की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति की हर विशेषता और शक्ति ईश्वर की ही उपस्थिति का प्रमाण है।

### श्लोक संख्या: 7.09

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ |  
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु || 09 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं पृथ्वी में पवित्र गंध हूँ, अग्नि में तेज हूँ, संपूर्ण भूतों में उनका जीवन (आयु) हूँ और तपस्वियों में तप हूँ।

#### सरल व्याख्या:

मिट्टी की सोंधी खुशबू, आग की तपन और किसी भी जीव के जीवित रहने की शक्ति—ये सब भगवान के ही स्वरूप हैं। जब कोई तपस्वी तप करता है, तो उस तप की शक्ति भी परमात्मा ही हैं। ईश्वर सूक्ष्म रूप से हर क्रिया और तत्व के मूल में स्थित हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की हर शुद्धता और जीवनी शक्ति परमात्मा का ही अंश है।

### श्लोक संख्या: 7.10

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् |  
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! तू संपूर्ण भूतों का सनातन बीज (मूल कारण) मुझको ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि और तेजस्वियों का तेज हूँ।

#### सरल व्याख्या:

जैसे एक विशाल वृक्ष एक सूक्ष्म बीज में समाया होता है, वैसे ही पूरी सृष्टि का आदि कारण ईश्वर हैं। बुद्धिमान व्यक्ति की सोचने की शक्ति और प्रभावशाली व्यक्ति का प्रभाव (ओज) भी उन्हीं की देन है। वे ही वह अविनाशी मूल हैं जिससे सब कुछ अंकुरित होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समस्त अस्तित्व का मूल आधार और उत्तम गुणों का स्रोत परमात्मा ही हैं।

### श्लोक संख्या: 7.11

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! मैं बलवानों का आसक्ति और कामनाओं से रहित बल हूँ और सब भूतों में धर्म के अनुकूल (शास्त्रसम्मत) काम हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि बलवान व्यक्ति की वह शक्ति जो दूसरों की रक्षा और कल्याण के लिए है, वह परमात्मा ही है। साथ ही, जो इच्छाएँ और कामनाएँ धर्म की मर्यादा के भीतर हैं और सृष्टि के चक्र को चलाने में सहायक हैं, वे भी ईश्वर का ही स्वरूप हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निस्वार्थ शक्ति और मर्यादित इच्छाएँ ईश्वरीय गुणों की ही अभिव्यक्ति हैं।

### श्लोक संख्या: 7.12

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ।

मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और जो भी सत्त्वगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं तथा जो रजोगुण और तमोगुण से होने वाले भाव हैं, उन सबको तू मुझसे ही होने वाले जान; परन्तु वास्तव में उनमें मैं नहीं हूँ और वे मुझमें हैं।

#### सरल व्याख्या:

संसार के तीनों गुण (शांति, चंचलता और अज्ञान) परमात्मा की शक्ति से ही पैदा होते हैं। जैसे स्वप्न देखने वाले से स्वप्न की सृष्टि होती है, वैसे ही ये गुण ईश्वर पर आश्रित हैं। लेकिन ईश्वर इन गुणों के अधीन नहीं हैं, वे इनसे ऊपर और निर्लिप्त हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सृष्टि के समस्त गुण ईश्वर से उपजे हैं, फिर भी वे उनसे परे और स्वतंत्र हैं।



### श्लोक संख्या: 7.13

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इन गुणों के कार्य रूप तीनों प्रकार के भावों से यह सारा संसार मोहित हो रहा है, इसलिए इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को वह तत्व से नहीं जानता।

#### सरल व्याख्या:

प्रकृति के तीन गुणों के जाल में फँसकर मनुष्य का विवेक ढँक जाता है। लोग बाहरी चमक-धमक और स्वभाव के खेल में इतने उलझ जाते हैं कि वे उस परम तत्व को नहीं देख पाते जो इन गुणों का स्वामी और अविनाशी है। यह संसार एक परदे की तरह है जो असली सत्य को छिपाए हुए है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गुणों का सम्मोहन ही मनुष्य को ईश्वर के वास्तविक स्वरूप को जानने से रोकता है।

### श्लोक संख्या: 7.14

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरंतर भजते हैं, वे इस माया को तर जाते हैं।

#### सरल व्याख्या:

ईश्वर की माया (संसार का भ्रम) बहुत शक्तिशाली है, इसे अपने दम पर पार करना लगभग असंभव है। लेकिन जो साधक अहंकार छोड़कर पूरी तरह परमात्मा की शरण में आ जाता है, उसके लिए यह माया अपना प्रभाव खो देती है। ईश्वर की कृपा ही इस भवसागर से पार उतरने की एकमात्र नौका है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण शरणागति ही माया के बंधनों से मुक्त होने का एकमात्र मार्ग है।

## श्लोक संख्या: 7.15

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।

माययापहतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ 15 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

माया द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, ऐसे आसुरी स्वभाव को धारण किए हुए, नीच और दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग मुझको नहीं भजते।

### सरल व्याख्या:

जो लोग अहंकार, हिंसा और स्वार्थ में डूबे रहते हैं, उनकी बुद्धि माया के वश में होती है। वे सत्य को देख ही नहीं पाते और ईश्वर की शरण में आने के बजाय अपने विनाशकारी स्वभाव (आसुरी भाव) में लगे रहते हैं। ऐसे लोग कल्याण के मार्ग से विमुख रहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और बुरे कर्म मनुष्य की समझ को नष्ट कर देते हैं, जिससे वह ईश्वर से दूर हो जाता है।

श्लोक संख्या: 7.16

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ 16 ॥

हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकार के भक्त मुझको भजते हैं।

सरल व्याख्या:

ईश्वर को याद करने वाले चार तरह के लोग होते हैं: 1. आर्त (जो संकट में पड़कर पुकारते हैं), 2. जिज्ञासु (जो सत्य को जानने के लिए खोज करते हैं), 3. अर्थार्थी (जो सुख-सुविधा और धन पाने के लिए भजते हैं) और 4. ज्ञानी (जो ईश्वर को ही अपना लक्ष्य मानते हैं)।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मनुष्य अपनी आवश्यकता और चेतना के स्तर के अनुसार ईश्वर की ओर मुड़ता है।

### श्लोक संख्या: 7.17

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उनमें नित्य मुझमें स्थित, अनन्य प्रेम वाला ज्ञानी भक्त अत्यंत श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी को मैं अत्यंत प्रिय हूँ और वह मुझको अत्यंत प्रिय है।

#### सरल व्याख्या:

यद्यपि चारों भक्त अच्छे हैं, लेकिन 'ज्ञानी' भक्त सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि वह ईश्वर से कुछ मांगता नहीं, बल्कि स्वयं ईश्वर को ही चाहता है। वह हर क्षण परमात्मा के साथ एक होकर रहता है। भगवान कहते हैं कि ऐसे भक्त के प्रेम का कोई मोल नहीं है; वह ईश्वर का हृदय है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम प्रेम और नित्य योग ही भक्ति की सर्वोच्च अवस्था है।

### श्लोक संख्या: 7.18

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

ये सभी उदार (श्रद्धावान) हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है—ऐसा मेरा मत है; क्योंकि वह स्थिर बुद्धि वाला भक्त मुझमें ही अनन्य गति मानकर मुझमें ही स्थित है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि जो भी मुझे पुकारता है, वह उदार और महान है। लेकिन ज्ञानी भक्त को मैं अपनी आत्मा मानता हूँ क्योंकि उसकी बुद्धि कहीं और नहीं भटकती। वह जानता है कि परमात्मा के सिवा कोई दूसरी गति या शरण नहीं है। वह परमात्मा में वैसे ही मिल गया है जैसे नदी समुद्र में।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निस्वार्थ भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं रह जाता।

### श्लोक संख्या: 7.19

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

बहुत जन्मों के अंत में तत्वज्ञान को प्राप्त पुरुष 'सब कुछ वासुदेव (परमात्मा) ही है'—ऐसा मानकर मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है।

#### सरल व्याख्या:

यह बोध कि "कण-कण में ईश्वर है" (वासुदेवः सर्वम्), अनेक जन्मों की साधना के बाद आता है। जब मनुष्य को हर जीव और हर परिस्थिति में केवल परमात्मा ही दिखने लगते हैं, तब वह पूर्णता को प्राप्त होता है। ऐसे महापुरुष इस संसार में बहुत कम होते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सर्वत्र परमात्मा के दर्शन करना ही ज्ञान की पराकाष्ठा है।

### श्लोक संख्या: 7.20

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।

तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उन-उन कामनाओं द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, वे लोग अपनी प्रकृति (स्वभाव) से प्रेरित होकर उस-उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जिन लोगों के मन में सांसारिक इच्छाएँ बहुत तीव्र होती हैं, वे अपनी छोटी-छोटी जरूरतों के लिए विभिन्न शक्तियों की पूजा करते हैं। वे अपने स्वभाव के वश में होकर कर्मकांडों में उलझ जाते हैं और उस एक अविनाशी परमात्मा को भूल जाते हैं जो सभी शक्तियों का मूल स्रोत है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक वासनाएँ मनुष्य की दृष्टि को संकुचित कर देती हैं, जिससे वह मूल सत्य से दूर हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 7.21

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति |  
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् || 21 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो-जो भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर कर देता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान की उदारता देखिए—वे कहते हैं कि कोई भी मनुष्य जिस भी रूप में परमात्मा को देखना या पूजना चाहता है, वे उसकी उस श्रद्धा को और भी पक्का कर देते हैं। भगवान किसी की श्रद्धा को तोड़ते नहीं, बल्कि उसे सहारा देते हैं, क्योंकि अंततः हर मार्ग की जड़ परमात्मा ही हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर हर भक्त की भावना का सम्मान करते हैं और उसकी श्रद्धा को बल प्रदान करते हैं।

### श्लोक संख्या: 7.22

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते |  
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्धि तान् || 22 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त होकर उस देवता का पूजन करता है और उस देवता से उन इच्छित भोगों को प्राप्त करता है, जो वास्तव में मेरे द्वारा ही विधान किए हुए हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब कोई व्यक्ति किसी देवता की उपासना करता है और उसे उसका फल मिलता है, तो वह फल भी वास्तव में सर्वव्यापी परमात्मा की शक्ति से ही आता है। देवता केवल माध्यम हैं; सुख-दुख और कर्मफल का विधान करने वाली मूल सत्ता केवल एक ही ईश्वर है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार में मिलने वाले सभी फल और सिद्धियाँ अंततः परमात्मा की ही व्यवस्था से प्राप्त होती हैं।

### श्लोक संख्या: 7.23

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।  
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु उन अल्प बुद्धि वालों का वह फल नाशवान है; देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक बड़ा भेद समझा रहे हैं। जो लोग छोटी-छोटी सांसारिक चीजों के लिए देवताओं को पूजते हैं, उन्हें मिलने वाला सुख भी अस्थायी (नाशवान) होता है। लेकिन जो सीधे उस एक अविनाशी परमात्मा की शरण लेते हैं, वे हमेशा के लिए परमात्मा में ही मिल जाते हैं। लक्ष्य जितना बड़ा होगा, उपलब्धि भी उतनी ही महान होगी।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अस्थायी सुखों के पीछे भागने के बजाय शाश्वत परमात्मा की भक्ति ही श्रेष्ठ है।

### श्लोक संख्या: 7.24

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।  
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

बुद्धिहीन पुरुष मेरे सर्वश्रेष्ठ, अविनाशी और परम भाव को न जानते हुए, मुझे अदृश्य (निराकार) को शरीर धारण करने वाला (साकार) मानते हैं।

#### सरल व्याख्या:

लोग अक्सर भगवान को केवल एक शरीर या मूर्ति तक सीमित समझ लेते हैं। वे यह नहीं जान पाते कि ईश्वर अजन्मा, अविनाशी और सर्वव्यापी है। भगवान कहते हैं कि जो मुझे केवल एक साधारण मनुष्य की तरह जन्म लेने वाला समझते हैं, वे मेरे उस असली स्वरूप से अनजान हैं जो आदि और अंत से रहित है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की सत्ता शरीर और सीमाओं से परे है; उन्हें केवल साकार रूप तक सीमित मानना अज्ञान है।

### श्लोक संख्या: 7.25

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः |

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् || 25 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके सामने प्रकट नहीं होता; इसलिए यह अज्ञानी संसार मुझ अजन्मा और अविनाशी परमात्मा को तत्व से नहीं जानता।

#### सरल व्याख्या:

जैसे बादल सूर्य को ढँक लेते हैं, वैसे ही भगवान की 'योगमाया' उन्हें सामान्य आँखों से ओझल रखती है। जब तक हृदय में अहंकार और अज्ञान है, तब तक ईश्वर का अनुभव नहीं होता। केवल शुद्ध मन वाले ही उस परदे के पीछे छिपे परमात्मा को देख पाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर सर्वत्र होकर भी माया के आवरण के कारण अज्ञानियों के लिए अदृश्य रहते हैं।

### श्लोक संख्या: 7.26

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन |

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन || 26 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! पूर्व में व्यतीत हुए, वर्तमान में स्थित और भविष्य में होने वाले संपूर्ण भूतों को मैं जानता हूँ; परन्तु मुझको कोई भी (भक्ति रहित पुरुष) नहीं जानता।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा काल (समय) के स्वामी हैं। उन्हें सब पता है कि कब क्या हुआ था और आगे क्या होगा। लेकिन मनुष्य की बुद्धि सीमित है, वह ईश्वर की पूरी महिमा को तब तक नहीं समझ सकता जब तक कि वह पूरी तरह समर्पित न हो जाए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर त्रिकालदर्शी (तीनों समय को जानने वाले) हैं, जबकि जीव उनकी माया में उलझा रहता है।



**श्लोक संख्या: 7.27**

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत |

सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप || 27 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे भरतवंशी अर्जुन! संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न होने वाले सुख-दुख आदि द्वन्द्व रूप मोह से संपूर्ण प्राणी अत्यंत अज्ञान को प्राप्त हो रहे हैं।

**सरल व्याख्या:**

मनुष्य क्यों नहीं जान पाता कि सत्य क्या है? क्योंकि वह 'पसंद' (इच्छा) और 'नापसंद' (द्वेष) के चक्कर में फँसा है। जब तक मन सुख-दुख, राग-द्वेष के उतार-चढ़ाव में उलझा रहता है, तब तक वह मोह की नींद में सोया रहता है और वास्तविकता को नहीं देख पाता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... राग-द्वेष का द्वन्द्व ही मनुष्य के अज्ञान और भटकाव की मुख्य जड़ है।

**श्लोक संख्या: 7.28**

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् |

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः || 28 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

परन्तु जिन पुण्यकर्मा पुरुषों के पाप नष्ट हो गए हैं, वे द्वन्द्व रूप मोह से मुक्त हुए दृढ़ निश्चय वाले भक्त मुझको ही भजते हैं।

**सरल व्याख्या:**

जिन लोगों ने शुद्ध आचरण और निस्वार्थ सेवा से अपने मन के विकारों (पापों) को धो डाला है, वे ही इस राग-द्वेष के जाल से बाहर निकल पाते हैं। ऐसे लोग ही पूरे निश्चय और अडिग विश्वास के साथ परमात्मा की भक्ति में लग पाते हैं, क्योंकि उनका मन अब बाहरी द्वन्द्वों से विचलित नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पवित्र आचरण ही मनुष्य को मोह से मुक्त कर सच्ची भक्ति की ओर ले जाता है।

**श्लोक संख्या: 7.29**

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ 29 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

जो पुरुष बुढ़ापे और मृत्यु से छूटने के लिए मेरा आश्रय लेकर प्रयत्न करते हैं, वे उस ब्रह्म को, संपूर्ण अध्यात्म को और संपूर्ण कर्म को जानते हैं।

**सरल व्याख्या:**

जो साधक इस नश्वर शरीर के बंधनों (जन्म-मृत्यु) से मुक्त होना चाहते हैं और परमात्मा को अपना सहारा बना लेते हैं, उन्हें वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। वे समझ जाते हैं कि 'ब्रह्म' क्या है, 'आत्मा' क्या है और 'कर्म' का रहस्य क्या है। उनकी दृष्टि पूर्ण हो जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की शरण में आने पर मनुष्य को जीवन के सभी रहस्यों का बोध हो जाता है।

**श्लोक संख्या: 7.30**

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ 30 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

जो पुरुष अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ के सहित मुझको जानते हैं, वे युक्त चित्त वाले पुरुष अंत समय में भी मुझको ही जानते हैं।

**सरल व्याख्या:**

जो साधक संसार के भौतिक स्वरूप (अधिभूत), देवताओं की शक्तियों (अधिदैव) और समस्त कर्म-यज्ञों (अधियज्ञ) के भीतर केवल परमात्मा को ही व्याप्त देखते हैं, उनका मन हमेशा ईश्वर में टिका रहता है। ऐसे महापुरुष मृत्यु के समय भी व्याकुल नहीं होते और शांतिपूर्वक परमात्मा में ही विलीन हो जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन भर का अभ्यास ही मृत्यु के अंतिम क्षणों में परमात्मा की स्मृति को सुरक्षित रखता है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥



---

अध्याय **8**: अक्षरब्रह्मयोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 8.01

अर्जुन उवाच ।

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।

अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे पुरुषोत्तम! वह 'ब्रह्म' क्या है? 'अध्यात्म' क्या है? 'कर्म' क्या है? 'अधिभूत' नाम से क्या कहा गया है और 'अधिदैव' किसको कहा जाता है?

### सरल व्याख्या:

अर्जुन भगवान से उन सात शब्दों की व्याख्या पूछ रहे हैं जो जीवन और मृत्यु के रहस्य से जुड़े हैं। वे जानना चाहते हैं कि उस परम सत्ता, जीवात्मा, सृष्टि के कर्मों और भौतिक जगत के पीछे का वास्तविक आधार क्या है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... तत्वज्ञान को समझने के लिए शब्दों के वास्तविक और आध्यात्मिक अर्थों को जानना आवश्यक है।

## श्लोक संख्या: 8.02

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।

प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

हे मधुसूदन! यहाँ 'अधियज्ञ' कौन है और वह इस शरीर में कैसे स्थित है? तथा युक्त चित्त वाले पुरुषों द्वारा अंत समय में आप किस प्रकार जानने में आते हैं?

### सरल व्याख्या:

अर्जुन पूछते हैं कि इस शरीर के भीतर होने वाली यज्ञ रूपी क्रियाओं का स्वामी कौन है? और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न—मृत्यु के समय, जब इन्द्रियाँ और मन साथ छोड़ रहे होते हैं, तब मनुष्य किस प्रकार परमात्मा को याद रख सकता है?

यह श्लोक हमें बताता है कि... मृत्यु के समय की चेतना ही जीवन भर की साधना का अंतिम परिणाम होती है।

### श्लोक संख्या: 8.03

श्रीभगवानुवाच ।

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ 03 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्री भगवान् बोले—परम अक्षर (जिसका कभी विनाश न हो) 'ब्रह्म' है, अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा 'अध्यात्म' नाम से कहा जाता है और भूतों के भावों को उत्पन्न करने वाला जो त्याग (सृष्टि की रचना आदि) है, वह 'कर्म' नाम से कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् उत्तर देते हैं: 1. वह अविनाशी तत्त्व ब्रह्म है। 2. शरीर के भीतर जो 'स्व' (आत्मा) है, वही अध्यात्म है। 3. जीव की उत्पत्ति और विकास के लिए जो भी विसर्ग (प्रयास या त्याग) होता है, वह कर्म है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ब्रह्म अविनाशी है और आत्मा उसी का अंश है, जबकि कर्म सृष्टि के चक्र को चलाने वाली शक्ति है।

### श्लोक संख्या: 8.04

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभूतां वर ॥ 04 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन! उत्पत्ति-विनाश वाला स्वभाव 'अधिभूत' है, हिरण्यमय पुरुष (ब्रह्मा) 'अधिदैव' है और इस शरीर में मैं (वासुदेव) ही 'अधियज्ञ' हूँ।

#### सरल व्याख्या:

संसार की हर नाशवान वस्तु 'अधिभूत' है। सृष्टि का संचालन करने वाली दैवीय शक्तियाँ 'अधिदैव' हैं। और इस शरीर के भीतर जो अंतर्दामी रूप में बैठकर सब कर्मों और यज्ञों का फल देने वाला साक्षी है, वह साक्षात् भगवान् ही हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भौतिक जगत, दैवीय शक्तियाँ और हमारे भीतर का साक्षी—सब एक ही परमात्मा के विभिन्न विस्तार हैं।

### श्लोक संख्या: 8.05

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ 05 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष अंत समय में भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूप को प्राप्त होता है— इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

यह मृत्यु के समय की महानतम मुक्ति का सूत्र है। शरीर छोड़ते वक्त मनुष्य के मन में जो विचार होता है, वही उसकी अगली गति तय करता है। यदि अंतिम क्षण में केवल परमात्मा का स्मरण रहे, तो वह व्यक्ति पुनर्जन्म के चक्र से छूटकर सीधे परमधाम को प्राप्त होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अंतिम स्मृति ही मनुष्य की शाश्वत गति का निर्धारण करती है।

### श्लोक संख्या: 8.06

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।

तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावं भावितः ॥ 06 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! यह मनुष्य अंत समय में जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है, वह उस-उस को ही प्राप्त होता है; क्योंकि वह सदा उसी भाव से भावित रहा है।

#### सरल व्याख्या:

अंतिम स्मृति कोई आकस्मिक घटना नहीं है। जीवन भर हम जिन विचारों में डूबे रहते हैं, वही विचार मृत्यु के समय उभर कर आते हैं। यदि जीवन भर संसार का चिंतन किया, तो अंत में भी वही याद आएगा और उसी के अनुसार अगला जन्म मिलेगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन भर की मानसिक स्थिति ही मृत्यु के समय के चिंतन का आधार बनती है।



### श्लोक संख्या: 8.07

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च |  
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् || 07 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय में निरंतर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पित मन-बुद्धि वाला होकर तू निस्संदेह मुझको ही प्राप्त होगा।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता का एक अत्यंत व्यवहारिक उपदेश है। भगवान यह नहीं कह रहे कि सब छोड़कर बैठ जाओ। वे कहते हैं: अपना कर्तव्य (युद्ध) करो, लेकिन मन से मेरा स्मरण (अनुस्मरण) करते रहो। जब हाथ काम में और मन भगवान में लगा हो, तो जीवन स्वयं ही योग बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य पालन और प्रभु-स्मरण का समन्वय ही सफलता और मुक्ति का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 8.08

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना |  
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् || 08 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त, अन्यत्र न जाने वाले चित्त से निरंतर चिन्तन करता हुआ मनुष्य परम प्रकाशमय दिव्य पुरुष (परमात्मा) को ही प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

मन को एकाग्र करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। जब साधक बार-बार अपने मन को भटकने से रोककर परमात्मा में टिकाता है, तो उसकी चेतना दिव्य हो जाती है। ऐसा अभ्यास करने वाला अंततः उसी दिव्य सत्ता में लीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एकाग्रता और निरंतर अभ्यास ही ईश्वरीय साक्षात्कार की कुँजी है।

### श्लोक संख्या: 8.09

कविं पुराणमनुशासितार-मणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ 09 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सबके धाता-विधाता, अचिन्त्य रूप, सूर्य के समान प्रकाशमान और अज्ञान से परे रहने वाले परमात्मा का स्मरण करता है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करने के लिए आठ विशेषण दिए गए हैं। वे सबसे पुराने (पुराण), सूक्ष्म (अणोरणीयांस), और अंधकार से परे प्रकाश स्वरूप हैं। ऐसे विराट और परम कृपालु देव का ध्यान करने से बुद्धि पवित्र होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की महिमा का चिंतन करने से मन सांसारिक तुच्छताओं से ऊपर उठ जाता है।

### श्लोक संख्या: 8.10

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।

भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्-स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वह भक्ति युक्त पुरुष अंत समय में भी योगबल के द्वारा भृकुटी के मध्य में प्राणों को अच्छी प्रकार स्थापित करके, निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ प्राण त्यागने की योगिक विधि का संकेत है। जिसने जीवन भर योग का अभ्यास किया है, वह मृत्यु के समय अपने प्राणों को आज्ञा चक्र (भृकुटी के बीच) में स्थित कर लेता है। भक्ति और योगबल का यह संगम उसे सीधे परमात्मा के धाम पहुँचा देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... योग और भक्ति का पूर्ण समन्वय ही जीवन की अंतिम विजय है।

### श्लोक संख्या: 8.11

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वेद के ज्ञाता जिसे 'अक्षर' कहते हैं, आसक्ति रहित यत्नशील संन्यासी जिसमें प्रवेश करते हैं और जिसकी इच्छा करने वाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उस पद (लक्ष्य) को मैं तेरे लिए संक्षेप में कहूँगा।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् उस परम पद की महिमा बता रहे हैं जिसे पाने के लिए ऋषि-मुनि कठोर तप और संयम का पालन करते हैं। वह अवस्था 'अक्षर' है, जिसका कभी क्षय नहीं होता। इस मार्ग पर चलने के लिए इन्द्रियों का संयम और ईश्वर की प्राप्ति की तीव्र इच्छा अनिवार्य है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संयम और तीव्र वैराग्य की आवश्यकता होती है।

### श्लोक संख्या: 8.12 - 8.13

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।

मूर्धन्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥ 12 ॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सब द्वारों (इन्द्रियों) को रोककर, मन को हृदय में स्थिर करके, अपने प्राणों को मस्तक (भृकुटी) में स्थापित करके योग-धारणा में स्थित होकर; जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ शरीर त्याग कर जाता है, वह परम गति को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ शरीर छोड़ने की उच्चतम योगिक विधि बताई गई है। बाहरी जगत से नाता तोड़कर (इन्द्रिय संयम), मन को भीतर समेटकर और 'ॐ' के नाद में लीन होकर जो प्राण त्यागता है, वह सीधा परमात्मा में विलीन हो जाता है। 'ॐ' परमात्मा का ही शब्द-स्वरूप है।

ये श्लोक हमें बताते हैं कि... शब्द-ब्रह्म 'ॐ' का जाप और एकाग्रता ही अंत समय में मुक्ति का द्वार खोलती है।

### श्लोक संख्या: 8.14

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

हे पार्थ! जो अनन्य चित्त होकर सदा ही निरंतर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझमें युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ (आसानी से प्राप्त) हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ सबसे सरल मार्ग बताते हैं। जो व्यक्ति दिन-रात, सोते-जागते, हर काम करते हुए केवल परमात्मा को ही याद रखता है, उसके लिए ईश्वर दूर नहीं हैं। कठिन योग क्रियाओं से भी अधिक प्रभावशाली 'निरंतर स्मरण' है। भगवान अपने ऐसे प्रेमी भक्त के वश में हो जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतरता और अनन्य प्रेम ही परमात्मा को पाने का सबसे सुलभ साधन है।

### श्लोक संख्या: 8.15

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

मुझको प्राप्त होकर वे महात्मा पुरुष, जो परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं, इस दुखों के घर और क्षणभंगुर पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते।

#### सरल व्याख्या:

संसार को 'दुःखालय' (दुखों का घर) कहा गया है। यहाँ जो भी जन्म लेता है, उसे कष्ट भोगने ही पड़ते हैं। लेकिन जो परमात्मा के धाम पहुँच जाते हैं, वे इस जन्म-मरण के चक्र से हमेशा के लिए मुक्त हो जाते हैं। उन्हें फिर कभी इस नश्वर संसार में लौटकर नहीं आना पड़ता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मोक्ष का अर्थ है दुखों के चक्र से सदा के लिए छुटकारा पाना।

### श्लोक संख्या: 8.16

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! ब्रह्मलोक से लेकर सभी लोक पुनरावर्ती हैं (अर्थात् वहाँ से वापस लौटना पड़ता है); किन्तु हे कुन्तीपुत्र! मुझको प्राप्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि में जितने भी स्वर्ग या उच्च लोक हैं, वे सब अस्थायी हैं। वहाँ पुण्य खत्म होने पर फिर से पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ता है। केवल परमात्मा का 'परमधाम' ही ऐसा स्थान है जहाँ पहुँचने के बाद फिर कभी पतन नहीं होता। ईश्वर की प्राप्ति ही एकमात्र स्थायी लक्ष्य है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय धाम के अतिरिक्त ब्रह्मांड का हर स्थान परिवर्तनशील और अस्थायी है।

### श्लोक संख्या: 8.17

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्षद्ब्रह्मणो विदुः ।

रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष ब्रह्मा के एक दिन को एक हजार चौकड़ी युगों तक की अवधि वाला और रात्रि को भी एक हजार चौकड़ी युगों तक की अवधि वाली जानते हैं, वे पुरुष काल (समय) के तत्व को जानने वाले हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ समय की विशालता का वर्णन है। ब्रह्मा (सृष्टि के रचयिता) का एक दिन और एक रात मनुष्य के करोड़ों वर्षों के बराबर होती है। जो इस विराट समय चक्र को समझते हैं, वे जानते हैं कि यह पूरी सृष्टि एक बहुत बड़े नाटक की तरह है जिसमें समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... काल की गणना अत्यंत विशाल है और परमात्मा इस काल के भी स्वामी हैं।

### श्लोक संख्या: 8.18

अव्यक्ताद्वयक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे |  
राज्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके || 18 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

ब्रह्मा के दिन के प्रवेश काल में संपूर्ण दृश्य जगत अव्यक्त (ब्रह्मा के सूक्ष्म शरीर) से उत्पन्न होता है और रात्रि के प्रवेश काल में उस अव्यक्त में ही विलीन हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि का बनना और मिटना एक निरंतर प्रक्रिया है। जब ब्रह्मा जागते हैं, तो संसार प्रकट हो जाता है (सृष्टि); और जब वे सोते हैं, तो सब कुछ फिर से सूक्ष्म रूप में सिमट जाता है (प्रलय)। यह चक्र अनादि काल से चल रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... यह जगत कभी प्रकट होता है और कभी छिप जाता है, इसका मूल कारण सूक्ष्म प्रकृति है।

### श्लोक संख्या: 8.19

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयन्ते |  
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे || 19 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! वही यह प्राणी समुदाय बार-बार पैदा होकर, प्रकृति के वश में हुआ, रात्रि के आने पर विलीन हो जाता है और दिन के आने पर फिर से उत्पन्न होता है।

#### सरल व्याख्या:

हम सभी जीव इसी प्रकृति के चक्र में फँसे हुए हैं। अपनी इच्छाओं और कर्मों के कारण हम बार-बार जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक हम ज्ञान के द्वारा इस चक्र को तोड़कर परमात्मा से नहीं जुड़ जाते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अज्ञान के कारण जीव प्रकृति के वश में होकर जन्म-मरण के फेर में पड़ा रहता है।

### श्लोक संख्या: 8.20

परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु उस अव्यक्त (सूक्ष्म प्रकृति) से भी परे जो दूसरा सनातन अव्यक्त भाव (परमात्मा) है, वह संपूर्ण भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

जहाँ यह दृश्य जगत और सूक्ष्म प्रकृति (ब्रह्मा का सूक्ष्म शरीर) प्रलय में मिट जाते हैं, वहाँ एक ऐसी सत्ता भी है जो हमेशा रहती है। वह 'सनातन अव्यक्त' परमात्मा है। जब पूरी सृष्टि समाप्त हो जाती है, तब भी वह सत्ता ज्यों की त्यों बनी रहती है। वही हमारा वास्तविक घर है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही वह एकमात्र सत्य है जो प्रलय के बाद भी शेष रहता है।

### श्लोक संख्या: 8.21

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।

यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो 'अव्यक्त' और 'अक्षर' (अविनाशी) कहा गया है, उसी को परम गति कहते हैं। जिसको प्राप्त होकर मनुष्य वापस (संसार में) नहीं लौटते, वही मेरा परम धाम है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि उनकी सर्वोच्च सत्ता इंद्रियों से परे (अव्यक्त) और कभी नष्ट न होने वाली (अक्षर) है। जीव का अंतिम लक्ष्य इसी अवस्था को पाना है। एक बार जब आत्मा इस ईश्वरीय प्रकाश में विलीन हो जाती है, तो उसे फिर से दुखों भरी इस मृत्युलोक की यात्रा नहीं करनी पड़ती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा का धाम ही वह अंतिम गंतव्य है जहाँ पहुँचने के बाद पुनर्जन्म का भय समाप्त हो जाता है।

## श्लोक संख्या: 8.22

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।  
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ 22 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! वह परम पुरुष (परमात्मा), जिसके अंतर्गत संपूर्ण भूत स्थित हैं और जिससे यह संपूर्ण जगत व्याप्त है, अनन्य भक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

### सरल व्याख्या:

वह ईश्वर, जिसने इस पूरे ब्रह्मांड को अपने भीतर समेटा हुआ है और जो कण-कण में समाया है, उसे केवल 'अनन्य भक्ति' (ऐसी भक्ति जिसमें ईश्वर के सिवा दूसरा कोई लक्ष्य न हो) से ही पाया जा सकता है। न ज्ञान, न कर्म, केवल प्रेमपूर्ण समर्पण ही उन्हें रिझाने का मार्ग है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की सर्वव्यापकता को पहचानने का एकमात्र साधन निष्काम और अनन्य भक्ति है।

## श्लोक संख्या: 8.23

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ।  
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ 23 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन! जिस काल (मार्ग) में शरीर त्याग कर गए हुए योगी वापस न लौटने वाली गति को और जिस मार्ग में गए हुए वापस लौटने वाली गति को प्राप्त होते हैं, उस काल के विषय में मैं तुझे कहूँगा।

### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान् उन दो गुप्त मार्गों का संकेत दे रहे हैं जिनसे जीवात्मा मृत्यु के बाद गमन करती है। एक मार्ग वह है जहाँ से मुक्ति मिलती है और दूसरा वह जहाँ से लौटकर फिर जन्म लेना पड़ता है। 'काल' शब्द यहाँ मार्ग और समय की परिस्थितियों का प्रतीक है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मृत्यु के समय की आंतरिक और बाह्य स्थितियाँ जीवात्मा की अगली यात्रा को प्रभावित करती हैं।



## श्लोक संख्या: 8.24

अग्निज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् |  
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः || 24 ||

### हिन्दी अनुवाद:

अग्नि, ज्योति, दिन, शुक्ल पक्ष और उत्तरायण के छह महीने—इन मार्गों में शरीर त्याग कर गए हुए ब्रह्मवेत्ता (ब्रह्म को जानने वाले) पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

### सरल व्याख्या:

यह 'शुक्ल मार्ग' (प्रकाश का मार्ग) है। अग्नि, प्रकाश और सूर्य की बढ़ती शक्ति का समय (उत्तरायण) ज्ञान का प्रतीक है। जो योगी ज्ञान के प्रकाश में शरीर छोड़ते हैं, वे सीधे परमात्मा में मिल जाते हैं और उन्हें वापस नहीं आना पड़ता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान के प्रकाश में शरीर त्यागने वाले साधक परम पद को प्राप्त होते हैं।

## श्लोक संख्या: 8.25

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् |  
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते || 25 ||

### हिन्दी अनुवाद:

धुआँ, रात्रि, कृष्ण पक्ष और दक्षिणायन के छह महीने—इन मार्गों में शरीर त्याग कर गया हुआ योगी चंद्रमा की ज्योति को प्राप्त होकर (स्वर्ग आदि में सुख भोगकर) वापस लौट आता है।

### सरल व्याख्या:

यह 'कृष्ण मार्ग' (अंधकार का मार्ग) है। धुआँ और रात्रि अज्ञान या सकाम कर्मों के प्रतीक हैं। जो केवल स्वर्ग की इच्छा से शुभ कर्म करते हैं, वे उच्च लोकों में जाते तो हैं, लेकिन पुण्य क्षीण होने पर उन्हें फिर से मनुष्य योनि में जन्म लेना पड़ता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... फल की इच्छा से किए गए कर्म स्थायी मुक्ति नहीं दिला सकते, वे केवल अस्थायी सुख प्रदान करते हैं।

### श्लोक संख्या: 8.26

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।

एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि जगत के ये दो प्रकार के मार्ग—शुक्ल और कृष्ण—शाश्वत माने गए हैं। इनमें से एक (शुक्ल) द्वारा गया हुआ वापस नहीं लौटता और दूसरे (कृष्ण) द्वारा गया हुआ फिर वापस लौट आता है।

#### सरल व्याख्या:

ये दो मार्ग—प्रकाश और अंधकार, ज्ञान और अज्ञान—सृष्टि के प्रारंभ से चले आ रहे हैं। एक मार्ग मुक्ति की ओर ले जाता है और दूसरा जन्म-मरण के फेर की ओर। मनुष्य को स्वयं चुनाव करना होता है कि वह किस मार्ग पर अपनी चेतना को टिकाना चाहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार में केवल दो ही गतियाँ हैं—एक अमरता की ओर और दूसरी पुनर्जन्म की ओर।

### श्लोक संख्या: 8.27

नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ 27 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! इन दोनों मार्गों को तत्व से जानने वाला कोई भी योगी कभी मोहित नहीं होता; इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय में योगयुक्त (परमात्मा में स्थिर) रह।

#### सरल व्याख्या:

जो इन मार्गों के रहस्य को समझ लेता है, वह कभी सांसारिक आकर्षणों में नहीं फँसता। वह जानता है कि असली सुख केवल परमात्मा के 'शुक्ल मार्ग' में है। इसलिए भगवान अर्जुन को निरंतर योग में स्थित रहने की सलाह देते हैं, ताकि अंत समय में चेतना स्वतः प्रकाश की ओर मुड़े।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य के ज्ञान से मोह का नाश होता है और निरंतर अभ्यास ही सुरक्षित यात्रा की गारंटी है।

**श्लोक संख्या: 8.28**

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।

अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम् ॥ 28 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

योगी पुरुष इस रहस्य को तत्व से जानकर वेदों के पढ़ने में, यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो पुण्यफल कहे गए हैं, उन सबको निस्संदेह लांघ जाता है और सनातन परम पद को प्राप्त होता है।

**सरल व्याख्या:**

अध्याय का उपसंहार करते हुए भगवान कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने, दान देने या तप करने से जो भी पुण्य मिलता है, वह सब योग के फल के सामने छोटा है। योगी को वह सब तो मिलता ही है, पर वह उनसे भी ऊपर उठकर उस आदि पुरुष परमात्मा को पा लेता है, जहाँ से सृष्टि शुरू हुई थी।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की प्राप्ति का अनुभव समस्त धार्मिक क्रियाओं के फलों से कहीं अधिक महान है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



## अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 9.1

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥ 1 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! चूँकि तू दोषदृष्टि रहित (असूया रहित) है, इसलिए मैं तुझे यह अत्यंत गोपनीय 'विज्ञान सहित ज्ञान' कहूँगा, जिसे जानकर तू संसार रूपी अशुभ (दुखों) से मुक्त हो जाएगा।

### सरल व्याख्या:

भगवान् कहते हैं कि जिसके मन में गुरु या ईश्वर के प्रति ईर्ष्या या दोष देखने की वृत्ति नहीं होती, वही इस परम रहस्य का अधिकारी है। यहाँ 'ज्ञान' का अर्थ है परमात्मा का अनुभव और 'विज्ञान' का अर्थ है उस अनुभव को जीवन के हर पक्ष में उतारना। इसे जानने के बाद मनुष्य जन्म-मरण के कष्टों से सदा के लिए छूट जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पात्रता का पहला लक्षण दोषदृष्टि का अभाव है, तभी परमात्मा का गूढ़तम रहस्य प्रकट होता है।

## श्लोक संख्या: 9.2

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ 2 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

यह विद्या सब विद्याओं का राजा है, सब गोपनीयों का भी गोपनीय है, परम पवित्र है, उत्तम है, प्रत्यक्ष फल देने वाली है, धर्मयुक्त है, करने में अत्यंत सुखद और अविनाशी है।

### सरल व्याख्या:

भगवान् इस ज्ञान की महिमा गाते हुए कहते हैं कि यह 'राजविद्या' है—अर्थात् श्रेष्ठों की विद्या। यह इतनी पवित्र है कि क्षण भर में पापों को भस्म कर देती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका अनुभव 'प्रत्यक्ष' होता है (जैसे भोजन करने वाले को तृप्ति स्वयं अनुभव होती है) और इस मार्ग पर चलना बोझ नहीं, बल्कि परम सुखद है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अध्यात्म का मार्ग कोई कठिन या नीरस प्रक्रिया नहीं, बल्कि आनंददायक और सीधा अनुभव देने वाला विज्ञान है।

### श्लोक संख्या: 9.3

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्मनि ॥ 3 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे परंतप! इस धर्म (परमात्म प्राप्ति के मार्ग) पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर, मृत्यु रूपी संसार चक्र के मार्ग में ही भटकते रहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रद्धा वह बीज है जिसके बिना ज्ञान का वृक्ष नहीं उगता। भगवान स्पष्ट कहते हैं कि जो इस ईश्वरीय मार्ग पर विश्वास नहीं करते, वे बार-बार जन्म लेते हैं और मरते हैं। वे उस परम पद को चूक जाते हैं जो उनका अपना स्वरूप है, और माया के चक्कर में फंसे रहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा के अभाव में मनुष्य हाथ आए पारसमणि (परमात्मा) को खोकर पुनः दुखों के सागर में गिर जाता है।

### श्लोक संख्या: 9.4

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ 4 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मुझ निराकार परमात्मा से यह संपूर्ण जगत व्याप्त है। समस्त प्राणी मुझमें स्थित हैं, किंतु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान अपनी सर्वव्यापकता का रहस्य समझा रहे हैं। जैसे बर्फ जल में ही बनी है और जल में ही स्थित है, वैसे ही पूरा जगत ईश्वर में है। किंतु ईश्वर संसार की सीमाओं में बँधा नहीं है। वह संसार को सहारा तो देता है, पर संसार के दोषों से अछूता (असंग) रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर ही इस जगत का आधार है, वह सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी संसार से ऊपर और स्वतंत्र है।

### श्लोक संख्या: 9.5

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ 5 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और वे सब भूत (प्राणी) मुझमें स्थित नहीं हैं; मेरे इस ईश्वरीय योग की शक्ति को देख! मैं भूतों का धारण-पोषण करने वाला और उन्हें उत्पन्न करने वाला होकर भी स्वयं उन भूतों में स्थित नहीं हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह श्लोक पहले वाले श्लोक का गहरा विरोधाभास लगता है, पर यह 'ऐश्वर्य योग' है। जैसे आकाश में बादल दिखते हैं, पर बादल हटने पर आकाश ज्यों का त्यों रहता है (बादल आकाश को छू नहीं पाते), वैसे ही संसार परमात्मा की माया का खेल है। वह सबको पालने वाला है, पर उसे कोई विकार छू नहीं सकता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा जगत का कारण और पालनकर्ता होकर भी पूर्णतः निर्लेप और अलिप्त रहता है।

### श्लोक संख्या: 9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ 6 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जैसे सब जगह विचरने वाली महान वायु सदैव आकाश में ही स्थित रहती है, वैसे ही समझ कि समस्त प्राणी मुझमें ही स्थित हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान ने यहाँ एक सुंदर उदाहरण दिया है। वायु बहुत शक्तिशाली है और हर जगह चलती है, पर उसका आधार हमेशा 'आकाश' ही रहता है। बिना आकाश के वायु टिक नहीं सकती। वैसे ही यह संसार और हम सब परमात्मा रूपी आकाश में स्थित हैं, पर परमात्मा हम सबसे निराला और विशाल है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी सत्ता ईश्वर के बिना संभव नहीं है, जैसे वायु की सत्ता आकाश के बिना संभव नहीं।



### श्लोक संख्या: 9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।  
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादो विसृजाम्यहम् ॥ 7 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! कल्प के अंत में समस्त प्राणी मेरी प्रकृति (मूल कारण) को प्राप्त होते हैं और कल्प के आदि में मैं उन्हें फिर से उत्पन्न करता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि का चक्र चलता रहता है। प्रलय आने पर सब कुछ ईश्वर की शक्ति (प्रकृति) में सिमट जाता है, जैसे बीज में पूरा पेड़ समा जाता है। और जब सृजन का समय आता है, तो वही बीज (संस्कारों के अनुसार) फिर से अंकुरित होकर जीव रूप में प्रकट हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जन्म और प्रलय परमात्मा की प्रकृति के चक्र मात्र हैं, जिसमें आत्माएं अपने कर्मों के अनुसार आती-जाती रहती हैं।

### श्लोक संख्या: 9.8

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।  
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ 8 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अपनी प्रकृति को स्वीकार करके, मैं स्वभाव के वश में हुए इस संपूर्ण प्राणी-समुदाय को उनके कर्मों के अनुसार बार-बार रचता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान 'अवशम्' (विवश) शब्द का प्रयोग करते हैं। जीव अपनी प्रकृति, आदतों और पुराने कर्मों के वश में है। भगवान केवल अपनी शक्ति से उन्हें प्रकट कर देते हैं, पर जीव अपने स्वभाव के कारण ही बार-बार जन्म लेने को मजबूर होता है। यह सब प्रकृति के नियमों के तहत स्वचालित रूप से होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीव अपने स्वभाव और कर्मों के कारण जन्म लेने के लिए विवश है, ईश्वर तो केवल सत्ता प्रदान करता है।

### श्लोक संख्या: 9.9

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।  
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ 9 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! उन कर्मों में आसक्ति न होने के कारण और उदासीन (तटस्थ) की तरह स्थित रहने के कारण, वे कर्म मुझे नहीं बाँधते।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि की इतनी बड़ी रचना और विनाश करने के बाद भी भगवान कर्मों के बंधन में नहीं फँसते। क्यों? क्योंकि वे इसे 'उदासीन' (जैसे कोई नाटक देख रहा हो) भाव से करते हैं। उन्हें न फल की इच्छा है, न अहंकार। यह मनुष्य के लिए भी एक सीख है—अनासक्त रहकर कर्म करने से बंधन नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म नहीं, बल्कि कर्तापन का भाव और आसक्ति ही मनुष्य को बाँधती है; परमात्मा इन दोनों से मुक्त है।

### श्लोक संख्या: 9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।  
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कौन्तेय! मेरी अध्यक्षता (देखरेख) में प्रकृति ही इस चर-अचर सहित संपूर्ण जगत् को रचती है। इसी कारण से यह संसार-चक्र घूम रहा है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ स्पष्ट करते हैं कि वे स्वयं हाथ से कुछ नहीं बनाते। उनकी केवल 'उपस्थिति' मात्र से प्रकृति सक्रिय हो जाती है। जैसे सूर्य के उदय होने मात्र से फूल खिलने लगते हैं और लोग काम पर लग जाते हैं (सूर्य कुछ करता नहीं), वैसे ही परमात्मा की अध्यक्षता में प्रकृति सृष्टि का कार्य करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा परम सत्ता है जिसकी देखरेख में प्रकृति ही समस्त ब्रह्मांड का संचालन करती है।

### श्लोक संख्या: 9.11

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।  
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मेरे परम भाव को (कि मैं संपूर्ण भूतों का महान ईश्वर हूँ) न जानने वाले मूर्ख लोग, मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा की अवज्ञा करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब ईश्वर लोक कल्याण के लिए मानवीय रूप में आता है, तो अज्ञानी लोग उन्हें केवल एक साधारण मनुष्य समझ लेते हैं। वे उस अनंत शक्ति को नहीं देख पाते जो उस देह के भीतर छिपी है। जैसे कोई राख को देख कर उसके भीतर की छिपी अग्नि को भूल जाए, वैसे ही वे उनके 'महेश्वर' रूप को पहचान नहीं पाते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की पहचान बाहरी शरीर से नहीं, बल्कि उनके आंतरिक दिव्य भाव और तत्व से होती है।

### श्लोक संख्या: 9.12

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।  
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो लोग मोहनी प्रकृति (राक्षसी और आसुरी स्वभाव) के आश्रित हैं, उनकी आशाएं व्यर्थ हैं, उनके कर्म निष्फल हैं और उनका ज्ञान भी व्यर्थ (भ्रमित) है।

#### सरल व्याख्या:

जिनका स्वभाव आसुरी है (जो केवल भोग, स्वार्थ और अहंकार में जीते हैं), वे चाहे कितनी भी बड़ी योजनाएँ बना लें या पुण्य का ढोंग कर लें, अंत में उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता। उनकी बुद्धि भ्रमित रहती है और वे जीवन के असली लक्ष्य 'परमात्मा' से कोसों दूर भटक जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा से विमुख होकर किए गए सभी प्रयास और कामनाएं अंततः शून्य और निष्फल सिद्ध होती हैं।

### श्लोक संख्या: 9.13

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु हे कुन्तीपुत्र! जो दैवी प्रकृति (दिव्य स्वभाव) के आश्रित महात्मा जन हैं, वे मुझे समस्त भूतों का आदि कारण और अविनाशी जानकर अनन्य मन से भजते हैं।

#### सरल व्याख्या:

आसुरी लोगों के विपरीत, जिनके हृदय में दया, सत्य और भक्ति है (महात्मा), वे जानते हैं कि परमात्मा ही इस जगत का मूल है। उनका मन इधर-उधर नहीं भटकता। वे पूरी निष्ठा के साथ ईश्वर में ही रमे रहते हैं क्योंकि उन्हें सत्य का बोध हो चुका है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दैवी गुणों से संपन्न व्यक्ति ही परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर उनमें लीन हो पाता है।

### श्लोक संख्या: 9.14

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वे दृढ़ निश्चय वाले भक्त निरंतर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए, मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए और मुझे बार-बार प्रणाम करते हुए निरंतर मुझसे जुड़कर मेरी उपासना करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

सच्ची भक्ति केवल एकांत में बैठने का नाम नहीं है। महात्मा जन हर पल—उठते, बैठते, कर्म करते हुए—ईश्वर को याद रखते हैं। उनका संकल्प अटूट होता है और वे विनम्रता के साथ (प्रणाम करते हुए) अपनी साधना में लगे रहते हैं। 'नित्ययुक्त' होने का अर्थ है ईश्वर से कभी न टूटने वाला संबंध जोड़ना।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर स्मरण और दृढ़ संकल्प ही परमात्मा को प्राप्त करने की मुख्य सीढ़ी है।

### श्लोक संख्या: 9.15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते |  
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

दूसरे कितने ही भक्त ज्ञानयज्ञ के द्वारा मुझे सर्वस्वरूप परमात्मा की उपासना करते हुए, मुझे एकत्व भाव से (अद्वैत), अलग-अलग भाव से (द्वैत) या अनेक रूपों में भजते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ विभिन्न साधनाओं को मान्यता देते हैं। कुछ भक्त उन्हें स्वयं का ही स्वरूप (एकत्व) मानते हैं, कुछ स्वामी-सेवक का भाव रखते हैं, और कुछ उन्हें संसार के अनेक रूपों में (विश्वरूप) देखते हैं। भाव चाहे जो हो, यदि केंद्र में ईश्वर है, तो वह ज्ञानयज्ञ ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... उपासना की पद्धतियाँ अनेक हो सकती हैं, लेकिन उन सबका लक्ष्य एक ही 'परमात्मा' है।

### श्लोक संख्या: 9.16

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् |  
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

क्रतु (वैदिक कर्म) मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा (पितरों को दिया जाने वाला अन्न) मैं हूँ, औषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घी मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवन की क्रिया भी मैं ही हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान अपनी सर्वव्यापकता को कर्मकांड के प्रतीकों से समझा रहे हैं। पूजा की सामग्री से लेकर पूजा करने वाले और पूजा की अग्नि तक, सब कुछ कृष्ण (ब्रह्म) का ही विस्तार है। कुछ भी उनसे अलग नहीं है। जहाँ साधक हर क्रिया में केवल परमात्मा को देखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... धार्मिक अनुष्ठान की प्रत्येक वस्तु और क्रिया साक्षात् परमात्मा का ही रूप है।

### श्लोक संख्या: 9.17

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

वेद्यं पवित्रमोकार ऋक्साम यजुर्वेद च ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस संपूर्ण जगत का धाता (धारण करने वाला), पिता, माता, पितामह (दादा), जानने योग्य तत्व, पवित्र ओंकार तथा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ।

#### सरल व्याख्या:

संसार के सारे संबंध ईश्वर से ही निकले हैं। वह हमारा सृजनहार (पिता-माता) भी है और रक्षक (धाता) भी। ज्ञान के सभी मार्ग—चाहे वे वेद हों या पवित्र शब्द 'ॐ'—सब अंततः परमात्मा तक ही पहुँचाते हैं। वह आदि पुरुष है जिससे सब कुछ उत्पन्न हुआ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर ही हमारा परम संबंधी है और समस्त ज्ञान का अंतिम सार भी वही है।

### श्लोक संख्या: 9.18

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं ही सबकी परम गति, भरण-पोषण करने वाला, स्वामी, साक्षी, निवास स्थान, शरण लेने योग्य, निस्वार्थ प्रेमी (मित्र), उत्पत्ति और प्रलय का आधार तथा अविनाशी बीज हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि जीव जहाँ पहुँचने की चेष्टा कर रहा है (गति), वह लक्ष्य मैं हूँ। मैं सब देख रहा हूँ (साक्षी) और सबका भला चाहने वाला मित्र हूँ। प्रलय के समय संसार जिसमें सिमट जाता है और जहाँ से दोबारा निकलता है, वह अविनाशी बीज भी मैं ही हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन के हर मोड़ पर, जन्म से लेकर मोक्ष तक, परमात्मा ही हमारा एकमात्र आधार और रक्षक है।

### श्लोक संख्या: 9.19

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! मैं ही सूर्य रूप में तपता हूँ, मैं ही वर्षा को रोकता हूँ और वर्षा करता हूँ, मैं ही अमृत और मृत्यु हूँ तथा सत् (विद्यमान) और असत् (अविद्यमान) भी मैं ही हूँ।

#### सरल व्याख्या:

प्रकृति की हर हलचल परमात्मा की शक्ति से है। धूप और बारिश उन्हीं के विधान हैं। इतना ही नहीं, जो 'सत्' (नित्य आत्मा) है और जो 'असत्' (नश्वर शरीर/माया) है, वह सब उन्हीं का प्रकाश है। यहाँ तक कि अमरता और मृत्यु भी उनके ही दो पक्ष हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सृजित और असृजित, दृश्य और अदृश्य—सृष्टि की हर परस्पर विरोधी अवस्था परमात्मा का ही विस्तार है।

### श्लोक संख्या: 9.20

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम कर्मों को करने वाले, सोमरस पीने वाले और पापों से शुद्ध हुए पुरुष मुझे यज्ञों के द्वारा पूजकर स्वर्ग की प्रार्थना करते हैं। वे अपने पुण्यों के फलस्वरूप इन्द्रलोक को प्राप्त होकर स्वर्ग के दिव्य देवताओं के भोग भोगते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान उन लोगों की चर्चा कर रहे हैं जो धार्मिक तो हैं, पर जिनकी नीयत 'स्वर्ग' के सुखों की है। वे शुद्ध हृदय से पुण्य करते हैं और उन्हें स्वर्ग भी मिलता है। पर यह 'अनन्य भक्ति' नहीं है। वे केवल सुखों का व्यापार कर रहे हैं। उन्हें दिव्य भोग तो मिलते हैं, पर स्थायी शांति (मोक्ष) नहीं मिलती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सकाम भक्ति से स्वर्ग के सुख तो मिल सकते हैं, लेकिन पुनर्जन्म का चक्र समाप्त नहीं होता।

### श्लोक संख्या: 9.21

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वे उस विशाल स्वर्गलोक के सुखों को भोगकर, पुण्य क्षीण होने पर पुनः मृत्युलोक (संसार) में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार, केवल वेदों में बताए गए सकाम कर्मों का आश्रय लेने वाले और भोगों की कामना करने वाले लोग बार-बार आने-जाने (जन्म-मरण) को प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

स्वर्ग का सुख भी स्थायी नहीं है। यह वैसा ही है जैसे किसी होटल में रहने के लिए आपके पास जब तक धन (पुण्य) है, तब तक आप वहाँ रह सकते हैं, फिर वापस आना ही पड़ता है। जो लोग केवल स्वर्ग या सुख की इच्छा से शुभ कर्म करते हैं, वे मुक्ति नहीं पाते, बल्कि जन्म-मृत्यु के चक्र में ही घूमते रहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक या स्वर्गीय सुखों की इच्छा करना जीवात्मा को बार-बार बंधन में डालता है।

### श्लोक संख्या: 9.22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो अनन्य प्रेमी भक्त मेरा चिंतन करते हुए मुझ परमेश्वर को ही निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य निरंतर मुझमें स्थित रहने वाले पुरुषों का 'योग-क्षेम' (योग = जो प्राप्त नहीं है उसे दिलाना, क्षेम = जो प्राप्त है उसकी रक्षा करना) मैं स्वयं वहन करता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता का सबसे बड़ा आश्वासन है। भगवान कहते हैं कि जो सब कुछ छोड़कर पूरी तरह मुझ पर आश्रित हो जाता है, उसकी हर जिम्मेदारी मेरी है। उसे अपनी जरूरतों की चिंता करने की आवश्यकता नहीं रहती; उसके आध्यात्मिक और भौतिक जीवन की व्यवस्था परमात्मा स्वयं करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण समर्पण करने वाले भक्त की सुरक्षा और आवश्यकताओं का उत्तरदायित्व साक्षात् ईश्वर का होता है।



### श्लोक संख्या: 9.23

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।  
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! जो भक्त श्रद्धा से युक्त होकर अन्य देवताओं को भजते हैं, वे भी वास्तव में मुझे ही भजते हैं, किंतु उनका वह पूजन 'अविधिपूर्वक' (अज्ञानवश) है।

#### सरल व्याख्या:

जैसे एक ही राजा के अलग-अलग विभागों के कर्मचारी होते हैं, वैसे ही अन्य देवी-देवता भी उसी एक परमात्मा की विभूतियाँ हैं। जो लोग उन्हें अलग मानकर पूजते हैं, उनका भाव तो मुझ तक पहुँचता है, पर वे सत्य को पूरी तरह नहीं जानते। वे मूल वृक्ष की जड़ में पानी देने के बजाय टहनियों को सींच रहे होते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समस्त श्रद्धा का अंतिम लक्ष्य एक ही परमात्मा है, भले ही उसे अलग-अलग नामों से पुकारा जाए।

### श्लोक संख्या: 9.24

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।  
न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि समस्त यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ; परंतु वे मुझे तत्व से (असली रूप में) नहीं जानते, इसीलिए वे गिरते हैं (अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं)।

#### सरल व्याख्या:

संसार में की जाने वाली किसी भी प्रकार की उपासना का फल देने वाला और उसे स्वीकार करने वाला केवल परमात्मा है। जो लोग ईश्वर को केवल सीमाओं में बाँधकर देखते हैं और उनकी सर्वव्यापकता को नहीं समझते, वे सत्य से दूर रह जाते हैं और बार-बार संसार में भटकते रहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होना ही मनुष्य के अधःपतन और पुनर्जन्म का कारण है।

### श्लोक संख्या: 9.25

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥ 25 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मुझको पूजने वाले भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

इंसान जैसी श्रद्धा रखता है और जिसकी साधना करता है, वैसा ही बन जाता है और अंत में उसी स्थान पर पहुँचता है। यदि लक्ष्य छोटा है, तो परिणाम भी छोटा होगा। लेकिन यदि लक्ष्य साक्षात् परमात्मा है, तो साधक को परमात्मा की ही प्राप्ति होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी गति हमारे लक्ष्य और श्रद्धा की दिशा पर निर्भर करती है।

### श्लोक संख्या: 9.26

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्रमि प्रयतात्मनः ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से एक पत्ता, एक फूल, एक फल या जल भी अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि वाले निष्काम भक्त का वह प्रेमपूर्वक भेंट किया हुआ उपहार मैं ग्रहण करता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा को बड़ी-बड़ी वस्तुओं या धन-दौलत की आवश्यकता नहीं है। वे केवल भाव के भूखे हैं। यदि कोई बहुत गरीब भी हो और केवल श्रद्धा से जल का एक घूँट भी चढ़ा दे, तो भगवान उसे बड़े चाव से स्वीकार करते हैं। महत्वपूर्ण यह नहीं है कि 'क्या' चढ़ाया गया, बल्कि 'किस भाव से' चढ़ाया गया।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की भक्ति में सरलता और प्रेम ही सबसे बड़ी सामग्री है।

### श्लोक संख्या: 9.27

यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।  
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ 27 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! तू जो भी कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो भी तप करता है, वह सब मुझे अर्पण कर दे।

#### सरल व्याख्या:

भक्ति के लिए संसार छोड़ने की जरूरत नहीं है। भगवान कहते हैं कि तुम अपनी दिनचर्या के हर कार्य को पूजा बना दो। जो भी करो, यह सोचकर करो कि "यह प्रभु के लिए है"। जब कर्म ईश्वर को समर्पित हो जाता है, तो वह बंधन नहीं बनता, बल्कि मुक्ति का द्वार बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हर कर्म को परमात्मा को समर्पित कर देना ही सर्वश्रेष्ठ योग है।

### श्लोक संख्या: 9.28

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।  
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ 28 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस प्रकार सब कुछ मुझे अर्पण करने से तू शुभ और अशुभ फल देने वाले कर्म-बन्धनों से मुक्त हो जाएगा। ऐसे संन्यास योग में स्थित हुआ तू मुक्त होकर मुझे ही प्राप्त होगा।

#### सरल व्याख्या:

जब हम कर्म के फल पर अपना अधिकार छोड़ देते हैं, तो कर्म के अच्छे या बुरे परिणाम हमें नहीं चिपकते। यह 'अर्पण' ही असली संन्यास है। ऐसी मानसिक स्थिति वाला व्यक्ति संसार में रहते हुए भी मुक्त है और अंततः परमात्मा में ही समा जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समर्पण के माध्यम से कर्मों के बोझ से मुक्ति और परमात्मा की प्राप्ति संभव है।

### श्लोक संख्या: 9.29

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् || 29 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं समस्त भूतों में समान रूप से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न ही प्रिय; किंतु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं उनमें (प्रकट) हूँ।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा सूरज की रोशनी की तरह हैं जो सबके लिए बराबर है। सूर्य किसी से भेदभाव नहीं करता, लेकिन जो खिड़की खोलता है, उजाला उसी के घर में होता है। वैसे ही, भगवान का किसी से बैर नहीं है, पर जो भक्ति करता है, उसके हृदय में परमात्मा का अनुभव विशेष रूप से होने लगता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर पक्षपाती नहीं हैं; भक्त और भगवान का संबंध केवल प्रेम और सघनता का है।

### श्लोक संख्या: 9.30

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः || 30 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि कोई अत्यंत दुराचारी भी अनन्य भाव से मुझे भजता है, तो उसे साधु (सज्जन) ही मानना चाहिए; क्योंकि उसने निश्चय तो सही कर लिया है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान की अपार करुणा दिखाई देती है। वे कहते हैं कि किसी का अतीत कितना भी बुरा क्यों न हो, अगर आज उसने सच्चा निश्चय कर लिया है कि "मुझे केवल ईश्वर की ओर चलना है", तो वह पवित्र हो चुका है। उसका 'निश्चय' ही उसकी सबसे बड़ी पूंजी है और वहीं से उसके सुधार की यात्रा शुरू हो जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की भक्ति का द्वार हर किसी के लिए खुला है, बशर्ते संकल्प दृढ़ और सच्चा हो।

### श्लोक संख्या: 9.31

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति |  
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति || 31 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे कुन्तीपुत्र! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन को आश्वस्त करते हैं कि जैसे ही कोई अपना मन पूरी तरह ईश्वर को अर्पित करता है, उसके भीतर के विकार मिटने लगते हैं और वह धर्म के मार्ग पर दृढ़ हो जाता है। भगवान् यहाँ एक महान् प्रतिज्ञा (गारंटी) लेते हैं कि जो एक बार उनकी शरण में आ गया, उसका पतन कभी नहीं हो सकता; वे स्वयं उसकी रक्षा करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का प्रेम और शरण मनुष्य के चरित्र को बदल देते हैं और उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान करते हैं।

### श्लोक संख्या: 9.32

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः |  
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् || 32 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो लोग नीच योनि वाले हों या स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र—कोई भी क्यों न हों, वे भी मेरी शरण होकर परम गति (मोक्ष) को ही प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा के दरबार में जाति, लिंग या सामाजिक स्तर का कोई भेदभाव नहीं है। 'पापयोनि' का अर्थ यहाँ उन संस्कारों से है जो जीव को तामसिक प्रवृत्तियों में बाँधे रखते हैं। भगवान् स्पष्ट करते हैं कि भक्ति का मार्ग सबके लिए समान रूप से खुला है। जो भी अनन्य भाव से शरण लेगा, उसे वही सर्वोच्च पद मिलेगा जो किसी ऋषि या मुनि को मिलता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अध्यात्म में पात्रता केवल 'भाव' और 'समर्पण' से तय होती है, बाहरी स्थिति से नहीं।

### श्लोक संख्या: 9.33

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा |  
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

फिर जो पुण्यशील ब्राह्मण और भक्त राजर्षि (ऋषि तुल्य राजा) हैं, उनके लिए तो कहना ही क्या! इसलिए इस अनित्य (क्षणभंगुर) और सुख रहित संसार को प्राप्त होकर तू मेरा ही भजन कर।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि जब साधारण लोग भी भक्ति से तर जाते हैं, तो जो पहले से ही सात्विक और भक्त हृदय हैं, उनकी मुक्ति में तो कोई संशय ही नहीं है। यहाँ वे संसार की कड़वी सच्चाई भी बताते हैं—यह जगत 'अनित्य' (जल्दी खत्म होने वाला) और 'असुख' (दुखों का घर) है। इसलिए बिना समय गंवाए केवल परमात्मा की भक्ति में लग जाना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की नश्वरता को पहचान कर प्रभु की भक्ति में लग जाना ही बुद्धिमानी है।

### श्लोक संख्या: 9.34

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु |  
मामेवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्परायणः || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मुझमें मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको ही नमस्कार कर। इस प्रकार अपने आप को मुझमें लगाकर और मेरे ही परायण होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

#### सरल व्याख्या:

अध्याय के अंत में भगवान चार महत्वपूर्ण सूत्र देते हैं: 1. मन को प्रभु में लगाना, 2. उनसे प्रेम करना (भक्त बनना), 3. हर कर्म को पूजा मानना, और 4. अहंकार छोड़कर समर्पण (नमस्कार) करना। जब साधक का पूरा अस्तित्व इस प्रकार ईश्वरमय हो जाता है, तब वह अंततः परमात्मा के स्वरूप में ही विलीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन, बुद्धि और कर्म का पूर्ण समर्पण ही परमात्मा से एकाकार होने का निश्चित मार्ग है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो  
नाम नवमोऽध्यायः ॥



अध्याय **10**: विभूतियोग

Satyaanubhuti Ashram



## श्लोक संख्या: 10.1

श्रीभगवानुवाच

भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः ।

यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—हे महाबाहो! फिर भी मेरे परम रहस्यमय वचनों को सुन, जिसे मैं तुझ जैसे अति प्रेमी भक्त के हित की इच्छा से कहूँगा।

सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन की बढ़ती हुई श्रद्धा और प्रेम को देखकर स्वयं आगे बढ़कर ज्ञान देना चाहते हैं। वे कहते हैं कि जो मैं पहले कह चुका हूँ, अब उससे भी गूढ़ बातें बताऊँगा। यह ईश्वर की कृपा है कि जब भक्त सुनने के लिए आतुर होता है, तो परमात्मा स्वयं उसका हित करने के लिए ज्ञान की वर्षा करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा का ज्ञान केवल तर्क से नहीं, बल्कि प्रेम और पात्रता से प्राप्त होता है।

## श्लोक संख्या: 10.2

न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः ।

अहमादिहिं देवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

हिन्दी अनुवाद:

मेरी उत्पत्ति (प्रभाव) को न देवता जानते हैं और न महर्षिगण; क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं और महर्षियों का भी आदि कारण हूँ।

सरल व्याख्या:

ईश्वर का कोई जन्म नहीं होता, वे अजन्मे हैं। चूँकि देवता और ऋषि भी उन्हीं से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए वे अपनी बुद्धि से उस 'अन्तिम सत्य' को नहीं नाप सकते जो उनके पैदा होने से भी पहले था। बच्चा अपने पिता के जन्म का गवाह नहीं हो सकता, वैसे ही सृष्टि का कोई भी जीव परमात्मा के आदि को नहीं जान सकता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा बुद्धि और तर्क की सीमा से परे हैं क्योंकि वे ही सबके मूल स्रोत हैं।

### श्लोक संख्या: 10.3

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् |  
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते || 3 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मुझे अजन्मा, अनादि और लोकों का महान ईश्वर तत्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

संसार की हर वस्तु का आदि (शुरुआत) और अंत है, पर परमात्मा 'अनादि' है। जो इस सत्य को केवल शब्दों से नहीं बल्कि अनुभव से जान लेता है, उसका मोह भंग हो जाता है। ऐसा व्यक्ति संसार में रहते हुए भी कर्मों के लेप (पापों) से अछूता रहता है क्योंकि उसकी दृष्टि अविनाशी पर टिक गई है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध ही समस्त पापों और बंधनों से मुक्ति का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 10.4-5

बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः |  
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाभयमेव च || 4 ||  
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः |  
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः || 5 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

निश्चय करने की शक्ति (बुद्धि), यथार्थ ज्ञान, मोह का अभाव, क्षमा, सत्य, इंद्रिय निग्रह, मन का निग्रह, सुख-दुख, जन्म-मृत्यु, भय-अभय, अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, यश और अपयश—प्राणियों के ये नाना प्रकार के भाव मुझ (परमात्मा) से ही उत्पन्न होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान स्पष्ट करते हैं कि हमारे भीतर उठने वाली हर मानसिक वृत्ति और संसार की हर स्थिति उन्हीं की सत्ता से है। चाहे वह सद्गुण हों या जीवन के उतार-चढ़ाव, सब ईश्वरीय विधान के अंतर्गत हैं। जब हम यह समझ लेते हैं कि 'यश' और 'अपयश' दोनों के मूल में वही हैं, तो हमारे भीतर 'समता' आने लगती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मनुष्य के स्वभाव की हर विशेषता और जीवन की हर परिस्थिति का परम स्रोत परमात्मा ही है।

## श्लोक संख्या: 10.6

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।

मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ 6 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

सात महर्षि, उनसे भी पूर्व होने वाले चार सनकादि और चौदह मनु—ये सब मेरे भाव वाले (मुझमें मन वाले) मेरे ही संकल्प से उत्पन्न हुए हैं, जिनकी संसार में यह संपूर्ण प्रजा है।

### सरल व्याख्या:

सृष्टि के संचालन के लिए जो मुख्य शक्तियाँ या पूर्वज (ऋषि और मनु) माने गए हैं, वे भी परमात्मा के ही 'मान संकल्प' से प्रकट हुए हैं। इसका अर्थ है कि पूरी मानवता और यह ज्ञान परंपरा एक ही ईश्वरीय चेतना की शाखाएँ हैं। हम सब एक ही मूल से जुड़े हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समस्त सृष्टि का वंश और ज्ञान का प्रवाह परमात्मा के ही संकल्प का विस्तार है।

## श्लोक संख्या: 10.7

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।

सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ 7 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य मेरी इस दिव्य विभूति (ऐश्वर्य) और योग-शक्ति को तत्व से जानता है, वह निश्चल (अटल) भक्ति योग द्वारा मुझमें स्थित हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है।

### सरल व्याख्या:

जब कोई व्यक्ति यह गहराई से समझ लेता है कि हर महानता और शक्ति के पीछे परमात्मा ही काम कर रहे हैं, तो उसकी श्रद्धा डगमगाना बंद कर देती है। फिर वह हर जगह ईश्वर को ही देखता है। यही 'अटल योग' है, जहाँ साधक का मन संसार से हटकर सत्य में स्थिर हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की सर्वव्यापकता का ज्ञान ही भक्ति को दृढ़ और स्थिर बनाता है।

### श्लोक संख्या: 10.8

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।

इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ 8 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं ही संपूर्ण जगत की उत्पत्ति का कारण हूँ और मुझसे ही सब कुछ गतिशील (प्रवृत्त) होता है—ऐसा मानकर बुद्धिमान भक्त परम श्रद्धा से युक्त होकर निरंतर मेरा ही भजन करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जैसे समुद्र से लहरें उठती हैं और समुद्र में ही विलीन होती हैं, वैसे ही यह संसार ईश्वर से ही निकलता और चलता है। जो इस रहस्य को जान लेते हैं, वे फिर बाहरी कर्मकांडों में नहीं उलझते, बल्कि 'भाव' के साथ सीधे परमात्मा से जुड़ जाते हैं। उनके लिए हर कार्य पूजा बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा को सबका मूल जानकर हृदय से उनकी शरण लेना ही वास्तविक बुद्धिमानी है।

### श्लोक संख्या: 10.9

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।

कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ 9 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मुझमें निरंतर मन लगाने वाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन आपस में मेरे गुणों और प्रभाव की चर्चा करते हुए सदा संतुष्ट रहते हैं और मुझमें ही आनंद पाते हैं।

#### सरल व्याख्या:

सच्चे भक्तों का लक्षण यहाँ बताया गया है। उनका जीवन परमात्मा के इर्द-गिर्द घूमता है। वे जब भी मिलते हैं, ईश्वर की ही बातें करते हैं और एक-दूसरे को प्रेरित करते हैं। उन्हें संसार के विषयों में नहीं, बल्कि हरि-चर्चा और चिंतन में ही परम तृप्ति और सुख मिलता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भक्ति में संकीर्तन और सत्संग (परस्पर चर्चा) साधक को असीम शांति और रस प्रदान करते हैं।

### श्लोक संख्या: 10.10

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।  
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उन निरंतर (मुझसे) जुड़े हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह 'बुद्धियोग' (समत्व बुद्धि का ज्ञान) देता हूँ, जिससे वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

साधक का काम है केवल 'प्रेमपूर्वक' जुड़ना। फिर उसे कैसे पहुँचना है, कौन सा ज्ञान चाहिए, यह जिम्मेदारी परमात्मा स्वयं लेते हैं। वे भक्त के भीतर ऐसी बुद्धि जागृत कर देते हैं जिससे वह सही-गलत का भेद कर सके और सीधा ईश्वर तक पहुँच जाए। यह बुद्धि मनुष्य खुद नहीं पैदा कर सकता, यह प्रभु का उपहार है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जो प्रेम से ईश्वर की ओर कदम बढ़ाता है, उसे मंजिल तक पहुँचाने वाली 'बुद्धि' स्वयं परमात्मा देते हैं।

### श्लोक संख्या: 10.11

तेषामेवानुक्तमर्थमहमज्ञानजं तमः ।  
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उन भक्तों पर कृपा करने के लिए ही, मैं उनके अंतःकरण में स्थित होकर, अज्ञान से उत्पन्न होने वाले अंधकार को प्रकाशमय 'ज्ञान रूपी दीपक' द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि जो मेरी शरण में है, उसे अज्ञान से डरने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं उसके हृदय में बैठकर विवेक का दीया जला देता हूँ। जैसे सूरज निकलते ही अंधेरा गायब हो जाता है, वैसे ही ईश्वर की कृपा से भ्रम के सारे पर्दे हट जाते हैं और सत्य का साक्षात्कार होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अज्ञान को मिटाने का पुरुषार्थ मनुष्य अकेला नहीं करता, बल्कि परमात्मा स्वयं भीतर से सहायता करते हैं।

### श्लोक संख्या: 10.12-13

अर्जुन उवाच

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् ।

पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ 12 ॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।

असितो देवलो व्यासः स्वयं चैव ब्रवीषि मे ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं। आपको समस्त ऋषि, देवर्षि नारद, असित, देवल तथा व्यास सनातन, दिव्य पुरुष, देवों के आदि देव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं; और अब स्वयं आप भी मुझसे यही कह रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन को पूर्ण विश्वास हो गया है। वे स्वीकार करते हैं कि जो बात बड़े-बड़े महापुरुषों ने कही थी, आज वे साक्षात् आपके मुख से सुन रहे हैं। अर्जुन यहाँ भगवान के निराकार और साकार दोनों रूपों की महिमा का गान कर रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब संतों के वचनों और स्वयं के अनुभव का मिलन होता है, तो श्रद्धा अटूट हो जाती है।

### श्लोक संख्या: 10.14

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ।

न ही ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे केशव! आप मुझसे जो कुछ भी कह रहे हैं, उसे मैं पूर्णतः सत्य मानता हूँ। हे भगवान! आपके इस लीला-मय स्वरूप को न तो देवता जानते हैं और न ही दानव।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन कहते हैं कि प्रभु, आपकी शक्ति को सीमित बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। देवता अपनी सात्विकता के अहंकार में और दानव अपनी तामसिकता के कारण आपको नहीं पहचान पाते। आपकी लीला को समझने के लिए आपकी कृपा ही एकमात्र साधन है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के रहस्यों को जानने के लिए केवल बुद्धि काफी नहीं, पूर्ण समर्पण और विश्वास आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 10.15

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम |  
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे प्राणियों को उत्पन्न करने वाले! हे भूतों के ईश्वर! हे देवों के देव! हे जगत के स्वामी! हे पुरुषोत्तम! आप स्वयं ही अपने आप से अपने आप को जानते हैं।

#### सरल व्याख्या:

कोई भी वस्तु अपने से बड़ी वस्तु को नहीं नाप सकती। चूँकि पूरा ब्रह्मांड परमात्मा के भीतर है, इसलिए ब्रह्मांड का कोई भी जीव उन्हें पूरी तरह नहीं जान सकता। केवल परमात्मा ही अपनी महिमा को स्वयं जानते हैं। यहाँ अर्जुन भगवान को 'पुरुषोत्तम' कहकर संबोधित कर रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा स्वयं प्रकाश हैं, उन्हें जानने वाला उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।

### श्लोक संख्या: 10.16

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः |  
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अतः आप अपनी उन दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के योग्य हैं, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन समस्त लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभु, आप अपनी उन खास शक्तियों और रूपों के बारे में विस्तार से बताइये जिनके माध्यम से आप इस संसार के कण-कण में मौजूद हैं। अर्जुन उन 'चिह्नों' को जानना चाहते हैं जिन्हें देखकर वे हर जगह ईश्वर का अनुभव कर सकें।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जिज्ञासु भक्त संसार की वस्तुओं में भी ईश्वर की ही झलक देखना चाहता है।

### श्लोक संख्या: 10.17

कथं विद्यामहं योगिस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।  
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे योगेश्वर! मैं निरंतर चिंतन करता हुआ आपको कैसे जानूँ? और हे भगवन! किन-किन भावों (पदार्थों) में मेरे द्वारा आपका चिंतन किया जाना चाहिए?

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन एक बहुत ही व्यावहारिक प्रश्न पूछ रहे हैं। "प्रभु, जब मैं संसार में व्यवहार करूँ, तो किन चीजों को देखकर मुझे आपकी याद आए? मैं अपनी आंखों के सामने दिखने वाली इस दुनिया में आपको कैसे ढूँढ़ूँ?" यह हर साधक की जिज्ञासा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर ईश्वर के चिंतन के लिए संसार के रूपों में ईश्वर की सत्ता को पहचानना जरूरी है।

### श्लोक संख्या: 10.18

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।  
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे जनार्दन! अपनी योग-शक्ति और विभूति को फिर से विस्तार से कहिये; क्योंकि आपके अमृतमयी वचनों को सुनते हुए मेरी तृप्ति नहीं हो रही है।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन कहते हैं कि आपकी बातें मेरे लिए अमृत के समान हैं। इसे जितना सुनता हूँ, और सुनने की इच्छा बढ़ती जाती है। भक्ति का आनंद ऐसा ही होता है—वहाँ 'बस' (संतोष) नहीं होता, बल्कि प्यास और बढ़ती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की कथा और उनके गुणों का श्रवण कभी न खत्म होने वाला दिव्य आनंद प्रदान करता है।



### श्लोक संख्या: 10.19

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।

प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! अब मैं तुझसे अपनी दिव्य विभूतियों को मुख्य-मुख्य रूप से कहूँगा; क्योंकि मेरे विस्तार का कोई अंत नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् मुस्कराते हुए कहते हैं कि मेरी शक्तियाँ तो अनंत हैं, उन्हें पूरा बताना तो असंभव है। लेकिन मैं तुम्हें वे प्रमुख रूप बताऊँगा जहाँ मेरी सत्ता का प्रकाश सबसे ज्यादा चमकता है, ताकि तुम मुझे आसानी से पहचान सको।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा अनंत हैं, पर उनकी कृपा उन्हें कुछ विशेष प्रतीकों के माध्यम से हमारे लिए सुलभ बना देती है।

### श्लोक संख्या: 10.20

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे गुडाकेश (नींद को जीतने वाले अर्जुन)! मैं समस्त प्राणियों के हृदय में स्थित सबका 'आत्मा' हूँ तथा मैं ही समस्त भूतों का आदि, मध्य और अंत भी हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह इस अध्याय का सबसे महत्वपूर्ण श्लोक है। भगवान् सबसे बड़ी विभूति बताते हैं—'आत्मा'। वे कहते हैं कि मैं कहीं बाहर नहीं, बल्कि हर जीव के भीतर चैतन्य रूप में बैठा हूँ। सृष्टि की शुरुआत मुझसे है, इसका टिकाव मुझमें है और इसका अंत भी मुझमें ही होगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं के भीतर बैठी हुई आत्मा ही परमात्मा का सबसे साक्षात् और निकटतम रूप है।

### श्लोक संख्या: 10.21

आदित्यानामहं विष्णुज्योतिषां रविरंशुमान् ।

मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी || 21 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं अदिति के बारह पुत्रों (आदित्यों) में विष्णु हूँ, ज्योतियों में प्रकाशमान सूर्य हूँ, वायु के उनचास वेगों (मरुद्गणों) में मरीचि हूँ और नक्षत्रों में चंद्रमा हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान समझा रहे हैं कि जहाँ भी कोई विशेष तेज या शक्ति दिखे, वह उन्हीं का अंश है। अदिति के पुत्रों में 'विष्णु' सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। दिन के प्रकाश में सूर्य और रात्रि की शीतलता में चंद्रमा के रूप में वही सत्ता प्रकाशित हो रही है। इसका अर्थ है कि समस्त ब्रह्मांडीय ऊर्जा के केंद्र स्वयं परमात्मा ही हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आकाश की समस्त दिव्य ज्योतियों और प्राकृतिक शक्तियों में जो श्रेष्ठता है, वह ईश्वर की ही उपस्थिति है।

### श्लोक संख्या: 10.22

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ।

इन्द्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना || 22 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं वेदों में सामवेद हूँ, देवताओं में इंद्र हूँ, इंद्रियों में मन हूँ और प्राणियों में रहने वाली चेतना (जीवन-शक्ति) हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अपनी व्यापकता को हर क्षेत्र में बता रहे हैं। वेदों में मधुरता के कारण 'सामवेद' को वे अपना स्वरूप कहते हैं। हमारे शरीर में दस इंद्रियाँ हैं, लेकिन उन्हें नियंत्रित करने वाला 'मन' भगवान की विभूति है। सबसे महत्वपूर्ण बात, किसी भी जीव के जीवित रहने का जो प्रमाण है—उसकी 'चेतना'—वह साक्षात् परमात्मा ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान, शासन, मानसिक शक्ति और जीवन का स्पंदन—इन सबके मूल में परमात्मा की ही शक्ति काम कर रही है।

### श्लोक संख्या: 10.23

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् |  
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं ग्यारह रुद्रों में शंकर हूँ, यक्ष और राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ, आठ वसुओं में अग्नि हूँ और शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अपनी विभूतियों को कल्याणकारी और ऐश्वर्यशाली रूपों में प्रकट कर रहे हैं। रुद्रों में जो संहार और कल्याण के अधिपति शिव (शंकर) हैं, वह प्रभु का ही रूप हैं। वसुओं में 'अग्नि' का विशेष स्थान है क्योंकि वह शुद्ध करने वाली है। पर्वतों में 'मेरु' अपनी स्थिरता और ऊंचाई के लिए प्रसिद्ध है। इन सबका उद्देश्य यह बताना है कि संसार की हर श्रेष्ठता प्रभु की महिमा का ही बखान करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जगत की समस्त स्थिरता, शुद्धि, ऐश्वर्य और कल्याणकारी शक्तियों का केंद्र केवल परमात्मा है।

### श्लोक संख्या: 10.24

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् |  
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः || 24 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! पुरोहितों में मुख्य 'बृहस्पति' मुझे जान। सेनापतियों में मैं 'स्कन्द' (कार्तिकेय) हूँ और जलाशयों में मैं 'समुद्र' हूँ।

#### सरल व्याख्या:

बुद्धि और मंत्रों के अधिपति होने के कारण गुरु बृहस्पति भगवान की विभूति हैं। शक्ति और नेतृत्व के प्रतीक के रूप में वे सेनापतियों में कार्तिकेय हैं। जैसे छोटी नदियाँ और सरोवर अंततः समुद्र में मिलते हैं, वैसे ही समस्त जल-राशियों में अपनी विशालता के कारण समुद्र परमात्मा का ही स्वरूप है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान की श्रेष्ठता, नेतृत्व की शक्ति और विस्तार की असीमता ईश्वर की ही झांकी है।

### श्लोक संख्या: 10.25

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्येकमक्षरम् |

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः || 25 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं महर्षियों में भृगु हूँ, शब्दों में एक अक्षर 'ओंकार' (ॐ) हूँ, समस्त यज्ञों में 'जप यज्ञ' हूँ और स्थिर रहने वालों में 'हिमालय' पर्वत हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि तपस्या की पराकाष्ठा 'भृगु' ऋषि मुझमें हैं। वाणी में सबसे पवित्र शब्द 'ॐ' मैं हूँ। यज्ञों में 'जप' सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसमें किसी बाहरी दिखावे या हिंसा की आवश्यकता नहीं होती, यह सीधे मन को प्रभु से जोड़ता है। अपनी अडिगता और पवित्रता के कारण हिमालय भी परमात्मा की ही महिमा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मौन साधना (जप), पवित्र शब्द और अडिग स्थिरता के रूप में परमात्मा ही स्थित हैं।

### श्लोक संख्या: 10.26

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः |

गन्धर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः || 26 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ, देवर्षियों में नारद हूँ, गन्धर्वों में चित्ररथ हूँ और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

#### सरल व्याख्या:

पीपल (अश्वत्थ) अपनी निरंतर प्राणवायु और लंबी आयु के कारण पूजनीय है। भक्ति के प्रचारक नारद और सांख्य शास्त्र के प्रणेता कपिल मुनि—जिन्होंने तत्व ज्ञान दिया—वे सब भगवान के ही विशेष प्रकाश हैं। जहाँ भी संगीत, ज्ञान या भक्ति की चरम सीमा है, वहाँ भगवान ही प्रकट हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति के पूजनीय रूपों और सिद्ध महापुरुषों में ईश्वरीय तत्व ही कार्य करता है।

**श्लोक संख्या: 10.27**

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।

ऐरावतं गजेन्द्राणां नराणां च नराधिपम् ॥ 27 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

घोड़ों में अमृत के साथ उत्पन्न होने वाला 'उच्चैःश्रवा' नाम का घोड़ा मुझे जान, हाथियों में 'ऐरावत' और मनुष्यों में 'राजा' मुझे समझ।

**सरल व्याख्या:**

समुद्र मंथन से निकले श्रेष्ठ रत्न—उच्चैःश्रवा और ऐरावत—अपनी उत्तमता के कारण परमात्मा के रूप हैं। मनुष्यों में 'राजा' को भगवान की विभूति इसलिए कहा गया है क्योंकि उसका धर्म प्रजा की रक्षा और न्याय करना है। जहाँ भी शासन और पालन की व्यवस्था है, वह ईश्वर की सत्ता से ही चलती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ऐश्वर्य, शक्ति और न्यायपूर्ण शासन ईश्वर की ही व्यवस्था के अंश हैं।

**श्लोक संख्या: 10.28**

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक |

प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः || 28 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

मैं शस्त्रों में वज्र हूँ, गौओं में कामधेनु हूँ, संतानोत्पत्ति का कारण 'कामदेव' हूँ और सर्पों में 'वासुकि' हूँ।

**सरल व्याख्या:**

अन्याय के विनाश के लिए दधीचि की हड्डियों से बना 'वज्र' प्रभु की शक्ति है। सबकी कामनाएं पूर्ण करने वाली 'कामधेनु' और सृष्टि के विस्तार का मूल आधार 'प्रेम' (कामदेव) भी ईश्वर ही हैं। सर्पों के अधिपति वासुकि के रूप में भी वही सत्ता विराजमान है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अधर्म का नाश करने वाली शक्ति और सृजन की निरंतरता परमात्मा का ही रूप है।

**श्लोक संख्या: 10.29**

अनन्तश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् |

पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् || 29 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

मैं नागों में 'शेषनाग' हूँ, जलचरों का अधिपति 'वरुण' हूँ, पितरों में 'अर्यमा' और शासन करने वालों में 'यमराज' हूँ।

**सरल व्याख्या:**

अनंत शक्तिशाली शेषनाग, जो पृथ्वी को धारण किए हैं, वह प्रभु की विभूति हैं। नियम और संयम के प्रतीक यमराज के रूप में भी वही हैं, क्योंकि वे न्यायपूर्वक फल देते हैं। इसका अर्थ है कि मृत्यु और नियमन भी ईश्वरीय विधान का ही हिस्सा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार का नियमन, संयम और आधारभूत शक्तियाँ परमात्मा के ही नियंत्रण में हैं।

**श्लोक संख्या: 10.30**

प्रह्लादश्चास्मि दैत्यानां कालः कलयतामहम् ।  
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥ 30 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

मैं दैत्यों में 'प्रह्लाद' हूँ, गणना करने वालों में 'समय' हूँ, पशुओं में मृगराज 'सिंह' और पक्षियों में 'गरुड़' हूँ।

**सरल व्याख्या:**

विरोधी परिस्थितियों में भी जो अनन्य भक्त रहे, वे प्रह्लाद भगवान की प्रिय विभूति हैं। सबसे बलवान और गणना न की जा सकने वाली शक्ति 'समय' (काल) स्वयं परमात्मा हैं। साहस में सिंह और ऊँचाई छूने वाले गरुड़ के रूप में वही तेज दिखाई देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भक्ति की पराकाष्ठा और समय की अपराजेय शक्ति साक्षात् ईश्वर है।

### श्लोक संख्या: 10.31

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम् |  
झषाणां मकरश्चास्मि स्रोतसामस्मि जाह्नवी || 31 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं पवित्र करने वालों में वायु हूँ, शस्त्रधारियों में श्रीराम हूँ, मछलियों में मगरमच्छ हूँ और नदियों में श्रीगंगा जी हूँ।

#### सरल व्याख्या:

शुद्धि करने वाली शक्तियों में वायु सर्वोपरि है, जो प्राण का आधार है। मर्यादा और शस्त्रों के आदर्श प्रयोग में भगवान श्रीराम साक्षात् परमात्मा की विभूति हैं। जलचरों में अपनी गति और शक्ति के कारण मगरमच्छ और समस्त पवित्र जलधाराओं में माँ गंगा, जो मोक्षदायिनी हैं, वे प्रभु का ही स्वरूप हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पावनता, शौर्य और मोक्ष प्रदान करने वाली समस्त श्रेष्ठ धाराएं परमात्मा से ही प्रवाहित होती हैं।

### श्लोक संख्या: 10.32

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन |  
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् || 32 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! मैं सृष्टियों का आदि, अंत और मध्य भी हूँ। मैं विद्याओं में 'अध्यात्म विद्या' (ब्रह्मविद्या) हूँ और परस्पर तर्क करने वालों का 'वाद' (सत्य का निर्णय करने वाला तर्क) हूँ।

#### सरल व्याख्या:

सृष्टि के बनने, टिकने और मिटने का आधार केवल ईश्वर है। संसार में अनेक विद्याएँ हैं, पर वह विद्या जो आत्मा का ज्ञान करा दे, वही सर्वश्रेष्ठ है और वह परमात्मा का रूप है। चर्चाओं में जहाँ व्यर्थ का विवाद नहीं, बल्कि सत्य तक पहुँचने का 'वाद' हो, वह बुद्धि की शक्ति भी ईश्वर ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान ही समस्त ज्ञान का सार है और परमात्मा ही समय के हर कालखंड के एकमात्र आधार हैं।



### श्लोक संख्या: 10.33

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।

अहमेवाक्षयः कालो धाताहं विश्वतोमुखः ॥ 33 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं अक्षरों में 'अकार' (अ) हूँ, समासों में 'द्वन्द्व' समास हूँ। मैं ही अक्षय काल (समय का भी महाकाल) हूँ और सब ओर मुख वाला, सबका भरण-पोषण करने वाला विधाता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

जैसे हर शब्द की शुरुआत 'अ' से होती है और वह हर अक्षर में समाहित है, वैसे ही ईश्वर सबमें व्याप्त हैं। व्याकरण के समासों में 'द्वन्द्व' श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें दोनों पदों की प्रधानता होती है, जो ईश्वर की समता को दर्शाता है। वह समय जो कभी खत्म नहीं होता और वह सत्ता जो बिना मांगे सबको पाल रही है, वह परमात्मा ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा अविनाशी समय के रूप में सबको अपनी गोद में समेटे हुए हैं और सबका पालनहार हैं।

### श्लोक संख्या: 10.34

मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।

कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मैधा धृतिः क्षमा ॥ 34 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं सबका हरण करने वाली 'मृत्यु' हूँ और भविष्य में उत्पन्न होने वालों का 'उत्पत्ति-कारण' हूँ। स्त्रियों में कीर्ति, श्री (लक्ष्मी), वाक् (वाणी), स्मृति, मेधा (बुद्धि), धृति (धैर्य) और क्षमा—ये दिव्य गुण मैं ही हूँ।

#### सरल व्याख्या:

मृत्यु कड़वा सच है, पर वह भी प्रभु का ही एक रूप है जो पुराने को मिटाकर नये के लिए जगह बनाता है। मनुष्यों के भीतर जो सद्गुण जैसे—सुयश, शोभा, मधुर वाणी, याददाश्त, बुद्धि, धीरज और माफ करने की शक्ति है, ये कोमल और शक्तिशाली भाव साक्षात् ईश्वर की ही चमक हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन का अंत, नई शुरुआत और हमारे भीतर की चारित्रिक महानता, सब प्रभु की ही विभूतियाँ हैं।

### श्लोक संख्या: 10.35

बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।

मासानां मार्गशीर्षोऽहं ऋतूनां कुसुमाकरः ॥ 35 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

गायी जाने वाली श्रुतियों में मैं 'बृहत्साम' हूँ, छंदों में मैं 'गायत्री' हूँ। महीनों में मैं 'मार्गशीर्ष' (अगहन) हूँ और ऋतुओं में 'वसंत' हूँ।

#### सरल व्याख्या:

संगीत और मंत्रों के माध्यम से जो ईश्वर की स्तुति होती है, उसमें बृहत्साम और परम पावन गायत्री मंत्र ईश्वर की ही शक्ति हैं। महीनों में अपनी अनुकूलता के कारण मार्गशीर्ष और फूलों के खिलने व आनंद की ऋतु 'वसंत' (कुसुमाकर) के रूप में परमात्मा अपनी सुंदरता प्रकट करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति के सौंदर्य और पवित्र मंत्रों की ध्वनि में परमात्मा का वास है।

### श्लोक संख्या: 10.36

द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।

जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ 36 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं छल करने वालों में 'जुआ' हूँ, तेजस्वियों का 'तेज' हूँ। मैं जीतने वालों की 'विजय' हूँ, निश्चय करने वालों का 'निश्चय' हूँ और सात्विक पुरुषों का 'सत्त्व' (सात्विक भाव) हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान एक चौंकाने वाली बात कहते हैं कि छली के छल (जुआ) की शक्ति भी मैं ही हूँ—अर्थात् मुझसे बाहर कुछ नहीं है। प्रभावशाली व्यक्तियों का जो प्रभाव है, विजेता की जो जीत है और दृढ़ संकल्प वाले का जो 'निश्चय' है, वह सब ईश्वर की दी हुई सामर्थ्य ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पराक्रम, विजय और अटल निश्चय के पीछे ईश्वरीय ऊर्जा ही कार्य करती है।

**श्लोक संख्या: 10.37**

वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।

मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ 37 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

मैं वृष्णि-वंशियों में 'वासुदेव' (स्वयं श्रीकृष्ण) हूँ, पांडवों में 'धनंजय' (अर्जुन) हूँ, मुनियों में 'व्यास' हूँ और कवियों में 'शुक्राचार्य' हूँ।

**सरल व्याख्या:**

भगवान अपने सखा अर्जुन से कहते हैं कि तुम्हारे भीतर जो युद्ध कौशल और तेज है, वह मेरी ही विभूति है। मुनियों में वेदव्यास, जिन्होंने वेदों को व्यवस्थित किया, और कवियों में महान मेधावी शुक्राचार्य के रूप में वही चैतन्य शक्ति प्रकट हो रही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ पुरुषों की प्रतिभा और उनके असाधारण कार्य ईश्वर की ही अभिव्यक्ति हैं।

**श्लोक संख्या: 10.38**

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।

मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ 38 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

मैं दमन करने वालों का 'दंड' हूँ, विजय चाहने वालों की 'नीति' हूँ। रहस्यों में मैं 'मौन' हूँ और ज्ञानियों का 'तत्त्वज्ञान' हूँ।

**सरल व्याख्या:**

अनुशासन और न्याय के लिए जो दंड दिया जाता है, वह व्यवस्था प्रभु की है। जीतने के लिए जो सही नीति (धर्म) अपनाई जाती है, वह भी ईश्वर है। रहस्यों को सुरक्षित रखने के लिए 'मौन' सबसे बड़ी शक्ति है, और किसी भी ज्ञानी की जो वास्तविक समझ है, वह केवल परमात्मा का प्रकाश है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... न्याय, नीति, गहराई और ज्ञान—इन सबका परम केंद्र परमात्मा ही है।

### श्लोक संख्या: 10.39

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन |  
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् || 39 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! जो समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का 'बीज' (मूल कारण) है, वह मैं ही हूँ। ऐसा कोई भी चर या अचर प्राणी नहीं है, जो मेरे बिना अस्तित्व में रह सके।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् समस्त विवरणों को एक सूत्र में पिरोते हुए कहते हैं कि जो भी जन्म लेता है, उसका 'बीज' मैं ही हूँ। जैसे मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बन सकता, वैसे ही परमात्मा के बिना संसार की किसी भी वस्तु या जीव की कल्पना नहीं की जा सकती। वह सबमें व्याप्त है और सब उससे ही हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही समस्त सृष्टि का अनिवार्य घटक और मूल कारण है।

### श्लोक संख्या: 10.40

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप |  
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया || 40 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे परन्तप! मेरी दिव्य विभूतियों का कोई अंत नहीं है। मैंने तो यह अपनी विभूतियों का विस्तार तेरे लिए संक्षेप में (केवल उदाहरण के तौर पर) कहा है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् स्पष्ट करते हैं कि उनकी महिमा अनंत है। सूर्य की किरणों को कोई गिन नहीं सकता, वैसे ही परमात्मा के रूपों का अंत नहीं पाया जा सकता। अर्जुन को समझाने के लिए उन्होंने केवल कुछ मुख्य उदाहरण दिए हैं ताकि वह संसार के हर रूप में प्रभु की उपस्थिति का संकेत समझ सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा असीम हैं, उनकी अनंत महिमा को केवल कुछ शब्दों या उदाहरणों में पूरी तरह नहीं समेटा जा सकता।

### श्लोक संख्या: 10.41

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।  
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम् ॥ 41 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो-जो भी ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तिमान वस्तु या प्राणी है, उस-उसको तू मेरे ही तेज के एक अंश से उत्पन्न हुआ जान।

#### सरल व्याख्या:

भगवान ने एक बहुत बड़ा सूत्र दे दिया है। वे कहते हैं कि तुम्हें पूरी सूची याद रखने की ज़रूरत नहीं है। जहाँ भी तुम्हें कोई विशेष प्रतिभा, कोई अद्भुत सुंदरता, कोई महान शक्ति या कोई विलक्षण प्रभाव दिखाई दे—चाहे वह किसी इंसान में हो, प्रकृति में हो या पशु-पक्षी में—उसे मेरा ही एक छोटा सा 'अंश' समझना। वह चमक उनकी अपनी नहीं, बल्कि मेरे ही तेज की एक किरण है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की हर विशिष्टता और महानता उस अनंत परमात्मा की ही एक आंशिक अभिव्यक्ति है।

### श्लोक संख्या: 10.42

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।  
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ 42 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अथवा हे अर्जुन! इस बहुत से विस्तार को जानने से तेरा क्या प्रयोजन है? मैं इस संपूर्ण जगत को अपने (योग-शक्ति के) किसी एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अध्याय के अंत में भगवान अपनी असीमता प्रकट करते हैं। वे कहते हैं कि "अर्जुन! तुम अलग-अलग विभूतियों को कहाँ तक गिनोगे? सच तो यह है कि यह पूरा अनंत ब्रह्मांड, जो तुम्हें इतना विशाल दिखता है, यह मेरी शक्ति के मात्र 'एक छोटे से हिस्से' (अंश) में टिका हुआ है।" मैं इस संसार से कहीं बहुत बड़ा और परे हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा केवल संसार के भीतर ही नहीं हैं, बल्कि यह पूरा संसार उनके एक छोटे से अंश में समाया हुआ है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



## अध्याय 11: विश्वरूपदर्शनयोग

Satyaanubhuti Ashram

### श्लोक संख्या: 11.1

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।

यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ 1 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—मुझ पर अनुग्रह (कृपा) करने के लिए आपने जो परम गोपनीय 'अध्यात्म' विषयक वचन कहे हैं, उनसे मेरा यह अज्ञान (मोह) नष्ट हो गया है।

#### सरल व्याख्या:

पिछले अध्यायों में भगवान ने जो आत्मा, परमात्मा और अपनी विभूतियों का ज्ञान दिया, उसे सुनकर अर्जुन का मानसिक भ्रम दूर हो गया है। वे अब समझ चुके हैं कि कर्ता और भोक्ता वास्तव में कौन है। ज्ञान के श्रवण मात्र से ही बुद्धि का अंधकार छंटने लगा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गुरु के वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनने से ही मोह का नाश और विवेक का उदय होता है।

### श्लोक संख्या: 11.2

भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।

त्वत्त कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ 2 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कमल के समान नेत्रों वाले कृष्ण! मैंने आपसे भूतों (प्राणियों) की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में विस्तार से सुना है और आपकी अविनाशी महिमा का भी अनुभव किया है।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन कहते हैं कि प्रभु, आपने बताया कि कैसे यह संसार आपसे निकलता है और आपमें ही मिल जाता है। आपकी यह लीला और आपका कभी न खत्म होने वाला ऐश्वर्य मैंने वाणी से तो सुन लिया है, और मेरा हृदय उसे सत्य मान चुका है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही सृष्टि के आदि और अंत के एकमात्र कारण हैं।



### श्लोक संख्या: 11.3

एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं परमेश्वर |  
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम || 3 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे परमेश्वर! आप अपने विषय में जैसा कहते हैं, वह वैसा ही है। किंतु हे पुरुषोत्तम! मैं आपके उस ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त 'ऐश्वर्यमय रूप' को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ अर्जुन की जिज्ञासा पराकाष्ठा पर है। वे कहते हैं, "प्रभु, मैंने जान तो लिया कि आप सबमें हैं, पर अब मेरी इच्छा है कि मैं आपको उस 'विराट' रूप में देखूँ जिसमें आप इस पूरे ब्रह्मांड को धारण किए हुए हैं।" यह भक्ति की वह अवस्था है जहाँ भक्त अपने आराध्य के साक्षात् दर्शन के लिए व्याकुल उठता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान जब परिपक्व होता है, तो वह 'अनुभव' और 'दर्शन' में बदलने की तीव्र इच्छा पैदा करता है।

### श्लोक संख्या: 11.4

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो |  
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् || 4 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे प्रभो! यदि आप ऐसा मानते हैं कि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना संभव है, तो हे योगेश्वर! आप मुझे अपने उस अविनाशी स्वरूप का दर्शन कराइए।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ बहुत विनम्र हैं। वे यह दावा नहीं करते कि "मुझे दिखाओ ही", बल्कि वे कहते हैं कि "यदि आपको लगे कि मैं उस रूप को देखने के 'लायक' हूँ, तभी दिखाइये।" वे जानते हैं कि परमात्मा का विराट स्वरूप चर्म चक्षुओं (साधारण आँखों) का विषय नहीं है, वह केवल उनकी कृपा से ही संभव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय दर्शन के लिए योग्यता के साथ-साथ अत्यंत विनम्रता और प्रभु की सहमति अनिवार्य है।

### श्लोक संख्या: 11.5

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ 5 ॥

हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—हे पार्थ! अब तू मेरे सैकड़ों और हजारों नाना प्रकार के दिव्य रूपों को तथा नाना वर्ण (रंगों) और नाना आकृतियों को देख।

सरल व्याख्या:

अर्जुन की प्रार्थना स्वीकार करते हुए भगवान् ने अपना विराट् स्वरूप प्रकट करना शुरू किया। वे कहते हैं कि अब एक जगह स्थिर होकर मत देखो, बल्कि मेरे उन अनंत रूपों को देखो जो हर रंग, हर आकार और हर भाव में मौजूद हैं। यहाँ से भगवान् अर्जुन की दृष्टि को संसार की सीमाओं से उठाकर अनंत की ओर ले जा रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा एक होते हुए भी अनंत रूपों और विविधता में अभिव्यक्त हैं।

### श्लोक संख्या: 11.6

पश्यादित्यान्वसून्नुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।

बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ 6 ॥

हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशी अर्जुन! तू मुझमें आदित्यों को, वसुओं को, रुद्रों को, अश्विनीकुमारों को और मरुद्गणों को देख; तथा और भी बहुत से ऐसे आश्चर्यजनक रूपों को देख, जिन्हें पहले कभी किसी ने नहीं देखा।

सरल व्याख्या:

भगवान् ने अर्जुन के सामने उन शक्तियों को प्रत्यक्ष कर दिया जिनका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया था। वे कहते हैं कि वे रहस्य देखो जिन्हें आज तक किसी मानवीय आँख ने नहीं देखा। यह वह दृश्य है जो कल्पना से भी परे है, जहाँ काल और आकाश की सीमाएं मिट जाती हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के विराट् रूप में समस्त ब्रह्मांडीय शक्तियाँ और अनकहे रहस्य एक साथ विद्यमान हैं।

### श्लोक संख्या: 11.7

इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् |

मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि || 7 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! अब तू मेरे इस शरीर में एक जगह स्थित, चराचर सहित संपूर्ण जगत को देख और इसके सिवाय जो कुछ भी तू देखना चाहता है, वह भी देख ले।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि तुम्हें कहीं भटकने की ज़रूरत नहीं। मेरे इस एक ही स्वरूप के भीतर तुम वर्तमान, भूत और भविष्य—सब कुछ देख सकते हो। यहाँ तक कि इस युद्ध का परिणाम भी तुम यहीं देख सकते हो। पूरा ब्रह्मांड भगवान के शरीर का एक हिस्सा मात्र बनकर सामने खड़ा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा वह केंद्र हैं जहाँ पूरा ब्रह्मांड एक साथ समाहित है।

### श्लोक संख्या: 11.8

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा |

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् || 8 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु तू मुझको अपनी इन प्राकृत आँखों (साधारण नेत्रों) से नहीं देख सकता; इसलिए मैं तुझे 'दिव्य चक्षु' देता हूँ, उससे तू मेरी ईश्वरीय योग-शक्ति को देख।

#### सरल व्याख्या:

हमारी साधारण आँखें केवल पदार्थ (Matter) को देख सकती हैं, परमात्मा को नहीं। जैसे बिजली को देखने के लिए विशेष यंत्र चाहिए, वैसे ही विराट स्वरूप को देखने के लिए 'विवेक' या 'दिव्य दृष्टि' चाहिए। भगवान ने अपनी कृपा से अर्जुन की चेतना को उस स्तर तक उठा दिया जहाँ वह अनंत को देख सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य के साक्षात् दर्शन के लिए केवल भौतिक साधन पर्याप्त नहीं, परमात्मा द्वारा दी गई अंतर्दृष्टि आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 11.9

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।

दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ 9 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—हे राजन्! महायोगेश्वर भगवान् हरि ने अर्जुन को इस प्रकार कहकर, अपना परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य विराट रूप दिखाया।

#### सरल व्याख्या:

संजय धृतराष्ट्र को बता रहे हैं कि जैसे ही भगवान् ने दिव्य दृष्टि दी, उन्होंने अपना वह रूप प्रकट कर दिया जिसकी कल्पना भी असंभव है। 'महायोगेश्वर' शब्द यहाँ यह दर्शाता है कि भगवान् समस्त शक्तियों के स्वामी हैं और वे अपनी माया से कुछ भी प्रकट करने में समर्थ हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की कृपा होते ही साधक के सामने सत्य का साक्षात् स्वरूप प्रकट हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 11.10-11

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।

अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ 10 ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उस विराट रूप में अनेक मुख और अनेक नेत्र थे; अनेक अद्भुत दर्शन थे; बहुत से दिव्य आभूषणों से सुसज्जित और बहुत से दिव्य शस्त्रों को उठाए हुए था। वह दिव्य मालाओं और वस्त्रों को धारण किए हुए था, दिव्य गंधों का लेपन किए हुए था—वह सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, प्रकाशमान, अनंत और सब ओर मुख वाला था।

#### सरल व्याख्या:

संजय उस दृश्य का वर्णन कर रहे हैं जहाँ दिशाएँ समाप्त हो गई हैं। भगवान् का वह रूप हर तरफ फैला हुआ था। उनके शरीर पर दिव्य वस्त्राभूषण थे और उनके अनगिनत हाथों में सृष्टि की रक्षा और संहार के शस्त्र थे। वह दृश्य इतना भव्य था कि उसे देख पाना साधारण बुद्धि के परे था।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा का विराट स्वरूप समस्त शक्तियों, सौंदर्य और अनंतता का एक साथ प्रकटीकरण है।

### श्लोक संख्या: 11.12

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

आकाश में एक साथ हजार सूर्यों के उदय होने से जो प्रकाश उत्पन्न होता, वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश शायद ही हो।

#### सरल व्याख्या:

भगवान के तेज की तुलना करने के लिए संजय को संसार में कोई उपमा नहीं मिली। वे कहते हैं कि कल्पना करो अगर आसमान में एक साथ हजार सूरज चमकने लगें, तो कितनी रोशनी होगी? फिर भी वह रोशनी उस विराट पुरुष के तेज के सामने फीकी ही होती। यह प्रकाश आँखों को चुंधियाने वाला नहीं, बल्कि चेतना को जगाने वाला अलौकिक प्रकाश था।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का वास्तविक तेज भौतिक जगत के किसी भी प्रकाश से अनगिनत गुना अधिक श्रेष्ठ और दिव्य है।

### श्लोक संख्या: 11.13

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ।

अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उस समय अर्जुन ने देवों के देव भगवान श्रीकृष्ण के उस शरीर में, अनेक प्रकार से विभाजित हुए संपूर्ण जगत को एक जगह स्थित देखा।

#### सरल व्याख्या:

विराट रूप का अर्थ केवल विशालता नहीं है। अर्जुन ने देखा कि यह जो अलग-अलग दिखने वाला संसार है (पहाड़, नदियाँ, मनुष्य, देवता), वह सब वास्तव में अलग नहीं है। वे सब उस एक ही परमात्मा के शरीर के भीतर छोटे-छोटे अंगों की तरह एक साथ जुड़े हुए हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अनेकता में एकता का वास्तविक अनुभव ही परमात्मा का दर्शन है।

### श्लोक संख्या: 11.14

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः |  
प्रणम्य शिरसा देवं कृताञ्जलिरभाषत || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

तब वे आश्चर्य से चकित और रोमांचित शरीर वाले अर्जुन, उन दिव्य रूपधारी भगवान को मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर बोले।

#### सरल व्याख्या:

इस दृश्य को देखकर अर्जुन के शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। वे पूरी तरह दंग रह गए। उनके भीतर का अहंकार पूरी तरह मिट गया और वे केवल श्रद्धा से भर गए। जब मनुष्य ईश्वर की विशालता को देखता है, तो वह स्वतः ही छोटा होकर नतमस्तक हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य का अनुभव होने पर मनुष्य के भीतर स्वतः ही परम विनय और भक्ति का उदय होता है।

### श्लोक संख्या: 11.15

अर्जुन उवाच  
पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वान्तथा भूतविशेषसङ्गान् |  
ब्रह्माण्मीशं कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे देव! मैं आपके शरीर में समस्त देवताओं को और अनेक प्राणियों के समूहों को, कमल के आसन पर स्थित ब्रह्मा जी को, महादेव शिव को, समस्त ऋषियों को और दिव्य सपों को देख रहा हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ से अर्जुन का 'दर्शन' शुरू होता है। वे अपनी आँखों से देख रहे हैं कि पूरी सृष्टि—चाहे वह सूक्ष्म जगत के देवता हों या इस धरती के प्राणी—सब भगवान के भीतर ही निवास कर रहे हैं। जिसे हम ऊपर या नीचे कहते हैं, वह सब ईश्वर के विराट शरीर का ही हिस्सा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समस्त लोक और उनके अधिपति परमात्मा के ही आश्रित हैं।

### श्लोक संख्या: 11.16

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम् |  
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे विश्व के स्वामी! हे विश्वरूप! मैं आपको सब ओर से अनन्त हाथों, पेटों, मुखों और नेत्रों से युक्त देख रहा हूँ। मैं आपके न अंत को देखता हूँ, न मध्य को और न आदि को।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन अब चकित हैं क्योंकि वे जहाँ भी देखते हैं, उन्हें भगवान ही दिखाई देते हैं। भगवान की न कोई सीमा है, न कोई किनारा। उन्हें समझ नहीं आ रहा कि यह रूप कहाँ से शुरू होता है और कहाँ खत्म। यह 'अनंत' का साक्षात अनुभव है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा असीम हैं, वे समय और स्थान (Space and Time) की सीमाओं से परे हैं।

### श्लोक संख्या: 11.17

किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजोराशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम् |  
पश्यामि त्वा दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् || 17 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं आपको मुकुट धारण किए हुए, गदा और चक्र लिए हुए, सब ओर से प्रकाशमान तेज के पुंज के रूप में देख रहा हूँ। प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के समान आपके इस अत्यंत दीप्तिमान रूप को देख पाना बहुत कठिन है, क्योंकि यह सब ओर से अप्रमेय (बुद्धि से परे) है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान का यह रूप इतना तेजस्वी है कि उस पर नज़र टिकाना भी मुश्किल है। वे एक ओर तो शांत मुकुटधारी हैं और दूसरी ओर प्रलयकारी अग्नि की तरह दमक रहे हैं। अर्जुन स्वीकार करते हैं कि यह रूप नापा नहीं जा सकता; यह बुद्धि और तर्क की पहुँच से बहुत ऊपर है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का स्वरूप केवल प्रेम और कृपा से ही सहा जा सकता है, तर्क की शक्ति वहाँ हार मान लेती है।

### श्लोक संख्या: 11.18

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।

त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

आप ही जानने योग्य 'परम अक्षर' (अविनाशी ब्रह्म) हैं; आप ही इस जगत के परम आधार हैं; आप ही सनातन धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं—ऐसा मेरा मत है (अर्थात् मुझे अनुभव हो रहा है)।

#### सरल व्याख्या:

दर्शन करने के बाद अर्जुन अब घोषणा करते हैं। वे कहते हैं कि प्रभु, अब मुझे संदेह नहीं कि आप ही वे 'अक्षर ब्रह्म' हैं जिनकी चर्चा वेदों में है। आप ही वह शक्ति हैं जो धर्म को बचाए रखती है। आप ही वह पुराने से भी पुराने (सनातन) सत्य हैं जो कभी नष्ट नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही समस्त ज्ञान का अंतिम सार और इस ब्रह्मांड का शाश्वत आधार हैं।

### श्लोक संख्या: 11.19

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वा दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं आपको आदि, मध्य और अंत से रहित, अनंत सामर्थ्य से युक्त, अनगिनत भुजाओं वाले, सूर्य और चंद्रमा रूपी नेत्रों वाले देख रहा हूँ। प्रज्वलित अग्नि के समान आपके मुख से अपने तेज द्वारा आप इस संसार को तपा रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन देख रहे हैं कि भगवान की शक्ति का न कोई प्रारंभ है और न ही अंत। उनके नेत्रों में सूर्य का तेज और चंद्रमा की शीतलता दोनों हैं। उनका मुख प्रलय की अग्नि की तरह धधक रहा है, जिससे पूरा ब्रह्मांड संतप्त हो रहा है। यह दृश्य अब सौम्य से उग्र होने लगा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा केवल सृजनकर्ता ही नहीं, बल्कि उस प्रचंड ऊर्जा का केंद्र भी हैं जिससे सृष्टि का नियमन और संहार होता है।



### श्लोक संख्या: 11.20

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः |  
दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् || 20 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महात्मन! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का अंतराल तथा समस्त दिशाएँ अकेले आपसे ही व्याप्त हैं। आपके इस अद्भुत और उग्र रूप को देखकर तीनों लोक अत्यंत व्यथित (भयभीत) हो रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन को अब आभास हो रहा है कि भगवान के अलावा कहीं कोई खाली जगह नहीं है। आकाश, पाताल और धरती—सब उनके विराट स्वरूप में समाए हैं। यह रूप इतना विराट और भयंकर है कि इसे देखकर केवल अर्जुन ही नहीं, बल्कि तीनों लोकों के प्राणी कांप रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की सर्वव्यापकता जब अपने वास्तविक रूप में प्रकट होती है, तो वह मानवीय कल्पना और साहस को हिला देती है।

### श्लोक संख्या: 11.21

अमी हि त्वा सुरसङ्गा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति |  
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्गाः स्तुवन्ति त्वा स्तुतिभिः पुष्कलाभिः || 21 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वे देवताओं के समूह आपमें ही प्रवेश कर रहे हैं; कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणों का उच्चारण कर रहे हैं। महर्षियों और सिद्धों के समुदाय "कल्याण हो!" (स्वस्ति) ऐसा कहकर उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति कर रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

विराट रूप के भीतर अर्जुन देख रहे हैं कि बड़े-बड़े देवता भी ईश्वर की शरण में समा रहे हैं। कुछ भय से प्रार्थना कर रहे हैं, तो ऋषि-मुनि संसार की शांति के लिए मंगल कामना करते हुए ईश्वर की महिमा गा रहे हैं। यहाँ भक्ति, भय और विस्मय का अद्भुत संगम है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अंततः समस्त शक्तियाँ और सिद्धियाँ परमात्मा में ही विलीन होती हैं।

### श्लोक संख्या: 11.22

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च |  
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्गा वीक्षन्ते त्वा विस्मिताश्चैव सर्वे || 22 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, पितर तथा गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धों के समुदाय हैं—वे सब चकित होकर आपको देख रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

ब्रह्मांड की जितनी भी श्रेणियां हैं—चाहे वे दिव्य हों या आसुरी—सब उस महान दृश्य को देखकर स्तब्ध हैं। कोई भी उस विराटता के सामने खड़ा होने योग्य नहीं है; सब केवल विस्मय के साथ उस 'परम सत्य' को निहार रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा के प्रत्यक्ष प्रकटीकरण के सामने संसार की हर शक्ति छोटी और प्रभावहीन पड़ जाती है।

### श्लोक संख्या: 11.23

रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् |  
बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहम् || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! आपके बहुत से मुख और नेत्रों वाले, बहुत सी भुजाओं, जंघाओं और पैरों वाले, बहुत से उदरों (पेट) वाले और बहुत सी दाढ़ों के कारण अत्यंत विकराल रूप को देखकर समस्त लोक व्यथित हो रहे हैं और मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अब अर्जुन का भय स्पष्ट दिखने लगा है। उन्हें भगवान के मुख में बड़ी-बड़ी दाढ़ें और भयानक स्वरूप दिख रहा है। यह भगवान का 'काल' रूप है जो सब कुछ निगलने के लिए तैयार है। इसे देखकर अर्जुन की हिम्मत जवाब दे रही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मृत्यु और विनाश भी परमात्मा का ही एक पक्ष है, जिसे देख पाना एक साधारण जीव के लिए अत्यंत दुष्कर है।

### श्लोक संख्या: 11.24

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् |  
दृष्ट्वा हि त्वा प्रव्यथितान्तरात्मा धृतिं न विन्दामि शमं च विष्णो || 24 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे विष्णु! आकाश को स्पर्श करने वाले, देदीप्यमान, अनेक वर्णों से युक्त, खुले हुए मुख और चमकते हुए विशाल नेत्रों वाले आपको देखकर भयभीत अंतःकरण वाला मैं न धैर्य धारण कर पा रहा हूँ और न शांति ही प्राप्त कर रहा हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन की स्थिति अब अत्यंत दयनीय हो गई है। वे कहते हैं कि "हे विष्णु! आपका यह आकाशगामी रूप देखकर मेरा मन कांप रहा है। न मुझे कहीं चैन मिल रहा है, न ही मैं खुद को संभाल पा रहा हूँ।" यह ईश्वर के उस तेज का प्रभाव है जिसे मनुष्य की बुद्धि सहन नहीं कर पाती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की प्रचंड शक्ति का साक्षात्कार होने पर मनुष्य का अहंकार और धैर्य पूरी तरह गल जाता है।

### श्लोक संख्या: 11.25

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि |  
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास || 25 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

दाढ़ों के कारण विकराल और प्रलय की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देखकर मुझे दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है और न ही सुख मिल रहा है। हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन को अब दिशाएं भी नहीं सूझ रही हैं। उन्हें हर तरफ विनाशकारी अग्नि और काल के मुख दिख रहे हैं। वे घबराकर भगवान से प्रार्थना करते हैं कि "हे प्रभो! अपनी प्रसन्नता लौटा लाइये, मुझे अब भय लग रहा है।"

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब ईश्वर का संहारक रूप प्रकट होता है, तब जीव केवल उनकी दया और प्रसन्नता की ही भीख मांगता है।

### श्लोक संख्या: 11.26-27

अमी च त्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः |  
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः || 26 ||  
वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि |  
केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु संदृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः || 27 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वे धृतराष्ट्र के सभी पुत्र राजाओं के समूहों सहित और भीष्म, द्रोण तथा वह कर्ण भी, हमारे पक्ष के मुख्य योद्धाओं के साथ आपके विकराल दाढ़ों वाले भयानक मुखों में बड़ी तेजी से प्रवेश कर रहे हैं। उनमें से कई तो आपके दांतों के बीच में फँसे हुए और पिसे हुए सिरों के साथ दिखाई दे रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ अर्जुन को भविष्य दिखाई दे रहा है। जिन योद्धाओं (भीष्म, द्रोण, कर्ण) से वे डर रहे थे, उन्हें वे साक्षात् काल के मुख में समाते देख रहे हैं। यह इस बात का संकेत है कि युद्ध का निर्णय तो पहले ही हो चुका है; भगवान ने सबको काल के ग्रास में ले लिया है, अर्जुन तो बस एक माध्यम बनेंगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समय (काल) अनिवार्य रूप से सबका अंत करता है, और बड़ी से बड़ी शक्ति भी उसके सामने टिक नहीं सकती।

### श्लोक संख्या: 11.28

यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति |  
तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति || 28 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जैसे नदियों के बहुत से जल-प्रवाह स्वाभाविक रूप से समुद्र की ओर ही दौड़ते हैं, वैसे ही वे मनुष्य लोक के वीर योद्धा आपके प्रज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान ने एक सुंदर उदाहरण दिया है। जैसे नदियाँ चाहे कितनी भी वेगवती क्यों न हों, अंततः समुद्र में ही विलीन होती हैं, वैसे ही संसार के पराक्रमी योद्धा अंततः मृत्यु (काल) के मुख में ही समा जाते हैं। यह संसार का शाश्वत नियम है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मृत्यु जीवन का वह अंतिम सत्य है जिसमें संसार की समस्त गतियाँ और शक्तियाँ समाहित हो जाती हैं।

### श्लोक संख्या: 11.29

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।  
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ 29 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जैसे पतंगे मोहवश नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में बड़ी तेजी से प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने विनाश के लिए आपके मुखों में बड़ी तेजी से समा रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन देख रहे हैं कि जैसे पतंगा आग की चमक से सम्मोहित होकर खुद को जला देता है, वैसे ही संसार के जीव अपने अहंकार और मोह में अंधे होकर मृत्यु की ओर भागे जा रहे हैं। विनाश का यह दृश्य अत्यंत तीव्र और अवश्यंभावी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मोह और अज्ञानवश जीव स्वयं ही अपने विनाश की ओर खिंचा चला जाता है।

### श्लोक संख्या: 11.30

लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।  
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ 30 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे विष्णो! आप अपने प्रज्वलित मुखों द्वारा संपूर्ण लोकों को सब ओर से निगलते हुए चाट रहे हैं। आपका उग्र प्रकाश अपने तेज से पूरे जगत को परिपूर्ण करके तपा रहा है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान का वह विराट मुख अब एक धधकती भट्टी की तरह लग रहा है जो सब कुछ भस्म कर रहा है। अर्जुन को अब प्रभु की सौम्यता नहीं, बल्कि उनका वह भयानक संहारक रूप दिख रहा है जो सृष्टि के नवीनीकरण के लिए पुराने का अंत कर रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की शक्ति जब संहार पर आती है, तो कुछ भी शेष नहीं बचता।

### श्लोक संख्या: 11.31

आख्याहि मे को भवानुग्रूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।  
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ 31 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे उग्र रूप वाले! मुझे बताइये कि आप वास्तव में कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो, आप प्रसन्न हों। मैं आप आदि पुरुष को तत्व से जानना चाहता हूँ, क्योंकि मैं आपकी इस चेष्टा (प्रवृत्ति) को समझ नहीं पा रहा हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन पूरी तरह चकित और डरे हुए हैं। वे अपने सखा कृष्ण को इस रूप में देखकर पहचान नहीं पा रहे। वे पूछते हैं, "प्रभु, आपकी इस विनाशकारी लीला का उद्देश्य क्या है? आप इस समय क्या करना चाह रहे हैं?" यह जिज्ञासा उस सत्य को जानने की है जो विनाश के पीछे छिपा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब ईश्वर की लीला समझ से बाहर हो जाए, तब केवल प्रार्थना और समर्पण ही मार्ग दिखाता है।

### श्लोक संख्या: 11.32

श्रीभगवानुवाच  
कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।  
ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ 32 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—मैं लोकों का नाश करने वाला बड़ा हुआ 'काल' (समय) हूँ। इस समय मैं लोकों का संहार करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। प्रतिपक्षी सेनाओं में जो भी योद्धा स्थित हैं, वे तेरे युद्ध न करने पर भी जीवित नहीं बचेंगे।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता का अत्यंत शक्तिशाली श्लोक है। भगवान् कहते हैं कि मैं 'समय' हूँ। समय सबको निगल जाता है। अर्जुन, तुम यह मत सोचो कि तुम युद्ध करोगे तभी ये लोग मरेंगे। इन सबका समय पूरा हो चुका है, इनका अंत निश्चित है। तुम लड़ो या न लड़ो, ये सब काल के द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... काल के विधान के आगे किसी की नहीं चलती; जो होना है, वह परमात्मा के विधान में पहले ही तय हो चुका है।

### श्लोक संख्या: 11.33

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम् ।  
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ 33 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए तू उठ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर समृद्ध राज्य का उपभोग कर। ये सब पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, हे सव्यसाचिन् (बाएं हाथ से बाण चलाने वाले अर्जुन)! तू तो केवल 'निमित्त मात्र' बन जा।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन को कर्म के लिए प्रेरित कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जब मैंने इन्हें मार ही दिया है, तो तुम क्यों पीछे हट रहे हो? तुम बस एक औजार (निमित्त) बन जाओ। यश तुम्हें मिलेगा, राज्य तुम्हें मिलेगा, पर काम मेरा होगा। यह 'निमित्त मात्र' का भाव ही कर्मयोग की पराकाष्ठा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हम केवल ईश्वर के हाथों के यंत्र हैं; कर्तापन का अहंकार छोड़कर कर्तव्य करना ही श्रेष्ठता है।

### श्लोक संख्या: 11.34

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथान्यानपि योधवीरान् ।  
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ 34 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, जयद्रथ, कर्ण तथा अन्य बहुत से वीर योद्धा मेरे द्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं। तू उन्हें मार! भयभीत मत हो और युद्ध कर। युद्ध में तू निश्चित ही अपने शत्रुओं को जीतेगा।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन जिन योद्धाओं के सामने शस्त्र उठाने से कांप रहे थे, भगवान ने उनके वध का आश्वासन दे दिया। वे कहते हैं कि जिनकी मृत्यु तुम्हारे लिए असंभव लग रही है, उन्हें मैंने पहले ही समाप्त कर दिया है। तुम बस अपना धर्म निभाओ और जीत का वरण करो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब ईश्वर का साथ हो और धर्म की राह हो, तो विजय सुनिश्चित है।

### श्लोक संख्या: 11.35

सञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी |

नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य || 35 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—केशव के इन वचनों को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन ने हाथ जोड़कर कांपते हुए भगवान कृष्ण को नमस्कार किया और अत्यंत भयभीत होकर, गद्गद वाणी से प्रणाम करते हुए इस प्रकार कहा।

#### सरल व्याख्या:

भगवान की वाणी सुनकर अर्जुन का हृदय भर आया। वे कांप रहे हैं, उनकी आवाज लड़खड़ा रही है (गद्गद)। यह भय भी है और असीम श्रद्धा भी। वे समझ चुके हैं कि उनके सामने साक्षात् ब्रह्मांड का स्वामी खड़ा है, जो समय का भी महाकाल है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा की विराटता का अनुभव होने पर जीव का हृदय पूरी तरह द्रवित हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 11.36

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च |

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्गाः || 36 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे हृषीकेश! यह ठीक ही है कि आपके नाम और महिमा के कीर्तन से जगत हर्षित हो रहा है और अनुराग (प्रेम) को प्राप्त हो रहा है। राक्षस लोग भयभीत होकर दिशाओं में भाग रहे हैं और समस्त सिद्धगण आपको नमस्कार कर रहे हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन कहते हैं कि प्रभु, आपकी महिमा ऐसी है कि जो आपसे प्रेम करते हैं, उन्हें आनंद मिलता है, और जो आपसे बैर रखते हैं (राक्षसी वृत्ति वाले), वे आपके तेज के सामने टिक नहीं पाते और भाग खड़े होते हैं। यह सृष्टि का न्याय है कि बुराई आपसे डरती है और अच्छाई आपमें शरण पाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की सत्ता भक्तों के लिए आनंद और दुष्टों के लिए भय का कारण होती है।



### श्लोक संख्या: 11.37

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे |  
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् || 37 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महात्मन! वे आपको नमस्कार क्यों न करें? आप ब्रह्मा के भी आदि कर्ता और सबसे बड़े हैं। हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! आप ही अक्षर (अविनाशी), सत् (विद्यमान), असत् (अविद्यमान) और उनसे परे जो परम तत्व है, वह भी आप ही हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन तर्क दे रहे हैं कि आपकी पूजा क्यों न हो? आप तो उनके भी रचयिता हैं जिन्हें हम रचनाकार (ब्रह्मा) कहते हैं। जो दिखता है और जो नहीं दिखता, उन सबके पीछे जो असली सत्ता है, वह आप ही हैं। आप समस्त सीमाओं से परे 'अनन्त' हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा समस्त कारणों के मूल कारण और सबसे श्रेष्ठ पूजनीय सत्ता हैं।

### श्लोक संख्या: 11.38

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् |  
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप || 38 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

आप आदि देव और सनातन पुरुष हैं; आप इस जगत के परम आधार हैं। आप ही जानने वाले (ज्ञाता) हैं और जानने योग्य (ज्ञान) भी आप ही हैं तथा आप ही परम धाम हैं। हे अनन्त रूप! आपसे ही यह संपूर्ण जगत व्याप्त है।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन कह रहे हैं कि प्रभु, इस संसार को जानने वाले भी आप हैं और जो कुछ जाना जा सकता है, वह भी आप ही हैं। आप ही वह अंतिम स्थान हैं जहाँ पहुँचकर जीव मुक्त हो जाता है। यह सारा विश्व आपके ही शरीर का विस्तार है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—इन तीनों रूपों में केवल एक परमात्मा ही स्थित है।

### श्लोक संख्या: 11.39

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च |  
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते || 39 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

आप ही वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चंद्रमा, प्रजापति (ब्रह्मा) और प्रपितामह (ब्रह्मा के भी पिता) हैं। आपको हजारों बार नमस्कार हो! आपके लिए बार-बार, फिर-फिर नमस्कार हो!

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन देख रहे हैं कि प्रकृति की जितनी भी संचालक शक्तियाँ हैं, वे सब कृष्ण के ही विभिन्न रूप हैं। वे इतने अभिभूत हैं कि उनके पास शब्द कम पड़ रहे हैं, इसलिए वे बार-बार केवल 'नमस्कार' कर रहे हैं। वे स्वीकार करते हैं कि आप ही सृष्टि के आदि पुरुष और सबके मूल पूर्वज हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही समस्त प्राकृतिक शक्तियों और सृजन के आदिकर्ता हैं, जिनके प्रति केवल पूर्ण समर्पण ही हमारी एकमात्र प्रतिक्रिया होनी चाहिए।

### श्लोक संख्या: 11.40

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व |  
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः || 40 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे सर्वस्वरूप! आपको आगे से नमस्कार, पीछे से नमस्कार और सब ओर से ही नमस्कार हो। हे अनंत सामर्थ्य वाले! आप असीम पराक्रम के स्वामी हैं। आप सब कुछ व्याप्त किए हुए हैं, इसलिए आप ही 'सब' (सर्वरूप) हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन की दृष्टि जहाँ भी जाती है, उन्हें भगवान ही दिखते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि मैं आपको किस दिशा से नमन करूँ? आप तो हर तरफ हैं। आपकी शक्ति और पराक्रम की कोई सीमा नहीं है। जैसे सूत के बिना कपड़ा नहीं होता, वैसे ही आपके बिना यह संसार नहीं है; इसलिए आप ही सब कुछ हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की सर्वव्यापकता को पहचान लेने के बाद साधक को हर कण में परमात्मा के ही दर्शन होते हैं।

## श्लोक संख्या: 11.41-42

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति |

अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि || 41 ||

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु |

एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् || 42 ||

### हिन्दी अनुवाद:

आपकी इस महिमा को न जानते हुए, मेरे द्वारा प्रमाद (अज्ञान) से या प्रेमवश, "हे कृष्ण!", "हे यादव!", "हे सखे!"—इस प्रकार हठपूर्वक जो कुछ भी कहा गया है; और हे अच्युत! हँसी-मजाक में, चलते-फिरते, सोते, बैठते या भोजन के समय, अकेले में या दूसरों के सामने जो आपका अपमान हुआ है, उन सबके लिए मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।

### सरल व्याख्या:

विराट रूप देखने के बाद अर्जुन को अपनी छोटी सोच पर पछतावा हो रहा है। वे कहते हैं, "प्रभु! मैं आपको केवल अपना मित्र समझता रहा। मैंने कभी आपको नाम से पुकारा, कभी मजाक उड़ाया। मुझे पता ही नहीं था कि मेरे साथ बैठने वाला यह साधारण सखा साक्षात् ब्रह्मांड का स्वामी है।" यह भक्त की अत्यंत विनम्र और व्याकुल अवस्था है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अज्ञानवश हम ईश्वर को अपनी सीमाओं में बाँध लेते हैं, पर ज्ञान होने पर अहंकार गल जाता है और केवल पश्चाताप व विनम्रता शेष रहती है।

## श्लोक संख्या: 11.43

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् |

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः || 43 ||

### हिन्दी अनुवाद:

आप इस चराचर जगत के पिता हैं और सबसे बड़े पूजनीय गुरु हैं। हे अनुपम प्रभाव वाले! तीनों लोकों में आपके समान भी कोई दूसरा नहीं है, फिर आपसे अधिक तो कोई कैसे हो सकता है?

### सरल व्याख्या:

अर्जुन स्वीकार करते हैं कि ज्ञान देने में आप सर्वश्रेष्ठ गुरु हैं और जन्म देने में सर्वश्रेष्ठ पिता। इस पूरे ब्रह्मांड में आपकी टक्कर का कोई नहीं है। जब कोई आपके बराबर ही नहीं है, तो आपसे बड़ा होने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। आप अद्वितीय (Unique) हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा सर्वोच्च सत्ता है, जिनसे श्रेष्ठ या जिनके समान ब्रह्मांड में कोई दूसरा तत्व नहीं है।

### श्लोक संख्या: 11.44

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमिशमीड्यम् ।  
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ 44 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अतः मैं शरीर को चरणों में डालकर और भली-भाँति प्रणाम करके, आप स्तुति करने योग्य ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव! जैसे पिता पुत्र के, मित्र मित्र के और पति अपनी प्रिय पत्नी के अपराधों को सह लेता है, वैसे ही आप भी मेरे अपराधों को क्षमा करने योग्य हैं।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन साष्टांग प्रणाम करके भगवान की कृपा माँग रहे हैं। वे बहुत सुंदर तर्क देते हैं—जैसे पिता अपने बच्चे की गलतियों को दिल से नहीं लगाता या मित्र अपने मित्र की कड़वी बातों को भुला देता है, वैसे ही आप भी मेरी भूलों को क्षमा कर दें। वे भगवान से 'सखा' वाले पुराने संबंध की सहजता की याचना कर रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर केवल न्यायकर्ता ही नहीं, बल्कि परम करुणामय पिता और मित्र भी हैं जो सच्चे हृदय से माँगी गई क्षमा को स्वीकार करते हैं।

### श्लोक संख्या: 11.45

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।  
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ 45 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

पहले कभी न देखे गए आपके इस आश्चर्यमय रूप को देखकर मैं हर्षित हो रहा हूँ, किंतु मेरा मन भय से अत्यंत व्याकुल भी है। इसलिए हे देव! आप अपने उसी (सौम्य) रूप को मुझे दिखाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइये।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन की स्थिति मिश्रित है। उन्हें खुशी है कि उन्होंने वह देख लिया जो दुर्लभ है, पर वह विराटता इतनी प्रचंड है कि वे उसे और अधिक सहन नहीं कर पा रहे। वे घबराकर वापस उसी पुराने, परिचित और शांत कृष्ण के दर्शन करना चाहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की प्रचंड शक्ति विस्मय तो जगाती है, पर जीव का मन उनके सौम्य और प्रेममय रूप में ही शांति पाता है।

### श्लोक संख्या: 11.46

किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वा द्रष्टुमहं तथैव |  
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते || 46 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं आपको वैसे ही मुकुट धारण किए हुए तथा हाथ में गदा और चक्र लिए हुए देखना चाहता हूँ। हे सहस्रबाहो! हे विश्वरूप! आप अपने उसी चतुर्भुज रूप में प्रकट होइये।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन प्रार्थना करते हैं कि हे हजारों हाथों वाले प्रभु! अब आप अपनी इस अनंत भुजाओं को समेट लीजिये और अपने उस सुंदर चतुर्भुज (विष्णु) रूप में आ जाइये जिसे देखना सुखद है। वे विराटता के आतंक से निकलकर भक्ति की कोमलता में लौटना चाहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भक्त के लिए भगवान का वह रूप ही सबसे प्रिय है जो उसके साथ प्रेम और संवाद का संबंध बना सके।

### श्लोक संख्या: 11.47

श्रीभगवानुवाच  
मया प्रसन्नं तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् |  
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् || 47 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन! तुझ पर प्रसन्न होकर मैंने अपनी योग-शक्ति से अपना यह परम तेजोमय, अनंत, सबका आदि और श्रेष्ठ विश्वरूप तुझे दिखाया है, जिसे तेरे सिवा पहले किसी ने नहीं देखा था।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् कहते हैं कि अर्जुन, यह जो तुमने देखा, यह कोई डराने वाली चीज नहीं बल्कि मेरी विशेष कृपा है। यह मेरा सबसे ऊँचा स्वरूप है। जो ऋषि-मुनि युगों तक तपस्या करते हैं, उन्हें भी यह दर्शन दुर्लभ है। मैंने यह केवल इसलिए दिखाया क्योंकि मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा का साक्षात्कार किसी योग्यता से नहीं, बल्कि केवल उनकी प्रसन्नता और अनुग्रह से ही संभव है।

### श्लोक संख्या: 11.48

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।

एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ 48 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुरुश्रेष्ठ! मनुष्य लोक में इस प्रकार के विश्वरूप वाला मैं न वेदों के अध्ययन से, न यज्ञों से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपस्याओं से ही तेरे अतिरिक्त किसी दूसरे द्वारा देखा जा सकता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि केवल बाहरी कर्मकांडों से उन्हें नहीं पाया जा सकता। कोई चाहे कितना ही दान दे दे या कठिन तप कर ले, वह मेरे इस असली स्वरूप को तब तक नहीं देख सकता जब तक उसके भीतर 'अनन्य भक्ति' न हो। अर्जुन, तुमने इसे देखा क्योंकि तुम मेरे अनन्य प्रेमी हो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर को जानने के लिए आंतरिक प्रेम और निष्काम भक्ति ही एकमात्र चाबी है, बाहरी साधन नहीं।

### श्लोक संख्या: 11.49

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्मदम् ।

व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ 49 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूप को देखकर तुझे व्यथा (पीड़ा) नहीं होनी चाहिए और न ही मूढ़भाव (मोह) होना चाहिए। तू भयरहित और प्रसन्न मन वाला होकर, मेरे उसी (पहले वाले) रूप को फिर से देख।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन को सांत्वना दे रहे हैं कि उनके उग्र रूप को डराने के लिए नहीं, बल्कि सत्य का बोध कराने के लिए दिखाया गया था। वे अब अर्जुन को अपने सौम्य रूप में लौटने का आश्वासन दे रहे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा का उग्र रूप ज्ञान के लिए है, पर उनकी कृपा और प्रेम ही साधक के भय को दूर कर उसे शांति प्रदान करते हैं।

### श्लोक संख्या: 11.50

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः ।

आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ 50 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—वासुदेव भगवान ने अर्जुन से ऐसा कहकर, फिर वैसा ही अपना (चतुर्भुज) रूप दिखाया और फिर महात्मा कृष्ण ने सौम्य शरीर वाला होकर, उस डरे हुए अर्जुन को धीरज बाँधाया।

#### सरल व्याख्या:

भगवान ने अपनी अनंत भुजाओं को समेटा और पहले अपने दिव्य चतुर्भुज रूप में तथा उसके बाद सामान्य मानवीय रूप में प्रकट हुए, जिससे अर्जुन का मन शांत हुआ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर भक्त की पुकार और उसकी मानसिक स्थिति के अनुरूप अपनी महानता को समेट कर सौम्यता धारण कर लेते हैं।

### श्लोक संख्या: 11.51

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ।

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ 51 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे जनार्दन! आपके इस अति शांत मनुष्य रूप को देखकर अब मैं स्थिर-चित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ।

#### सरल व्याख्या:

विराट रूप के विस्मय से बाहर आकर अर्जुन अब सहज महसूस कर रहे हैं। उन्हें अपने मित्र और सखा का वही चिर-परिचित चेहरा देखकर मानसिक राहत मिली है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीव की चेतना अनंत की विराटता को अधिक समय तक सहन नहीं कर पाती; वह प्रेममय और सगुण रूप में ही स्थिरता पाती है।

### श्लोक संख्या: 11.52

श्रीभगवानुवाच

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ।

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ 52 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—मेरा यह जो रूप तूने देखा है, इसके दर्शन अत्यंत दुर्लभ हैं। देवता भी सदा इस रूप के दर्शनों की आकांक्षा करते रहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अर्जुन को उस दर्शन का महत्व समझा रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जिसे बड़े-बड़े देवता भी तरसते हैं, वह दिव्य अनुभव मैंने केवल तुम्हें दिया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा का वास्तविक और विराट् स्वरूप भौतिक नेत्रों या देव-शक्तियों के लिए भी दुर्लभ है, वह केवल विशेष कृपा से प्राप्त होता है।

### श्लोक संख्या: 11.53

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।

शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ 53 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस प्रकार तूने मुझे देखा है, इस प्रकार मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् स्पष्ट करते हैं कि ज्ञान, तपस्या और बाहरी कर्मकांड ईश्वर को जानने में सहायक तो हो सकते हैं, पर उनके साक्षात् दर्शन के लिए ये पर्याप्त नहीं हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल बाहरी साधनाओं और कर्मों के अहंकार से परमात्मा की वास्तविकता का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता।



### श्लोक संख्या: 11.54

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन |  
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप || 54 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्ति (बिना किसी अन्य सहारे की भक्ति) के द्वारा ही मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ, तत्व से जाना जा सकता हूँ और मुझमें प्रवेश किया जा सकता है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान ने 'अनन्य भक्ति' को ही ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र माध्यम बताया है। जब भक्त के मन में केवल ईश्वर रह जाता है, तब वह उन्हें जान भी सकता है और उनमें लीन भी हो सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पूर्ण समर्पण और अनन्य प्रेम ही वह चाबी है जो ईश्वर के साक्षात्कार के द्वार खोलती है।

### श्लोक संख्या: 11.55

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः |  
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव || 55 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पाण्डव! जो पुरुष केवल मेरे लिए ही कर्म करता है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्ति से रहित है और संपूर्ण प्राणियों में वैर भाव से रहित है, वह मुझे ही प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

यह अध्याय 11 का अंतिम निष्कर्ष है। भगवान पाँच सूत्र देते हैं: निष्काम कर्म, ईश्वर परायणता, भक्ति, अनासक्ति और सब जीवों के प्रति करुणा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना किसी शत्रुता और बिना किसी स्वार्थ के कर्म करना ही भक्त को सीधे परमात्मा से जोड़ता है।

॥ ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



## अध्याय 12: भक्तियोग

Satyaaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 12.1

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते |

ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः || 1 ||

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—जो निरंतर आपके भजन-ध्यान में लगे रहकर आप सगुण रूप (साकार) की उपासना करते हैं और जो अविनाशी निराकार (अव्यक्त) की उपासना करते हैं, उन दोनों प्रकार के योगियों में श्रेष्ठ कौन है?

### सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ साकार (मूर्ति या रूप) और निराकार (बिना रूप) की पूजा के बीच का अंतर और श्रेष्ठता पूछ रहे हैं, जो हर साधक के मन में उठने वाला प्रश्न है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... साधना के विभिन्न मार्गों के प्रति जिज्ञासा और सही मार्ग का चयन ही शिष्य की उन्नति का आधार है।

## श्लोक संख्या: 12.2

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते |

श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः || 2 ||

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—मुझमें मन को एकाग्र करके जो भक्त निरंतर मेरे भजन-ध्यान में लगे रहते हैं और परम श्रद्धा से युक्त होकर मेरी उपासना करते हैं, वे मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ योगी हैं।

### सरल व्याख्या:

भगवान् ने स्पष्ट किया कि साकार रूप में मन लगाना आसान है और जो अटूट श्रद्धा से ऐसा करते हैं, वे योग में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की एकाग्रता और तीव्र श्रद्धा ही भक्ति की सफलता का मुख्य मापदंड है।

### श्लोक संख्या: 12.3

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते |

सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् || 3 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

किंतु जो लोग इंद्रियों को वश में करके उस अनिर्देश्य (जिसे बताया न जा सके), अव्यक्त (निराकार), सर्वव्यापी, अचिन्त्य (सोच से परे), कूटस्थ (अविनाशी), अचल और ध्रुव (नित्य) अक्षर ब्रह्म की उपासना करते हैं...

#### सरल व्याख्या:

भगवान निराकार उपासना की गंभीरता को बता रहे हैं। वे कहते हैं कि निराकार की साधना करने वाले भी सत्य के खोजी हैं, पर इसके लिए इंद्रियों पर कठोर नियंत्रण चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निराकार ब्रह्म की साधना बुद्धि और इंद्रियों के पूर्ण निग्रह की अपेक्षा रखती है, जो अत्यंत सूक्ष्म मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 12.04

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः |

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः || 4 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अपनी समस्त इंद्रियों को अच्छी तरह वश में करके, सभी परिस्थितियों में समान बुद्धि वाले और समस्त प्राणियों के कल्याण में लगे हुए लोग भी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जो साधक अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण रखते हैं, सुख और दुःख में विचलित नहीं होते और जिनका हृदय हर छोटे-बड़े जीव के भले के लिए काम करता है, वे निराकार (बिना रूप वाले) ब्रह्म की साधना के माध्यम से भी अंततः मुझ परमेश्वर को ही प्राप्त करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इंद्रिय संयम, मानसिक समता और प्राणिमात्र के प्रति दया भाव रखना ही आध्यात्मिक उन्नति की पहली और अनिवार्य शर्त है।

### श्लोक संख्या: 12.05

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ 5 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उन निराकार (अव्यक्त) ब्रह्म में आसक्त चित्त वाले मनुष्यों के मार्ग में कष्ट अधिक हैं, क्योंकि देहधारियों (शरीर अभिमानी मनुष्यों) के लिए अव्यक्त की राह बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है।

#### सरल व्याख्या:

चूँकि हम स्वयं एक शरीर धारण किए हुए हैं, इसलिए हमारा मन किसी रूप, रंग या नाम की ओर जल्दी आकर्षित होता है। बिना किसी आधार या बिना किसी आकार के ईश्वर पर मन को टिकाना बहुत कठिन और मानसिक रूप से थका देने वाला होता है, इसलिए साधारण मनुष्यों के लिए साकार भक्ति का मार्ग अधिक सुगम है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निराकार की साधना भी सत्य है, परंतु एक साधारण मनुष्य के लिए साकार (सगुण) भक्ति का मार्ग व्यावहारिक रूप से कम संघर्षपूर्ण और सहज होता है।

### श्लोक संख्या: 12.06-07

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पराः ।

अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ 6 ॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ 7 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु जो अपने समस्त कर्मों को मुझमें अर्पण करके, मेरे परायण होकर, अनन्य योग से मेरा ही ध्यान करते हुए मेरी उपासना करते हैं—हे पार्थ! मुझमें चित्त लगाने वाले उन भक्तों का मैं मृत्यु रूप संसार-सागर से शीघ्र ही उद्धार करने वाला बन जाता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक बहुत बड़ा आश्वासन देते हैं। वे कहते हैं कि जो लोग अपने जीवन के हर काम को मेरी सेवा समझकर मुझे समर्पित कर देते हैं और केवल मेरा ही आश्रय लेते हैं, उनके जीवन की नैया को इस जन्म-मृत्यु के चक्र से पार लगाने की जिम्मेदारी स्वयं मेरी हो जाती है। मैं उन्हें बहुत जल्दी इस भवसागर से निकाल लेता हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब भक्त अपने कर्म और मन पूरी तरह ईश्वर को सौंप देता है, तो परमात्मा स्वयं आगे बढ़कर उसकी रक्षा और मुक्ति का दायित्व संभाल लेते हैं।

### श्लोक संख्या: 12.08

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।  
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ 8 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तू मुझमें ही अपने मन को लगा और मुझमें ही अपनी बुद्धि को स्थिर कर; इसके बाद तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अपनी भावनाओं (मन) को मुझसे जोड़ो और अपने विचारों व निर्णयों (बुद्धि) को मुझ पर एकाग्र करो। जब तुम्हारी चेतना के ये दोनों स्तर मुझसे युक्त हो जाएंगे, तो तुम इस भौतिक संसार में रहते हुए भी आत्मिक रूप से सदैव मेरे दिव्य स्वरूप में ही निवास करोगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन और बुद्धि का ईश्वर की इच्छा और स्वरूप में पूरी तरह एकाकार हो जाना ही वास्तविक योग की पराकाष्ठा है।

### श्लोक संख्या: 12.09

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।  
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय ॥ 9 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनंजय! यदि तू मन को मुझमें अचल भाव से स्थिर करने में समर्थ नहीं है, तो 'अभ्यास योग' (बार-बार किए जाने वाले प्रयास) के द्वारा मुझे प्राप्त करने की इच्छा कर।

#### सरल व्याख्या:

भगवान मानव स्वभाव को भली-भाँति जानते हैं कि मन चंचल है और तुरंत एकाग्र नहीं होता। इसलिए वे एक विकल्प देते हैं: यदि एक बार में मन न लगे, तो निराश मत हो। जब-जब मन भटक कर बाहर जाए, उसे खींचकर वापस लाओ। इस 'अभ्यास' से धीरे-धीरे मन स्थिर होने लगेगा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... चंचल मन को वश में करने का एकमात्र व्यावहारिक साधन निरंतर और धैर्यपूर्वक किया जाने वाला 'अभ्यास' ही है।

### श्लोक संख्या: 12.10

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव |  
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि तू इस अभ्यास में भी असमर्थ है, तो मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो जा। मेरे निमित्त (मेरी प्रसन्नता के लिए) कर्मों को करता हुआ भी तू परम गति को प्राप्त करेगा।

#### सरल व्याख्या:

यदि आपकी जीवनशैली ऐसी है कि आप एकांत में बैठकर अभ्यास या ध्यान नहीं कर सकते, तो भगवान कहते हैं कि तुम समाज में रहकर जो भी कर्तव्य कर्म कर रहे हो—चाहे वह घर का काम हो या व्यवसाय—उसे यह सोचकर करो कि "यह कार्य मैं ईश्वर की प्रसन्नता के लिए कर रहा हूँ।" इस सेवा भाव से किए गए कर्म भी तुम्हें पवित्र कर देंगे।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने दैनिक कर्तव्यों को ईश्वर की पूजा या सेवा मानकर करना भी साधक को सर्वोच्च आध्यात्मिक सिद्धि तक पहुँचा देता है।

### श्लोक संख्या: 12.11

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः |  
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् || 11 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि तू इसे करने में भी असमर्थ है, तो मेरे योग के आश्रित होकर, मन और बुद्धि को वश में कर और सब कर्मों के फलों का त्याग कर।

#### सरल व्याख्या:

भगवान करुणावश मार्ग को और सरल करते हैं। वे कहते हैं कि यदि तुम्हारे भीतर अभी इतना समर्पण नहीं आया कि हर काम को मेरा काम समझ सको, तो कम से कम इतना करो कि जो भी काम करो, उसके 'परिणाम' (नतीजे) से मत जुड़ो। सफलता मिले या विफलता, उसे सहजता से स्वीकार करो और फल की चिंता छोड़ दो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म के परिणामों के प्रति अपनी अत्यधिक आसक्ति या चिंता को छोड़ देना ही मानसिक तनाव से मुक्ति और शांति का मूल मंत्र है।



## श्लोक संख्या: 12.12

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते |  
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् || 12 ||

### हिन्दी अनुवाद:

बिना समझ के किए जाने वाले अभ्यास से 'ज्ञान' श्रेष्ठ है; ज्ञान से 'ध्यान' श्रेष्ठ है और ध्यान से भी 'कर्मफल का त्याग' श्रेष्ठ है, क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शांति प्राप्त होती है।

### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक सीढ़ी बताते हैं: लकीर के फ़कीर बनकर अभ्यास करने से बेहतर है कि बात को समझा जाए (ज्ञान)। ज्ञान से गहरा है उस पर मनन करना (ध्यान)। लेकिन इन सबसे भी व्यावहारिक और तुरंत फल देने वाला है 'कर्मफल का त्याग'। जैसे ही मनुष्य भविष्य की चिंताओं और इच्छाओं का बोझ पटक देता है, उसका मन उसी क्षण शांत हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समस्त साधनाओं का व्यावहारिक निचोड़ इच्छाओं और फलों के प्रति मोह को छोड़ना है, क्योंकि असली शांति त्याग के तुरंत बाद मिलती है।

## श्लोक संख्या: 12.13

अद्वेषा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च |  
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी || 13 ||

### हिन्दी अनुवाद:

जो किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करता, जो सबका मित्र है और दयालु है, जो ममता (मेरा-तेरा) और अहंकार (मैं-पन) से रहित है, सुख-दुःख में समान रहने वाला और क्षमावान है...

### सरल व्याख्या:

यहाँ से भगवान अपने 'प्रिय भक्त' के आंतरिक गुणों का चित्र खींचते हैं। सच्चा भक्त वह नहीं है जो केवल मंदिर में बैठता है, बल्कि वह है जिसके मन में किसी के लिए नफरत नहीं होती। वह बिना किसी स्वार्थ के सबका मित्र बनता है, कमज़ोरों पर दया करता है, घमंड और स्वामित्व की भावना से दूर रहता है और विपरीत परिस्थितियों में भी शांत रहकर दूसरों को माफ कर देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर का प्रिय बनने के लिए केवल धार्मिक क्रियाएँ काफी नहीं हैं, बल्कि चरित्र में करुणा, निरहंकारिता और क्षमाशीलता जैसे मानवीय गुणों का उतरना आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 12.14

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो निरंतर संतुष्ट है, मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किए हुए है, दृढ़ निश्चय वाला है और मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धि वाला है—वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि मेरा वह भक्त मुझे बहुत प्यारा है जो हर हाल में खुश रहता है। उसे संसार से कोई शिकायत नहीं होती। उसका अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण होता है, उसका संकल्प पक्का होता है और वह अपनी हर सोच और निर्णय को मुझे समर्पित करके जीता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आंतरिक संतोष, अडिग संकल्प और अपनी बुद्धि को ईश्वर के चरणों में सौंप देना ही एक सच्चे भक्त की असली पहचान है।

### श्लोक संख्या: 12.15

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिससे कोई भी जीव उद्वेग (दुःख या अशांति) को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष (ईर्ष्या), भय और उद्वेगों से मुक्त है—वह मुझे प्रिय है।

#### सरल व्याख्या:

सच्चा भक्त वह है जिसके व्यवहार से संसार के किसी प्राणी को दुःख या डर नहीं पहुँचता, और न ही वह दूसरों के गलत व्यवहार से खुद परेशान होता है। वह बहुत अधिक खुश होने (अहंकार), दूसरों की तरक्की देखकर जलने, किसी बात से डरने या मानसिक रूप से बेचैन होने की आदतों से ऊपर उठ चुका होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मिक शांति और दूसरों के लिए हानिरहित होना ही भक्ति का व्यावहारिक रूप है; भक्त न तो किसी को सताता है और न ही किसी से त्रस्त होता है।

### श्लोक संख्या: 12.16

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।

सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

जो आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर (कर्तव्य पालन में कुशल), पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है तथा सब प्रकार के स्वार्थपूर्ण प्रयत्नों का त्यागी है—वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान को वह भक्त प्रिय है जो किसी से कोई उम्मीद नहीं रखता, जिसका तन और मन साफ है, जो अपने काम को पूरी कुशलता से करता है पर किसी गुटबाज़ी या पक्षपात में नहीं पड़ता। उसे भूतकाल का कोई पछतावा या दुःख नहीं सताता और वह केवल अपने फायदे के लिए नए-नए प्रपंच (स्वार्थपूर्ण कार्य) नहीं रचता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्पक्षता, आंतरिक व बाहरी पवित्रता और व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किए जाने वाले कार्यों का त्याग ही मनुष्य को ईश्वर के निकट लाता है।

### श्लोक संख्या: 12.17

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।

शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मफलों का त्यागी है—वह भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

#### सरल व्याख्या:

सच्चा साधक अनुकूल समय में बहुत नाचता नहीं और प्रतिकूल समय में किसी से नफरत नहीं करता। कुछ खो जाने पर वह विलाप नहीं करता और भविष्य के लिए नई इच्छाएं नहीं पालता। वह अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों के फलों को ईश्वर का विधान मानकर समभाव से स्वीकार कर लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मानसिक समता की वह अवस्था जहाँ अनुकूलता और प्रतिकूलता मन को विचलित न कर सकें, वही वास्तविक भक्ति का लक्षण है।

## श्लोक संख्या: 12.18-19

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः |

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः || 18 ||

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् |

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः || 19 ||

### हिन्दी अनुवाद:

जो शत्रु और मित्र में तथा मान और अपमान में सम है; सर्दी-गर्मी और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है; जो निन्दा और स्तुति को समान समझने वाला, मननशील (मौन रहने वाला), जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने पर संतुष्ट रहने वाला, रहने के स्थान में ममता से रहित और स्थिर बुद्धि वाला है—वह भक्तिमान् मनुष्य मुझे प्रिय है।

### सरल व्याख्या:

भगवान् अपने प्रिय भक्त की परिभाषा को समेटते हुए कहते हैं कि उसे चाहे कोई अपना समझे या पराया, चाहे कोई उसकी तारीफ करे या बुराई, चाहे समाज उसे सम्मान दे या अपमान—उसका मन हमेशा शांत रहता है। वह मौसम की मार (सर्दी-गर्मी) और जीवन के उतार-चढ़ाव (सुख-दुःख) को सहज लेता है। वह व्यर्थ की बातें करने के बजाय अंतर्मुखी (मौन) रहता है, जो मिल जाए उसी में खुश रहता है और मकान या संपत्ति में 'यह मेरा है' जैसी ममता नहीं रखता। उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार के सभी द्वन्द्वों (जैसे मान-अपमान, लाभ-हानि) से ऊपर उठकर अपनी बुद्धि को आत्मा में स्थिर कर लेना ही भक्त को परमात्मा का अत्यंत प्रिय पात्र बना देता है।

**श्लोक संख्या: 12.20**

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते |

श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः || 20 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

परन्तु जो श्रद्धालु पुरुष मेरे परायण होकर, इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को (सद्गुणों की शिक्षा को) निष्काम भाव से श्रवण और आचरण करते हैं, वे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं।

**सरल व्याख्या:**

यह इस अध्याय का अंतिम श्लोक है। भगवान कहते हैं कि मैंने इस अध्याय में जो भी बातें (श्लोक 13 से 19 तक) बताई हैं, वे केवल सुनने के लिए नहीं बल्कि 'धर्म रूपी अमृत' हैं। जो मनुष्य पूरी श्रद्धा के साथ इन गुणों को अपने जीवन में उतारता है और मुझे ही अपना परम लक्ष्य मानता है, वह भक्त मुझे सबसे ज्यादा, बेहद प्रिय है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर की शिक्षाओं को केवल जानना काफी नहीं है, बल्कि उन दिव्य गुणों को अपने आचरण और चरित्र में जीना ही भक्ति की पूर्णता है।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

Satyaanubhuti Ashram



## अध्याय 13: क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभाग योग

Satyaanubhuti Ashram

### श्लोक संख्या: 13.01

अर्जुन उवाच

प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।

एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ १ ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे केशव! मैं प्रकृति और पुरुष को तथा क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) को, और इसके साथ ही ज्ञान तथा जानने योग्य तत्व (ज्ञेय) को भी तत्व से जानना चाहता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन यहाँ जीवन के सबसे बड़े रहस्य को समझने के लिए प्रश्न कर रहे हैं। वे पूछ रहे हैं कि यह जो बाहर दिखने वाला संसार और हमारा शरीर है, वह क्या है? इसके भीतर जो चेतना बैठी है, वह क्या है? असली ज्ञान किसे कहते हैं और उस ज्ञान को पाकर जानने योग्य परम सत्य क्या है?

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मिक मार्ग पर बढ़ने के लिए दृश्य जगत और अदृश्य चेतना के अंतर को जानने की तीव्र जिज्ञासा होना ही पहली सीढ़ी है।

### श्लोक संख्या: 13.02

श्रीभगवानुवाच

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ २ ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—हे कुन्तीपुत्र! यह शरीर 'क्षेत्र' (खेती या मैदान) इस नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है, उसको तत्ववेत्ता महापुरुष 'क्षेत्रज्ञ' (जानने वाला) ऐसा कहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् उत्तर देते हैं कि हमारा यह जो भौतिक शरीर है, यह एक खेत की तरह है। जैसे खेत में हम जैसा बीज बोते हैं, वैसी ही फसल काटते हैं; वैसे ही इस शरीर से हम जैसे कर्म करते हैं, वैसा ही परिणाम भोगते हैं। और इस शरीर के भीतर जो 'मैं' बैठा है, जो यह जानता है कि "यह मेरा शरीर है, यह मेरी आँखें हैं, यह मेरा हाथ है"—वह जानने वाली चेतना ही आत्मा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर केवल एक साधन या माध्यम है, जबकि हमारे भीतर का वास्तविक अस्तित्व वह दृष्टा (जानने वाला) है जो इस शरीर को देख रहा है।



### श्लोक संख्या: 13.03

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत |  
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम || 3 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशी अर्जुन! तू संपूर्ण क्षेत्रों (शरीरों) में क्षेत्रज्ञ (जानने वाला) भी मुझे ही जान और क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का जो तत्व से जानना है, वही मेरे मत में वास्तविक ज्ञान है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ एक बहुत गहरी बात समझाते हैं। वे कहते हैं कि केवल तुम्हारे शरीर में ही नहीं, बल्कि संसार के हर जीव के शरीर के भीतर जो जानने वाली चेतना बैठी है, वह वास्तव में मेरा ही स्वरूप है। जो मनुष्य इस बात को समझ लेता है कि शरीर क्या है और उसके भीतर की अविनाशी सत्ता क्या है, उसी की समझ को मैं असली और सच्चा ज्ञान मानता हूँ। बाकी सब तो केवल सांसारिक कलाएँ हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार के सभी शरीरों में एक ही अविनाशी परमात्मा चेतना के रूप में निवास कर रहा है, और इस अभेद को पहचानना ही सर्वोच्च ज्ञान है।

### श्लोक संख्या: 13.04

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् |  
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु || 4 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वह क्षेत्र (शरीर) क्या है, कैसा है, किन विकारों वाला है, किस कारण से कौन सा कार्य उत्पन्न हुआ है तथा वह क्षेत्रज्ञ भी जो है और जिस प्रभाव वाला है—वह सब तू संक्षेप में मुझसे सुन।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अब मैं तुम्हें गहराई से समझाऊँगा कि यह शरीर किन तत्वों से मिलकर बना है, इसमें सुख-दुःख और काम-क्रोध जैसे बदलाव (विकार) कैसे आते हैं, यह कहाँ से पैदा होता है और इसके भीतर बैठी आत्मा की दिव्य शक्तियाँ क्या हैं। तुम इस पूरे विज्ञान को बहुत संक्षेप में और सरल तरीके से मुझसे सुनो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य को जानने के लिए केवल ऊपर-ऊपर की बातें पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि शरीर की बनावट और आत्मा के प्रभाव को गहराई से विश्लेषित करना आवश्यक है।

## श्लोक संख्या: 13.05

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।  
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ 5 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

यह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का तत्व ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है और विविध वेदमन्त्रों द्वारा भी अलग-अलग स्पष्ट किया गया है तथा भली-भाँति निश्चय किए हुए, युक्तिपूर्ण ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी कहा गया है।

### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि यह जो शरीर और आत्मा की बात मैं तुम्हें बता रहा हूँ, यह कोई नई बात नहीं है। अनादि काल से बड़े-बड़े संतों, विचारकों और प्राचीन ग्रंथों ने अपने-अपने अनुभवों से, बहुत सुंदर तर्कों और उदाहरणों के माध्यम से इसी एक परम सत्य को बार-बार प्रमाणित किया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-ज्ञान का मार्ग सनातन और प्रामाणिक है, जिसे हर काल के महापुरुषों और श्रेष्ठ विचारों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया है।

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।

इन्द्रियाणि दशकं चैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ 6 ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।

एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ 7 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), अहंकार, बुद्धि और मूल अव्यक्त (प्रकृति); दस इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ), एक मन और पाँच इन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध); तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल शरीर का पिंड (संघात), चेतना (प्राण-शक्ति) और धैर्य—इस प्रकार यह क्षेत्र विकारों सहित संक्षेप में कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ भगवान शरीर की पूरी बनावट (मशीनरी) को खोलकर रख देते हैं। वे कहते हैं कि जिन २४ तत्वों से यह 'क्षेत्र' बना है, वे हैं—पाँच तत्व जिनसे हमारा भौतिक शरीर बना है, हमारी सोच (बुद्धि), मैं-पन का भाव (अहंकार), हमारी दसों इन्द्रियाँ, हमारा चंचल मन, और जिन चीजों को इन्द्रियाँ भोगती हैं। इसके अलावा हमारे मन में उठने वाले भाव जैसे—किसी चीज को पाने की चाह (इच्छा), नफरत (द्वेष), सुख-दुःख का अहसास, हाड़-मांस का यह ढांचा, नस-नस में दौड़ती प्राण-शक्ति और किसी चीज को सहने की ताकत (धैर्य)—यह सब का सब 'शरीर' (क्षेत्र) का ही हिस्सा है, आत्मा का नहीं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे मानसिक विचार, भावनाएं और यहाँ तक कि सुख-दुःख भी केवल प्रकृति और शरीर के ही खेल हैं; आत्मा इन सबसे अलग और परे है।

## श्लोक संख्या: 13.08

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ 8 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव (अमानित्व), दम्भ (दिखावे) का न होना, किसी भी प्राणी को कष्ट न देना (अहिंसा), क्षमाभाव, मन और वाणी की सरलता, गुरु की सेवा, बाहर-भीतर की शुद्धि, अंतःकरण की स्थिरता और मन-इन्द्रियों का नियंत्रण...

### सरल व्याख्या:

यहाँ से भगवान उन गुणों की सूची देना शुरू करते हैं जिन्हें वे 'ज्ञान' कहते हैं। सच्चा ज्ञान वह नहीं है जो केवल किताबों में हो, बल्कि वह हमारे स्वभाव में दिखना चाहिए। जिसके भीतर ज्ञान आता है, वह अपने सम्मान की इच्छा छोड़ देता है, दिखावा नहीं करता, मन-वचन-कर्म से किसी को चोट नहीं पहुँचाता, दूसरों को माफ कर देता है, व्यवहार में सीधा और सच्चा होता है, सच्चे मार्गदर्शक (गुरु) का आदर करता है, अपने शरीर और विचारों को साफ रखता है, अपने लक्ष्य पर टिका रहता है और अपनी इच्छाओं को काबू में रखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... वास्तविक ज्ञान का अर्थ कोई बौद्धिक चातुर्य नहीं, बल्कि हमारे चरित्र की परम पवित्रता, विनम्रता और इन्द्रिय-संयम है।

### श्लोक संख्या: 13.09

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च |  
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् || 9 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इन्द्रियों के भोगों में आसक्ति का न होना, अहंकार का अभाव तथा जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगों में दुःख रूप दोषों का बार-बार विचार करना...

#### सरल व्याख्या:

ज्ञानी व्यक्ति वह है जो इन्द्रियों के सुखों (जैसे स्वाद, रूप) के पीछे दीवाना नहीं होता। वह जानता है कि यह शरीर नश्वर है, इसलिए वह घमंड नहीं करता। वह जीवन की सच्चाई से आँखें नहीं चुराता, बल्कि इस बात को हमेशा याद रखता है कि इस संसार में जन्म लेना, बीमार होना, बूढ़ा होना और मरना—इन सबमें गहरा दुःख छिपा है। जब मनुष्य इस सच्चाई को याद रखता है, तो वह संसार के झूठे मोह में नहीं फंसेता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की नश्वरता और शारीरिक दुःखों के कड़वे सच को निरंतर याद रखना ही वैराग्य और आत्म-जागृति का कारण बनता है।

### श्लोक संख्या: 13.10

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु |  
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का न होना और ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना...

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि अपने परिवार, बच्चों और घर-बार से प्रेम करना तो ठीक है, लेकिन उनमें इस कदर डूब जाना कि उनके बिना जीवन ही न लगे (आसक्ति), वह अज्ञान है। ज्ञानी व्यक्ति अपने कर्तव्यों को पूरी निष्ठा से निभाता है, पर मन से मुक्त रहता है। जब उसके जीवन में कुछ अच्छा होता है (प्रिय), तो वह हवा में नहीं उड़ता, और जब कुछ बुरा होता है (अप्रिय), तो वह अवसाद में नहीं डूबता। उसका मन हर हाल में एक जैसा शांत रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पारिवारिक और सांसारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी भीतर से निर्लिप्त रहना और जीवन के थपेड़ों में शांत बने रहना ही सच्चे ज्ञान का व्यावहारिक रूप है।

### श्लोक संख्या: 13.11

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।  
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी (अडिग) भक्ति, एकांत और पवित्र स्थान में रहने का स्वभाव तथा विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना...

#### सरल व्याख्या:

ज्ञान का अगला लक्षण है ईश्वर के प्रति अटूट और अविचल प्रेम। ज्ञानी व्यक्ति का मन भगवान से इस तरह जुड़ जाता है कि वह संसार की चकाचौंध से दूर, शांत और पवित्र स्थानों में बैठना पसंद करता है। उसे व्यर्थ की गपशप करने वाले, भोग-विलास में डूबे लोगों की भीड़ में बैठना अच्छा नहीं लगता, बल्कि वह अंतर्मुखी होकर रहने में आनंद पाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा में अनन्य निष्ठा होना और चंचल भीड़-भाड़ से बचकर एकांत में आत्म-चिंतन करना ही अंतःकरण को जागृत करने का साधन है।

### श्लोक संख्या: 13.12

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।  
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अध्यात्म ज्ञान में निरंतर स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सर्वत्र देखना—यह सब तो 'ज्ञान' है और जो इसके विपरीत है, वह 'अज्ञान' है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ ज्ञान की परिभाषा को समेटते हुए कहते हैं कि खुद को आत्मा जानना और हमेशा इसी भाव में जीना कि "मैं यह नश्वर शरीर नहीं हूँ" (अध्यात्म ज्ञान), तथा इस ज्ञान के फल स्वरूप हर जीव में और हर परिस्थिति में केवल उस परम सत्य (परमात्मा) को ही देखना—यही वास्तविक ज्ञान है। इसके अलावा जो कुछ भी है—जैसे अहंकार, दिखावा, ईर्ष्या और केवल दुनियावी समझ—वह सब अज्ञान की श्रेणी में आता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मा और परमात्मा के शाश्वत संबंध को पहचानना ही एकमात्र सच्चा ज्ञान है, इसके विपरीत केवल भौतिकता में उलझे रहना अज्ञान का अंधकार है।

### श्लोक संख्या: 13.13

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामी यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते |  
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते || 13 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो जानने योग्य है (ज्ञेय) और जिसे जानकर मनुष्य अमृत (परम आनंद या मोक्ष) को प्राप्त होता है, उसको अब मैं भली-भाँति कहूँगा। वह अनादि वाला परम ब्रह्म है, उसे न 'सत्' (अस्तित्व वाला) कहा जा सकता है और न 'असत्' (अस्तित्वहीन)।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि अभी तक मैंने तुम्हें 'ज्ञान' (ज्ञान के लक्षण) के बारे में बताया, अब मैं तुम्हें उस परम सत्य के बारे में बताता हूँ जिसे 'जाना जाना चाहिए' (ज्ञेय)। वह परमात्मा अनादि है, यानी उसकी शुरुआत कब हुई, कोई नहीं जानता। वह इतना असीम है कि उसे न तो हम इस संसार की किसी वस्तु की तरह कह सकते हैं कि "वह यह है" (सत्), और न ही यह कह सकते हैं कि "वह नहीं है" (असत्)। वह इन दोनों ही सीमाओं से परे है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा ही हमारे जीवन का एकमात्र अंतिम लक्ष्य और जानने योग्य परम सत्य है, जिसे अनुभव करते ही मनुष्य जन्म-मरण के भय से मुक्त हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 13.14

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् |  
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वह सब ओर हाथ-पैर वाला, सब ओर आँख, सिर और मुख वाला तथा सब ओर कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके (ढककर) स्थित है।

#### सरल व्याख्या:

उस परमात्मा का कोई एक सीमित आकार नहीं है। ब्रह्मांड में जितने भी हाथ-पैर काम कर रहे हैं, वे सब उसी की शक्ति से चल रहे हैं। जितनी भी आँखें देख रही हैं, जितने मुख बोल रहे हैं और जितने कान सुन रहे हैं, वे सब वास्तव में उसी अनंत चेतना के अंग हैं। वह हवा की तरह संसार के कण-कण में समाया हुआ है और सब कुछ उसके भीतर ही चल रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर किसी एक कोने में नहीं बैठा है, बल्कि वह सर्वव्यापी है और संसार की हर क्रिया में उसकी अदृश्य उपस्थिति काम कर रही है।

### श्लोक संख्या: 13.15

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

आसक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वह संपूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है, परंतु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है; वह आसक्ति रहित होने पर भी सबका पालन-पोषण करने वाला है और गुणों से अतीत (निर्गुण) होने पर भी गुणों को भोगने वाला है।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा के पास हमारे जैसी हाड़-मांस की इन्द्रियाँ (आँख, कान) नहीं हैं, फिर भी वह सब कुछ देखता और सुनता है। वह किसी भी सांसारिक वस्तु से बंधा हुआ नहीं है (अनासक्त), फिर भी वही पूरी सृष्टि का पेट भरता है। वह स्वयं सत, रज और तम—इन तीनों गुणों से ऊपर है (निर्गुण), लेकिन जब वह संसार के रूप में प्रकट होता है, तो इन सभी गुणों का आधार वही बनता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमेश्वर की शक्ति अद्भुत और विरोधाभासों से भरी है; वह भौतिक सीमाओं से पूरी तरह मुक्त रहकर भी संपूर्ण ब्रह्मांड का संचालन करता है।

### श्लोक संख्या: 13.16

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।

सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वह संपूर्ण चराचर प्राणियों के बाहर और भीतर भी परिपूर्ण है और चर (चलने वाले) तथा अचर (न चलने वाले) भी वही है। वह सूक्ष्म होने के कारण जानने में नहीं आता (अविज्ञेय है) तथा वह बहुत दूर भी स्थित है और अत्यंत पास भी वही है।

#### सरल व्याख्या:

वह ईश्वर हमारे शरीर के बाहर भी है और आत्मा के रूप में भीतर भी। जो चीजें हिलती-डुलती हैं (जैसे इंसान, पशु) और जो स्थिर हैं (जैसे पहाड़, पेड़), उन सब में वही है। वह इतना महीन और सूक्ष्म है कि उसे इन आँखों से या केवल बुद्धि से नहीं पकड़ा जा सकता। अज्ञानी मनुष्य के लिए जो उसे बाहर ढूँढ रहा है, वह बहुत दूर है; लेकिन जो अपने भीतर झाँकता है, उसके लिए वह दिल की धड़कन से भी ज्यादा पास है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा अपनी अत्यंत सूक्ष्म प्रकृति के कारण साधारण बुद्धि की पकड़ में नहीं आता, फिर भी वह हर जड़ और चेतन में पूरी तरह व्याप्त है।



### श्लोक संख्या: 13.17

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।  
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वह परमात्मा संपूर्ण भूतों में विभागत रहित (एक रस) स्थित होने पर भी अलग-अलग की तरह दिखाई देता है तथा वही जानने योग्य परमात्मा सब जीवों को उत्पन्न करने वाला, पालन करने वाला और संहार करने वाला है।

#### सरल व्याख्या:

जैसे आकाश एक ही है, लेकिन अलग-अलग कमरों या बर्तनों के कारण वह अलग-अलग दिखाई देता है; वैसे ही परमात्मा एक ही अखण्ड सत्ता है, जो सभी अलग-अलग शरीरों में अलग-अलग जीव की तरह दिखाई देता है। वही परम सत्य समय आने पर सब चीजों को अपने भीतर समेट लेता है (प्रलय), सबका पालन करता है और फिर से नई सृष्टि को जन्म देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की अनेकता के पीछे वास्तव में एक ही अभिन्न और अविनाशी परमात्मा की शक्ति काम कर रही है।

### श्लोक संख्या: 13.18

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।  
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वह सूर्यो का भी सूर्य (प्रकाशन का भी प्रकाशक) है और अज्ञान रूपी अंधकार से अत्यंत परे कहा जाता है। वह स्वयं ज्ञान स्वरूप है, जानने योग्य है और ज्ञान के द्वारा प्राप्त होने वाला है तथा सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है।

#### सरल व्याख्या:

सूरज, चाँद या आग में जो रोशनी है, वह भी उसी परमात्मा के प्रकाश का एक छोटा सा हिस्सा है। वह अज्ञान के किसी भी अंधकार से कभी नहीं छूटा जा सकता। वह स्वयं ही वह ज्ञान है जिसे पाने की हम कोशिश कर रहे हैं, वही हमारा लक्ष्य है, और जो गुण ऊपर (श्लोक ८ से १२ तक) बताए गए हैं, उनके जरिए ही उसे पाया जा सकता है। वह कहीं बाहर नहीं, हम सबके हृदय के ठीक बीच में बैठा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा परम प्रकाश का पुंज है जो हर मनुष्य के अंतःकरण में साक्षी रूप में निवास कर रहा है, और उसे केवल शुद्ध आचरण से ही अनुभव किया जा सकता है।

### श्लोक संख्या: 13.19

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समास्तः ।  
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस प्रकार क्षेत्र (शरीर), ज्ञान और ज्ञेय (जानने योग्य परमात्मा) का स्वरूप संक्षेप में कहा गया है। मेरा भक्त इस सब तत्व को जानकर मेरे ही स्वरूप (मद्भाव) को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ इस विषय का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि मैंने तुम्हें संक्षेप में तीनों बातें स्पष्ट कर दी हैं: यह शरीर क्या है (क्षेत्र), इसे बदलने वाले दिव्य गुण कौन से हैं (ज्ञान) और वह परम सत्य कौन है जिसे पाना है (ज्ञेय)। जो भक्त इस रहस्य को केवल बौद्धिक रूप से नहीं, बल्कि अपने अनुभव में उतार लेता है, वह अंततः मेरे ही दिव्य और आनंदमय स्वरूप में लीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर, साधना और साध्य (ईश्वर) के इस त्रिकोण को समझ लेना ही भक्त को सीधे ईश्वरीय चेतना में विलीन कर देता है।

### श्लोक संख्या: 13.20

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्व्यनादी उभावपि ।  
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्वि प्रकृतिसम्भवान् ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तू प्रकृति (जड़) और पुरुष (चेतन) इन दोनों को ही अनादि जान और काम-क्रोध आदि विकारों को तथा सत-रज-तम आदि तीनों गुणों को भी प्रकृति से ही उत्पन्न जान।

#### सरल व्याख्या:

अब भगवान सृष्टि के चलने के नियम को समझाते हैं। वे कहते हैं कि इस संसार में दो चीजें मुख्य हैं—एक 'प्रकृति' (जो जड़ है, जैसे हमारा शरीर और दृश्य जगत) और दूसरा 'पुरुष' (जो चेतन आत्मा है)। ये दोनों ही अनादि हैं, यानी इनकी कोई शुरुआत नहीं है। हमारे मन में उठने वाले जितने भी विकार हैं—जैसे गुस्सा, इच्छा, सुख-दुःख—और जो भी स्वभाव के गुण हैं, वे सब इस जड़ प्रकृति के खेल हैं, आत्मा के नहीं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर और संसार के सारे बदलाव प्रकृति की देन हैं; आत्मा इन सभी विकारों और गुणों से पूरी तरह अछूती और सनातन है।

### श्लोक संख्या: 13.21

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते |

पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते || 21 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

कार्य (स्थूल शरीर) और करण (इन्द्रियाँ तथा मन) को उत्पन्न करने में 'प्रकृति' कारण कही जाती है और जीवात्मा (पुरुष) सुख-दुःखों के भोगने में कारण कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान समझाते हैं कि हमारे इस पाँच तत्वों के शरीर को गढ़ना, इन्द्रियों को बनाना और मन-बुद्धि की मशीनरी को तैयार करना—यह सब 'प्रकृति' का काम है। लेकिन उस शरीर के भीतर बैठकर जो चेतना उन इंद्रियों के माध्यम से मिलने वाले सुख और दुःख का अहसास करती है, वह 'पुरुष' यानी जीवात्मा है। प्रकृति साधन बनाती है और आत्मा उसमें बैठकर भोग करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे शरीर की क्रियाएँ और परिस्थितियाँ प्रकृति के नियमों से चलती हैं, परंतु उन परिस्थितियों में सुखी या दुःखी होना जीव की अपनी चेतना पर निर्भर करता है।

### श्लोक संख्या: 13.22

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् |

कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु || 22 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

प्रकृति में स्थित हुआ ही यह पुरुष (जीवात्मा) प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुणों (सत, रज, तम) को भोगता है और इन गुणों का संग (आसक्ति) ही इस जीवात्मा के अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण है।

#### सरल व्याख्या:

जब आत्मा इस जड़ शरीर (प्रकृति) में आकर बैठती है, तो वह खुद को शरीर ही मान बैठती है। इस अज्ञान के कारण वह संसार के अच्छे-बुरे भोगों में फंस जाती है। कभी वह अच्छाई (सत) की ओर भागती है, कभी इच्छाओं (रज) में जलती है, तो कभी आलस्य (तम) में डूबती है। इन गुणों के प्रति जो उसका यह मोह है, वही उसे बार-बार मरने के बाद नए-नए शरीरों और योनियों में भटकने पर मजबूर करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार के भोगों और स्वभाव के गुणों से अत्यधिक मोह ही मनुष्य को जन्म-मरण के अंतहीन चक्र में बांधकर रखता है।

### श्लोक संख्या: 13.23

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।  
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस शरीर में स्थित यह आत्मा वास्तव में 'उपद्रष्टा' (पास रहकर सब कुछ देखने वाला), 'अनुमन्ता' (सहमति देने वाला), 'भर्ता' (पोषण करने वाला), 'भोक्ता' (अनुभव करने वाला), 'महेश्वरः' (महान ईश्वर) और 'परमात्मा' ऐसा कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान इस शरीर के भीतर बैठी आत्मा का असली स्वरूप उजागर करते हैं। वे कहते हैं कि भले ही जीव अज्ञान में भटके, पर उसके भीतर बैठा वह परम तत्व वास्तव में कोई कमज़ोर चीज़ नहीं है। वह 'उपद्रष्टा' है, जो बिना लिप्त हुए सब कुछ चुपचाप देख रहा है; वह 'अनुमन्ता' है, जो जीवन की हर क्रिया को होने की अनुमति देता है। वह इस पिंड का स्वामी (महेश्वर) है। वह साक्षात् परमात्मा का ही अंश है जो इस देह में साक्षी रूप से विराजमान है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे भीतर की मूल चेतना कभी पापी या कमज़ोर नहीं होती, वह सदैव शुद्ध, साक्षी और परमात्मा का ही साक्षात् रूप है।

### श्लोक संख्या: 13.24

य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।  
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य इस प्रकार पुरुष (चेतन तत्व) को और गुणों सहित प्रकृति (जड़ तत्व) को तत्व से जान लेता है, वह सब प्रकार से कर्तव्य कर्म करता हुआ भी फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

जो व्यक्ति इस गहरे भेद को अनुभव से समझ लेता है कि "मैं अविनाशी आत्मा हूँ और यह शरीर तथा संसार बदलने वाली प्रकृति है", वह दुनिया की नजरों में चाहे गृहस्थी चला रहा हो, व्यापार कर रहा हो या कोई भी काम कर रहा हो (सर्वथा वर्तमानोऽपि), वह भीतर से पूरी तरह मुक्त रहता है। उसके कर्मों में स्वार्थ का बंधन नहीं होता, इसलिए मृत्यु के बाद उसे दोबारा इस दुःखरूपी संसार में नहीं आना पड़ता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा आत्म-ज्ञान संसार को छोड़ने से नहीं, बल्कि संसार में रहते हुए भी भीतर से निर्लिप्त और जाग्रत रहने से सिद्ध होता है।

### श्लोक संख्या: 13.25

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।

अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ 25 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उस परमात्मा को कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से 'ध्यान योग' द्वारा अपने हृदय में देखते हैं, अन्य कितने ही 'ज्ञान योग' (सांख्य) द्वारा और दूसरे कितने ही 'कर्म योग' द्वारा देखते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ उदारतापूर्वक सत्य तक पहुँचने के अलग-अलग रास्ते बताते हैं। वे कहते हैं कि हर मनुष्य का स्वभाव एक जैसा नहीं होता। इसलिए, कुछ लोग शांत बैठकर अपने मन को एकाग्र करके 'ध्यान' के जरिए उस आत्मा को ढूँढ लेते हैं। कुछ लोग बुद्धि और विवेक का सहारा लेकर, सत्य-असत्य का विचार करके 'ज्ञान मार्ग' से वहाँ पहुँचते हैं। और कुछ लोग समाज में रहकर बिना किसी स्वार्थ के केवल कर्तव्य समझकर काम करते हुए 'कर्म योग' से उसी परम पद को पा लेते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा तक पहुँचने के मार्ग अनेक हैं—चाहे ध्यान हो, ज्ञान हो या निष्काम कर्म—सच्ची निष्ठा होने पर मंजिल एक ही मिलती है।

### श्लोक संख्या: 13.26

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्वेभ्य उपासते ।

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परन्तु इनसे दूसरे (अर्थात् जो साधारण मनुष्य हैं) इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से (तत्त्ववेत्ता महापुरुषों से) सुनकर ही उपासना करते हैं और वे सुनने के परायण हुए पुरुष भी मृत्यु रूप संसार को निश्चय ही पार कर जाते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् उन लोगों को बहुत बड़ा सहारा देते हैं जो न तो बड़े ज्ञानी हैं, न ध्यान लगा सकते हैं और न शास्त्रों के ज्ञाता हैं। वे कहते हैं कि जो सीधे-सरल लोग हैं, यदि वे सच्चे संतों या महापुरुषों के वचनों को पूरी श्रद्धा से 'सुनते' हैं और उन पर भरोसा करके उनके बताए रास्ते पर चलने की कोशिश करते हैं, तो केवल इस 'श्रवण' (सुनने की निष्ठा) मात्र से ही वे भी इस भयानक भवसागर को आसानी से पार कर जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ पुरुषों के वचनों पर अडिग श्रद्धा रखना और उनके उपदेशों को जीवन में सुनना-मानना भी मनुष्य के उद्धार के लिए पर्याप्त है।

### श्लोक संख्या: 13.27

यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् |  
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ || 27 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! यावन्मात्र जो कुछ भी स्थावर (जड़) या जंगम (चेतन) प्राणी उत्पन्न होता है, वह सब क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के संयोग से ही उत्पन्न होता है, ऐसा तू जान।

#### सरल व्याख्या:

इस संसार में जो कुछ भी पैदा होता दिखाई देता है—चाहे वह एक छोटा सा कीड़ा हो, चलता-फिरता मनुष्य हो या स्थिर खड़ा हुआ पहाड़ और पेड़ हो—वह सब वास्तव में दो चीजों के मिलने से बना है। एक है जड़ ढांचा (क्षेत्र) और दूसरी है उसके भीतर छिपी चेतना की चिंगारी (क्षेत्रज्ञ)। इन दोनों के जुड़ते ही जीवन प्रकट होता है, इनके अलग होते ही मृत्यु हो जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सृष्टि का हर जीवन जड़ प्रकृति और चेतन आत्मा के अनूठे मिलन का ही परिणाम है।

### श्लोक संख्या: 13.28

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् |  
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति || 28 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो पुरुष नष्ट होते हुए संपूर्ण प्राणियों में परमेश्वर को समभाव से स्थित और अविनाशी देखता है, वही वास्तव में (सही) देखता है।

#### सरल व्याख्या:

यह दृष्टि बड़ी क्रांतिकारी है। हम आँखों से देखते हैं कि लोग बूढ़े हो रहे हैं, मर रहे हैं, बर्तनों की तरह शरीर टूट रहे हैं। लेकिन असली देखने वाला (ज्ञानी) वह है जो यह देख पाता है कि इन मरते हुए शरीरों के भीतर जो परमात्मा बैठा है, वह कभी नहीं मरता। वह घट-घट में एक जैसा, राजा में भी और रंक में भी, बराबर रूप से मौजूद है। जो इस अविनाशी तत्व को देख लेता है, भगवान कहते हैं कि केवल उसी की आँखें खुली हैं, बाकी सब अंधे हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बाहरी तौर पर दिखने वाले विनाश और बदलाव के पीछे छिपे शाश्वत और अमर परमात्मा को पहचानना ही सच्ची दिव्य दृष्टि है।

### श्लोक संख्या: 13.29

समं पश्यन्ही सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।  
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ 29 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि जो मनुष्य सब जगह समान रूप से स्थित ईश्वर को देखता हुआ चलता है, वह अपने द्वारा अपने आप को नष्ट नहीं करता (अपने पतन का कारण नहीं बनता), इससे वह परम गति को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य को यह समझ आ जाता है कि जो ईश्वर मेरे भीतर है, वही सामने वाले के भीतर भी है, तो उसके मन से वैर-भाव, नफरत और ईर्ष्या हमेशा के लिए खत्म हो जाते हैं। वह किसी दूसरे को दुःख पहुँचाकर खुद अपनी आत्मा का नुकसान नहीं करता। ऐसी समता की सोच रखने वाला व्यक्ति अपने अंतःकरण को इतना शुद्ध कर लेता है कि वह सीधे परम कल्याण (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सब जीवों में एक ही आत्मा को देखना मनुष्य को पाप और स्वार्थ से बचाकर सीधे परम गति की ओर ले जाता है।

### श्लोक संख्या: 13.30

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।  
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ 30 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से 'प्रकृति' द्वारा ही किए जाते हुए देखता है और आत्मा को 'अकर्ता' (कुछ न करने वाला) देखता है, वही वास्तव में सही देखता है।

#### सरल व्याख्या:

संसार में जितने भी काम हो रहे हैं—साँस लेना, खाना खाना, सोचना, समाज के काम—वे सब शरीर, मन और इन्द्रियों के स्तर पर हो रहे हैं, जो कि प्रकृति का हिस्सा हैं। हमारी आत्मा इन सब कामों को केवल रोशनी देती है, वह खुद कोई हाथ-पैर नहीं चलाती, वह अकर्ता है। जो मनुष्य इस बात को समझकर कर्मों के अहंकार (कि "यह मैंने किया") से मुक्त हो जाता है, वही सत्य का वास्तविक दृष्टा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सारे कर्म प्रकृति के गुणों द्वारा होते हैं; आत्मा को उनका कर्ता न मानकर तटस्थ साक्षी बने रहना ही परम सत्य का दर्शन है।

### श्लोक संख्या: 13.31

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति |

तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा || 31 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस क्षण यह मनुष्य संपूर्ण भूतों के अलग-अलग भावों को एक ही परमात्मा में स्थित देखता है तथा उस परमात्मा से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार (पैदा होना) देखता है, उसी क्षण वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

जब हमारी सोच संकीर्णता से ऊपर उठती है, तब हमें समझ आता है कि संसार के सभी जीव, चाहे वे कितने भी अलग दिखाई दें, उनकी जड़ एक ही है। जैसे एक ही पेड़ से अनेक शाखाएँ, पत्तियाँ और फल निकलते हैं, वैसे ही एक ही अविनाशी परमात्मा से इस पूरे संसार का फैलाव हुआ है। जो इस एकता को देख लेता है, वह इसी जीवन में परम सत्य (ब्रह्म) का अनुभव कर लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की अनेकता में छिपी हुई एक परमात्मा की सत्ता को पहचान लेना ही मनुष्य को सीधे ब्रह्म-भाव में लीन कर देता है।

### श्लोक संख्या: 13.32

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः |

शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते || 32 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! अनादि होने से और निर्गुण (गुणों से अतीत) होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न ही (कर्मफलों से) लिप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि हमारे इस नाशवान शरीर के भीतर जो आत्मा बैठी है, वह परमात्मा का ही रूप है। चूँकि इसकी न तो कोई शुरुआत है (अनादि) और न ही इसमें संसार का कोई दोष या गुण है (निर्गुण), इसलिए शरीर के रहते हुए और शरीर द्वारा सारी क्रियाएँ होते हुए भी, आत्मा भीतर से बिल्कुल अछूती रहती है। वह न तो किसी पाप-पुण्य को करती है और न ही उसके बंधन में बंधती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर के सुख-दुःख और कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं कर सकते; वह कमल के पत्ते की तरह संसार के कीचड़ में रहकर भी सदा पवित्र और मुक्त रहती है।



### श्लोक संख्या: 13.33

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते |  
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण किसी वस्तु से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार शरीर में सब जगह स्थित होने पर भी आत्मा शरीर के गुणों या दोषों से लिप्त नहीं होती।

#### सरल व्याख्या:

भगवान यहाँ आकाश का बहुत सुंदर उदाहरण देते हैं। आकाश (space) हर जगह है—वह गंदगी के ऊपर भी है और सुगन्धित फूलों के ऊपर भी, लेकिन गंदगी आकाश को गंदा नहीं कर सकती। इसी तरह, आत्मा हमारे पूरे शरीर में, नस-नस में व्याप्त है, लेकिन शरीर के बीमार होने, बूढ़ा होने या मन के दुःखी होने से आत्मा पर कोई दाग नहीं लगता। वह अपनी सूक्ष्मता के कारण हमेशा शुद्ध बनी रहती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मा की प्रकृति आकाश जैसी निर्लिप्त है, जो शरीर के किसी भी भौतिक बदलाव या विकार से कभी प्रभावित नहीं होती।

### श्लोक संख्या: 13.34

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः |  
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशी अर्जुन! जिस प्रकार एक ही सूर्य इस संपूर्ण ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही क्षेत्री (आत्मा) इस संपूर्ण क्षेत्र (शरीर) को प्रकाशित करती है।

#### सरल व्याख्या:

जैसे आसमान में चमकने वाला अकेला सूरज पूरी दुनिया को रोशनी देता है; उसी सूरज की रोशनी में अच्छे काम भी होते हैं और बुरे भी, पर सूरज न तो अच्छा होता है न बुरा। ठीक इसी तरह, हमारे भीतर बैठी जो आत्मा है, वह इस पूरे शरीर, मन और बुद्धि को चेतना की रोशनी देती है। उसी की रोशनी से आँखें देखती हैं और पैर चलते हैं, पर वह स्वयं इन सब क्रियाओं से अलग केवल एक प्रकाशक है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मा शरीर रूपी अंधकार को जीवन देने वाली वह दिव्य रोशनी है, जो स्वयं कर्ता न होकर केवल संपूर्ण जीवन को ऊर्जा और चेतना प्रदान करती है।

**श्लोक संख्या: 13.35**

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।

भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ 35 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इस प्रकार जो मनुष्य 'ज्ञान रूपी नेत्रों' द्वारा क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के भेद को तथा प्रकृति से मुक्त होने के उपाय को तत्व से जानते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं।

**सरल व्याख्या:**

यह इस तरहवें अध्याय का आखिरी श्लोक है। भगवान पूरे अध्याय का निचोड़ देते हुए कहते हैं कि जो लोग विवेक की आँख (ज्ञानचक्षु) खोलकर इस बात को साफ-साफ देख लेते हैं कि शरीर अलग है और आत्मा अलग, और यह भी जान जाते हैं कि इस जड़ प्रकृति के जाल से बाहर कैसे निकलना है, वे सीधे परमात्मा के उस परम धाम को पा लेते हैं जहाँ से फिर कभी गिरना नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... विवेक के द्वारा शरीर और आत्मा को अलग-अलग देख लेना ही संसार के सारे बंधनों को काटकर परम मुक्ति पाने का एकमात्र राजमार्ग है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः

Satyaanubhuti Ashram



॥ चौदहवाँ अध्यायः गुणत्रयविभागयोग प्रारंभ ॥

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 14.01

श्रीभगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामी ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

श्रीभगवान् बोले—ज्ञानों में भी जो सबसे उत्तम परम ज्ञान है, उसको मैं फिर से तेरे लिए कहूँगा, जिसे जानकर सब मुनि जन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं।

**सरल व्याख्या:**

भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि यद्यपि मैंने तुम्हें पहले भी कई तरह के ज्ञान दिए हैं, लेकिन अब मैं तुम्हें वह सबसे श्रेष्ठ और व्यावहारिक ज्ञान बताने जा रहा हूँ, जो तुम्हें संसार के बंधनों से सीधे मुक्त कर देगा। इस गुप्त रहस्य को समझकर प्राचीन काल के बड़े-बड़े संतों और ऋषियों ने अपने जीवन को सफल किया और परम शांति की ऊँचाइयों को छुआ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति के नियमों और गुणों का ज्ञान आध्यात्मिक यात्रा का वह सर्वोच्च व्यावहारिक विज्ञान है, जो साधक को सीधे पूर्णता की ओर ले जाता है।

## श्लोक संख्या: 14.02

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।

सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

इस ज्ञान को आश्रय करके (अपने जीवन में उतारकर) जो मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं, वे सृष्टि के आदि (शुरुआत) में पुनः पैदा नहीं होते और प्रलय के समय भी व्याकुल नहीं होते।

**सरल व्याख्या:**

जो मनुष्य इस आने वाले ज्ञान को गहराई से समझ लेता है, उसका स्वभाव और चेतना सीधे भगवान् जैसी (साधर्म्य) हो जाती है। ऐसा व्यक्ति काल के चक्र से ऊपर उठ जाता है। जब नई सृष्टि बनती है, तब उसे दोबारा किसी गर्भ में आकर जन्म नहीं लेना पड़ता, और जब पूरी दुनिया का विनाश (प्रलय) होता है, तब भी उसका मन शांत रहता है, वह कभी विचलित नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाने के बाद मनुष्य समय की सीमाओं से मुक्त हो जाता है; फिर न तो उसे जन्म का भय रहता है और न ही विनाश का दुःख।

### श्लोक संख्या: 14.03

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।

सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ 3 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतवंशी अर्जुन! मेरी यह मूल प्रकृति (महद्ब्रह्म) ही वह योनि (माता के समान गर्भ स्थान) है, जिसमें मैं चेतना रूपी बीज को स्थापित करता हूँ। उस संयोग से ही सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् सृष्टि की रचना का रहस्य समझाते हुए कहते हैं कि यह जो विशाल जड़ प्रकृति है, वह एक माता की तरह है। मैं पिता के रूप में इस जड़ प्रकृति में अपनी चेतना (आत्मा) का बीज डालता हूँ। जब जड़ और चेतन का यह मिलन होता है, तभी संसार के सारे छोटे-बड़े जीव पैदा होते हैं। प्रकृति शरीर देती है और परमात्मा उसमें प्राण फूंकते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इस संसार का कोई भी जीवन स्वतंत्र नहीं है; हम सब जड़ प्रकृति रूपी माता और परमेश्वर रूपी पिता की ही संतान हैं।

### श्लोक संख्या: 14.04

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ 4 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! समस्त योनियों में (देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि) जितने भी शरीर-धारी पैदा होते हैं, उन सबकी गर्भाधान धारण करने वाली माता तो मूल प्रकृति (महद्ब्रह्म) है और बीज को स्थापित करने वाला पिता मैं हूँ।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण पिछले श्लोक के भाव को और अधिक स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि जल, थल या नभ—संसार की किसी भी योनि में जो भी आकार या जीव बनता है, उसका भौतिक शरीर इस जड़ प्रकृति से ही निर्मित होता है। लेकिन उस शरीर के भीतर जीवन और चेतना का संचार स्वयं परमात्मा द्वारा होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आकार और प्रजातियों की विविधता के बावजूद, संसार के हर जीव का चेतना-स्तर पर मूल पिता एक ही परमेश्वर है।

### श्लोक संख्या: 14.05

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ 5 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! प्रकृति से उत्पन्न हुए सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये तीनों गुण इस अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ से इस अध्याय का मूल विषय 'तीन गुण' शुरू होता है। भगवान कहते हैं कि आत्मा मूलतः मुक्त और अव्यय (कभी न बदलने वाली) है। लेकिन जैसे ही यह भौतिक शरीर में प्रवेश करती है, प्रकृति के तीन गुण—सत्त्व, रज और तम—इसे अपने प्रभाव में लेकर बाँध लेते हैं और आत्मा स्वयं को शरीर तथा मन की वृत्तियों से जोड़ने लगती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे स्वभाव और आचरण का संचालन ये तीन गुण ही करते हैं, जो हमें अपने-अपने ढंग से संसार में बांध कर रखते हैं।

### श्लोक संख्या: 14.06

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।

सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥ 6 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे निष्पाप अर्जुन! उन तीनों गुणों में सत्त्वगुण अत्यंत निर्मल (स्वच्छ) होने के कारण प्रकाशक (ज्ञान देने वाला) और निर्विकार है। वह जीवात्मा को सुख के संग से और ज्ञान के संग से बाँधता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण सत्त्वगुण की विशेषता समझाते हैं। सत्त्वगुण मन में शांति, स्वच्छता, दया और प्रकाश लाता है। लेकिन इसकी सीमा यह है कि व्यक्ति सत्त्वगुण के प्रभाव में आकर 'मैं ज्ञानी हूँ' या 'मैं बहुत सुखी हूँ' जैसी सूक्ष्म भावना (अहंकार) से बँध जाता है। यद्यपि यह गुण श्रेष्ठ है, फिर भी यह आत्मा को सुख और ज्ञान के अभिमान में बांधे रखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अच्छाई, ज्ञान और शांति का अनुभव भी यदि अहंकार या आसक्ति बन जाए, तो वह भी एक प्रकार का सूक्ष्म बंधन ही है।

### श्लोक संख्या: 14.07

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।

तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ 7 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुन्तीपुत्र! रजोगुण को कामनाओं और आसक्ति से उत्पन्न होने वाला समझो। वह इस जीवात्मा को कर्मों के और उनके फलों के लगाव (संग) से बाँधता है।

#### सरल व्याख्या:

रजोगुण का मुख्य लक्षण है—निरंतर इच्छाएं (तृष्णा), पाने की लालसा और भागदौड़। जब मन में रजोगुण बढ़ता है, तो व्यक्ति नए-नए संकल्प बनाता है, धन-संपत्ति और भोगों की चाह में दिन-रात मेहनत करता है। वह अपने कर्मों के फलों से इतना चिपक जाता है कि कभी शांत बैठकर विचार नहीं कर पाता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... असीमित इच्छाएँ और कर्मफलों की तृष्णा ही मनुष्य की अशांति और निरंतर भागदौड़ का मूल कारण हैं।

### श्लोक संख्या: 14.08

तमो त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ 8 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! सब देहधारियों को मोहित करने वाले तमोगुण को अज्ञान से उत्पन्न हुआ समझो। वह जीवात्मा को प्रमाद (भूल/लापरवाही), आलस्य और निद्रा (सोने की आदत) के द्वारा बाँधता है।

#### सरल व्याख्या:

तमोगुण मन का अंधकार है। यह अज्ञान से पैदा होता है और व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता को ढँक देता है। तमोगुण के प्रभाव में मनुष्य सही और गलत का भेद भूल जाता है। वह जरूरी कामों को टालता है (प्रमाद), शरीर से मेहनत करने से बचता है (आलस्य) और अत्यधिक सोने या अकर्मण्यता में अपना समय नष्ट करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आलस्य, लापरवाही और अज्ञान ही तमोगुण के लक्षण हैं, जो मनुष्य को पतन और मानसिक अंधकार की ओर ले जाते हैं।



### श्लोक संख्या: 14.09

सत्त्वं सुखे सज्जयति रजः कर्मणि भारत |  
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सज्जयत्युत || 9 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! सत्त्वगुण मनुष्य को सुख में लगाता है, रजोगुण कर्मों में लगाता है, और तमोगुण तो ज्ञान को ढँककर प्रमाद (लापरवाही और भूल) में लगा देता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् तीनों गुणों के मुख्य कार्य को एक साथ संक्षेप में बताते हैं। सत्त्वगुण मन में संतोष और आनंद की भावना देता है। रजोगुण इंसान को शांत नहीं बैठने देता और उसे काम में जुटाए रखता है। जबकि तमोगुण बुद्धि के विवेक और ज्ञान को ढक देता है, जिससे व्यक्ति व्यर्थ के कामों, भ्रम और गलतियों में उलझ जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे विचार और दिनभर की क्रियाएँ इस बात पर निर्भर करती हैं कि उस समय हमारे भीतर कौन-सा गुण हावी है।

### श्लोक संख्या: 14.10

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत |  
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण बढ़ता है; सत्त्वगुण और तमोगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है; तथा सत्त्वगुण और रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है।

#### सरल व्याख्या:

ये तीनों गुण हमारे भीतर हमेशा एक-दूसरे से होड़ (Competition) करते रहते हैं। ये कभी स्थिर नहीं रहते। जब कोई एक गुण बढ़ता है, तो वह बाकी दो को दबा देता है। उदाहरण के लिए, जब ध्यान या प्रार्थना के समय सत्त्वगुण बढ़ता है, तो आलस्य और भागदौड़ थम जाती है। जब काम का दबाव होता है, तो रजोगुण हावी हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन का स्वभाव बदलता रहता है; अपने भीतर किस गुण को प्रधान बनाना है, इसका अभ्यास साधक को स्वयं करना होता है।

### श्लोक संख्या: 14.11

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते |  
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत || 11 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस समय इस देह के सभी द्वारों (इन्द्रियों) में ज्ञान का प्रकाश और विवेक उत्पन्न हो जाता है, उस समय ऐसा समझना चाहिए कि सत्त्वगुण बढ़ा हुआ है।

#### सरल व्याख्या:

सत्त्वगुण के बढ़ने की पहचान क्या है? भगवान कहते हैं कि हमारी इन्द्रियाँ (आँख, कान आदि) शरीर के द्वार हैं। जब इन द्वारों के माध्यम से केवल निर्मल, सत्य और कल्याणकारी बातें ही भीतर जाएँ और मन में स्पष्टता व विवेक (ज्ञान का प्रकाश) रहे, तो समझ लेना चाहिए कि भीतर सत्त्वगुण की वृद्धि हुई है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... इन्द्रियों का संयम और विचारों की स्पष्टता ही भीतर सत्त्वगुण के जाग्रत होने की प्रत्यक्ष पहचान है।

### श्लोक संख्या: 14.12

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा |  
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ || 12 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतश्रेष्ठ! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, निरंतर कर्मों में लगे रहने की प्रवृत्ति, नये काम-काज को शुरू करने की चाह, अशान्ति (अशम) और सांसारिक वस्तुओं की लालसा (स्पृहा)—ये सब उत्पन्न होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब किसी व्यक्ति में रजोगुण अधिक बढ़ जाता है, तो उसके भीतर असंतोष पैदा होता है। वह कभी तृप्त नहीं होता और अधिक पाने के लोभ में नई-नई योजनाएं बनाता रहता है। उसका मन कभी शांत नहीं बैठता (अशम) और वह हमेशा किसी न किसी सांसारिक सुख या वस्तु की तीव्र इच्छा से भरा रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निरंतर रहने वाली आंतरिक अशान्ति और लालसा इस बात का संकेत है कि जीवन में रजोगुण का प्रभाव अत्यधिक बढ़ गया है।

### श्लोक संख्या: 14.13

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च |  
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन || 13 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुरुनन्दन! तमोगुण के बढ़ने पर विवेकहीनता (अप्रकाश), अकर्मण्यता (अप्रवृत्ति), लापरवाही (प्रमाद) और मोह (मूर्छित या भ्रमित भाव)—ये सब उत्पन्न होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

तमोगुण के बढ़ने के लक्षण बहुत स्पष्ट हैं। व्यक्ति की बुद्धि मंद पड़ जाती है (अप्रकाश)। उसका किसी अच्छे या जरूरी काम को करने का मन नहीं करता (अप्रवृत्ति)। वह जीवन में बड़ी-बड़ी गलतियाँ और लापरवाहियाँ करता है तथा वास्तविकता से कटकर काल्पनिक मोह या भ्रम में डूबा रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य से जी चुराना और बुद्धि का काम न करना तमोगुण के बढ़ने का प्रत्यक्ष परिणाम है।

### श्लोक संख्या: 14.14

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् |  
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जब मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि (बढ़ी हुई स्थिति) में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब वह उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल (पाप-रहित) लोकों को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ समझाते हैं कि मृत्यु के समय मन में जिस गुण की प्रधानता होती है, उसी के अनुसार जीव की अगली गति तय होती है। यदि कोई व्यक्ति सत्त्वगुण की स्थिति में (शांत मन, निर्मल भाव और ज्ञान में स्थित होकर) शरीर छोड़ता है, तो उसकी चेतना उच्च लोकों और पवित्र स्थानों की ओर गति करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन के अंतिम क्षणों की मानसिक स्थिति हमारे पूरे जीवन के अभ्यास और अंत समय के गुणों से तय होती है।

### श्लोक संख्या: 14.15

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते |

तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर मनुष्य कर्मों में आसक्ति वाले मनुष्यों में जन्म लेता है; तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य मूढ़ (पशु-पक्षी आदि अज्ञानी) योनियों में जन्म लेता है।

#### सरल व्याख्या:

यदि मृत्यु के समय रजोगुण हावी हो (मन में बहुत सी सांसारिक इच्छाएं और भागदौड़ हो), तो जीव पुनः ऐसे परिवार या वातावरण में जन्म लेता है जहाँ निरंतर कर्मों का बंधन और तृष्णा बनी रहे। लेकिन यदि तमोगुण (अज्ञान, आलस्य, मोह) में मृत्यु हो, तो चेतना का पतन होता है और जीव विवेकहीन योनियों में चला जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे गुण ही हमारी भावी गति के निर्माता हैं; इसलिए जीवन में रजोगुण और तमोगुण को नियंत्रित करना आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 14.16

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् |

रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

श्रेष्ठ (सात्त्विक) कर्म का फल सात्त्विक अर्थात् निर्मल और सुख-शांति देने वाला कहा गया है; रजोगुणी कर्म का फल दुःख है और तमोगुणी कर्म का फल अज्ञान है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् तीनों गुणों से उत्पन्न होने वाले परिणामों का हिसाब बताते हैं। जब हम सत्त्वगुण से प्रेरित होकर कर्म करते हैं, तो उसका अंत आनंद और स्वच्छता में होता है। रजोगुण से किए गए कर्म शुरुआत में सुहावने लग सकते हैं, पर उनका अंत हमेशा अशांति और दुःख में होता है। और तमोगुण के कर्म केवल और केवल अंधकार तथा अज्ञान बढ़ाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्म का जैसा बीज (गुण) होगा, उसका फल भी ठीक वैसा ही प्राप्त होगा।

### श्लोक संख्या: 14.17

सत्त्वात्सज्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।  
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से निःसंदेह लोभ ही उत्पन्न होता है; तथा तमोगुण से प्रमाद (लापरवाही), मोह (भ्रम) और अज्ञान ही उत्पन्न होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यह श्लोक तीनों गुणों की आंतरिक उपज को स्पष्ट करता है। सत्त्वगुण से मन में स्पष्टता और ज्ञान का जन्म होता है। रजोगुण मन में कभी न मिटने वाली भूख या लोभ पैदा करता है। जबकि तमोगुण से व्यक्ति गलतियों, भ्रम और अज्ञान के चक्रव्यूह में फँसता चला जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने मन की दशा को पहचानकर हम यह जान सकते हैं कि हमारे भीतर इस समय कौन-सा गुण कार्य कर रहा है।

### श्लोक संख्या: 14.18

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।  
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सत्त्वगुण में स्थित पुरुष ऊपर के लोकों की ओर जाते हैं; रजोगुणी पुरुष मध्य में (मनुष्य लोक में) ही रहते हैं; और नीच तमोगुण की वृत्तियों में स्थित तामस पुरुष अधोगति (नीचे के पतन) को प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ जीव के आध्यात्मिक विकास के स्तर को दिखाया गया है। सत्त्वगुणी जीवन जीने वाले लोग चेतना की ऊँचाइयों को छूते हैं। रजोगुणी जीवन जीने वाले सांसारिक सुख-दुःख के इस मध्य लोक चक्र में घूमते रहते हैं। और जो तमोगुण के अधीन होकर नीच आचरण करते हैं, वे पतन की ओर चले जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी चेतना का उठना या गिरना पूरी तरह से इस बात पर निर्भर है कि हम किन गुणों का पोषण करते हैं।

### श्लोक संख्या: 14.19

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति |  
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति || 19 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस समय द्रष्टा (साधक) तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता और गुणों से परे परम तत्त्व (परमात्मा) को तत्त्व से जान लेता है, उस समय वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ से 'गुणातीत' (गुणों से परे) होने का मार्ग दिखाया जा रहा है। जब मनुष्य गहराई से अनुभव करता है कि शरीर और मन में होने वाली सारी क्रियाएँ वास्तव में ये तीन गुण ही आपस में कर रहे हैं, और स्वयं की आत्मा इनसे पूरी तरह असंग (अलग) है—तो वह कर्तापन के अहंकार से मुक्त होकर भगवान के परम भाव को पा लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति के खेल को एक तटस्थ साक्षी (**Observer**) बनकर देखना ही मुक्ति का द्वार है।

### श्लोक संख्या: 14.20

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् |  
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते || 20 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

देही (जीवात्मा) शरीर की उत्पत्ति के कारणरूप इन तीनों गुणों को लांघकर (पार करके) जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुःखों से मुक्त होकर अमरता (परमानंद) को भोगता है।

#### सरल व्याख्या:

शरीर इन गुणों से बना है और इन्हीं के कारण जन्म, बुढ़ापा तथा मृत्यु का दुःख मिलता है। लेकिन जब साधक अपनी आत्म-चेतना द्वारा इन तीनों गुणों से परे उठ जाता है, तो वह शरीर के धर्मों (जन्म-मृत्यु) से अप्रभावित होकर जीते-जी मोक्ष और अमर शांति का अनुभव करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दुःखों से पूर्ण मुक्ति तभी संभव है जब हम अपने मूल आत्म-स्वरूप को इन तीनों गुणों से ऊपर पहचान लें।

### श्लोक संख्या: 14.21

अर्जुन उवाच ।

कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।

किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

अर्जुन बोले—हे प्रभो! इन तीनों गुणों से अतीत हुआ मनुष्य किन लक्षणों से युक्त होता है? उसका आचरण कैसा होता है? और वह किस उपाय से इन तीनों गुणों से परे जाता है?

#### सरल व्याख्या:

भगवान की बात सुनकर अर्जुन के मन में जिज्ञासा जाग्रत होती है। वह तीन बहुत व्यावहारिक प्रश्न पूछता है: गुणों से परे उठे व्यक्ति की पहचान या लक्षण क्या हैं? उसका व्यवहार या आचरण कैसा होता है? इन तीनों गुणों को पार करने का व्यावहारिक उपाय क्या है?

यह श्लोक हमें बताता है कि... एक सच्चा साधक केवल सिद्धांत नहीं सीखता, बल्कि उस स्थिति को जीवन में उतारने के व्यावहारिक लक्षण और तरीके भी जानना चाहता है।

### श्लोक संख्या: 14.22

श्रीभगवानुवाच ।

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।

न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

श्रीभगवान बोले—हे पांडव! जो पुरुष सत्त्वगुण के कार्यरूप प्रकाश को, रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को और तमोगुण के कार्यरूप मोह को—न तो प्रकट होने पर उनसे द्वेष करता है और न शांत होने पर उनकी आकांक्षा करता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन के पहले प्रश्न का उत्तर देते हैं। गुणों से अतीत व्यक्ति के मन में जब सत्त्व (ज्ञान), रज (कामकाज) या तम (सुस्ती/भ्रम) की स्थिति आती है, तो वह उनसे चिढ़ता या नफरत नहीं करता। और जब वे स्थितियां चली जाती हैं, तो उन्हें जबरदस्ती पाने की तड़प भी नहीं रखता। वह मन के इन बदलावों को बिना विचलित हुए सहजता से देखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन की वृत्तियों के आने-जाने पर प्रतिक्रिया न देना और तटस्थ रहना ही गुणों से परे होने की पहली पहचान है।

### श्लोक संख्या: 14.23

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते |  
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो उदासीन (तटस्थ) के समान स्थित हुआ गुणों द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता, और 'गुण ही गुणों में बरत रहे हैं' ऐसा समझकर जो अपने स्वरूप में अचल स्थित रहता है, कभी डिगता नहीं।

#### सरल व्याख्या:

गुणातीत व्यक्ति जीवन में एक तटस्थ दर्शक की तरह रहता है। जब शरीर या मन में कोई बदलाव होता है, तो वह जानता है कि यह तो प्रकृति के गुणों का अपना खेल है, मेरा इससे कोई लेना-देना नहीं। इस बोध के कारण संसार की कोई भी उथल-पुथल उसे उसकी आत्म-स्थिति से डिगा नहीं पाती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं को घटना का 'कर्ता' न मानकर केवल 'साक्षी' मान लेने से मन में अटूट स्थिरता और शांति आ जाती है।

### श्लोक संख्या: 14.24

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः |  
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः || 24 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो दुःख और सुख में समान भाव रखता है, जो अपने स्वरूप में स्थित है, जो मिट्टी, पत्थर और सोने में समान दृष्टि वाला है, जिसके लिए प्रिय और अप्रिय एक समान हैं, जो धीर है तथा अपनी निन्दा और स्तुति (प्रशंसा) में समान भाव वाला है।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ गुणातीत व्यक्ति के व्यवहार को विस्तार से समझाया गया है। ऐसा व्यक्ति भौतिक वस्तुओं (मिट्टी या सोना) के मूल्य से विचलित नहीं होता। कोई उसकी निन्दा करे या प्रशंसा, कोई उसके अनुकूल बोले या प्रतिकूल, वह जानता है कि ये सब क्षणभंगुर स्थितियाँ हैं। वह अपने अंतःकरण की स्थिरता में ही टिका रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संसार की प्रशंसा या निन्दा से अप्रभावित रहकर अपने भीतर स्थिर रहना ही वास्तविक ज्ञान है।



### श्लोक संख्या: 14.25

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।

सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ 25 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मान और अपमान में सम है, जो मित्र और शत्रु के पक्षों में समान भाव रखता है तथा जो समस्त कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी है, वही पुरुष 'गुणातीत' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

गुणातीत व्यक्ति का किसी के प्रति व्यक्तिगत राग या द्वेष नहीं होता। वह मान और अपमान दोनों को एक समान देखता है। वह किसी नए काम का आरंभ सांसारिक लाभ या अहंकार के लिए नहीं करता, बल्कि जो कर्तव्य सामने आता है उसे ईश्वर को समर्पित करके करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जब अहंकार और व्यक्तिगत स्वार्थ मिट जाते हैं, तभी मनुष्य तीनों गुणों से परे उठ पाता है।

### श्लोक संख्या: 14.26

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।

स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ 26 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और जो पुरुष अव्यभिचारी (अनन्य और दृढ़) भक्तियोग के द्वारा निरंतर मेरी सेवा करता है, वह इन तीनों गुणों को पूर्ण रूप से लांघकर ब्रह्म (परमात्मा) को प्राप्त होने के योग्य बन जाता है।

#### सरल व्याख्या:

अब भगवान् अर्जुन के तीसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं कि इन गुणों को पार कैसे किया जाए। श्रीकृष्ण कहते हैं कि केवल ज्ञान के तर्कों से गुणों को पार करना कठिन है। इसका सबसे सरल और अचूक उपाय है—भगवान् की अनन्य भक्ति। जब जीव सब कुछ छोड़कर ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाता है, तो भगवान् की कृपा से वह तीनों गुणों के बंधन से मुक्त हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के प्रति निष्काम और अनन्य समर्पण ही प्रकृति के त्रिगुणात्मक बंधन से छूटने का सबसे सरल मार्ग है।

**श्लोक संख्या: 14.27**

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च |  
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च || 27 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

क्योंकि उस अविनाशी ब्रह्म का, अमरता का, शाश्वत धर्म का और अखंड एकरस आनंद (सुख) का आश्रय मैं ही हूँ।

**सरल व्याख्या:**

यह इस अध्याय का अंतिम और उपसंहार श्लोक है। श्रीकृष्ण घोषणा करते हैं कि जिस परम ब्रह्म, परम शांति, अमरता और कभी न समाप्त होने वाले आनंद की खोज मनुष्य करता है, उस सबका मूल आधार और पराकाष्ठा स्वयं परमेश्वर ही हैं। अतः जो परमात्मा की शरण में आ जाता है, वह सब कुछ पा लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परम शांति और अमरता का एकमात्र अक्षय स्रोत परमात्मा ही हैं, उन्हें पाना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः



अध्याय **15**: पुरुषोत्तमयोग

Satyaaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 15.01

श्रीभगवानुवाच ।

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—आदिपुरुष परमात्मा रूपी मूल (जड़) वाले और ब्रह्मा रूपी मुख्य शाखा वाले इस संसार रूपी पीपल के वृक्ष को अविनाशी कहते हैं, जिसके वेद पत्ते कहे गए हैं; उस संसार रूपी वृक्ष को जो तत्व से जानता है, वही वेद के तात्पर्य को जानने वाला है।

### सरल व्याख्या:

भगवान् संसार की तुलना एक उलटे पीपल के पेड़ से करते हैं, जिसकी जड़ें ऊपर (परमात्मा में) हैं और शाखाएँ नीचे (संसार में) फैली हैं। इसका अर्थ यह है कि इस जगत् का मूल स्रोत परमात्मा है। जब तक मनुष्य इस पेड़ के पत्तों (भोगों) में उलझा रहता है, वह सत्य को नहीं जान पाता। जो इसके मूल स्रोत को पहचान लेता है, वही वास्तविक ज्ञानी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... यह दृश्य संसार केवल शाखाओं की तरह है; इसका वास्तविक आधार और स्रोत ऊपर स्थित परम चेतना ही है।

## श्लोक संख्या: 15.02

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।

अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

उस संसार वृक्ष की तीनों गुणों द्वारा बढ़ी हुई और विषय-भोग रूपी कोपलों वाली शाखाएँ नीचे और ऊपर फैली हुई हैं; तथा मनुष्य लोक में कर्मों के अनुसार बाँधने वाली जड़ें भी नीचे (अनुबंध रूप में) फैली हुई हैं।

### सरल व्याख्या:

प्रकृति के तीन गुण ही इस संसार रूपी वृक्ष को सींचते और बढ़ा करते हैं। हमारी इन्द्रियों के भोग इस पेड़ की कोपलें हैं। मनुष्य की जो कामनाएँ और वासनाएँ हैं, वे सूक्ष्म जड़ों की तरह हैं जो इंसान को कर्मों के बंधन में बाँधकर इस संसार में बार-बार जन्म लेने पर मजबूर करती हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी कामनाएँ और आसक्तियाँ ही वे सूक्ष्म जड़ें हैं जो हमें संसार चक्र में बाँधकर रखती हैं।

### श्लोक संख्या: 15.03

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा |  
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा || 03 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इस संसार वृक्ष का जैसा स्वरूप कहा गया है, वैसा यहाँ विचार काल में नहीं मिलता; क्योंकि न तो इसका आदि (शुरुआत) है, न अंत है और न ही इसकी अच्छी तरह से स्थिति (प्रतिष्ठा) है। इसलिए इस वैराग्य रूपी दृढ़ शस्त्र द्वारा इस गहरी जड़ों वाले संसार रूपी वृक्ष को काटकर...

#### सरल व्याख्या:

यह संसार परिवर्तनशील है, इसका कोई निश्चित रूप नहीं दिखता। इसकी मोह-रूपी जड़ें बहुत गहरी जमी हुई हैं। भगवान कहते हैं कि इस मोह और बंधन को काटने का केवल एक ही अस्त्र है—'वैराग्य' या आसक्ति-रहित भाव। जब मनुष्य सांसारिक भोगों के प्रति अनासक्त हो जाता है, तभी वह इस विशाल भ्रम-जाल को काट पाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक मोह और बंधनों को केवल विवेकपूर्ण वैराग्य और अनासक्ति के शस्त्र से ही काटा जा सकता है।

### श्लोक संख्या: 15.04

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिं गता न निवर्तन्ति भूयः |  
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी || 04 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

उसके पश्चात् उस परम पद (परमात्मा) की खोज करनी चाहिए, जिसको प्राप्त होकर मनुष्य फिर लौटकर संसार में नहीं आते; और जिस परमेश्वर से यह पुरातन संसार-रचना का विस्तार हुआ है, उसी आदिपुरुष परमेश्वर की मैं शरण में हूँ—ऐसा निश्चय करना चाहिए।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि संसार-वृक्ष की मोह-रूपी जड़ों को काटने के बाद मनुष्य को उस परम सत्य की खोज में लगना चाहिए जहाँ पहुँचकर परम शांति मिलती है और पुनः दुःखों के संसार में नहीं आना पड़ता। इसके लिए साधक को उस परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव रखना चाहिए जो इस पूरी सृष्टि का मूल कारण है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सांसारिक मोह से मुक्ति पाने का अंतिम लक्ष्य परमात्मा की शरण में जाकर उस परम पद को प्राप्त करना है जो शाश्वत है।

### श्लोक संख्या: 15.05

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।

द्वंद्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् || 05 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है, जो निरंतर अध्यात्म में स्थित रहते हैं, जिनकी कामनाएँ पूर्णतः नष्ट हो चुकी हैं और जो सुख-दुःख नामक द्वंद्वों से पूरी तरह मुक्त हैं—ऐसे ज्ञानी पुरुष उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ उस परम पद को पाने की योग्यताएं बताई गई हैं। जिस व्यक्ति का अहंकार और अज्ञान मिट चुका है, जो सांसारिक आकर्षणों से मुक्त है, जिसका ध्यान सदा आत्म-चिंतन में रहता है और जो सुख-दुःख की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में डिगता नहीं, वही उस अमर स्थिति को पा सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार, मोह और कामनाओं का त्याग करके ही मनुष्य जीवन की परम स्थिति और अखंड शांति को प्राप्त कर सकता है।

### श्लोक संख्या: 15.06

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम || 06 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस मेरे परम धाम को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चंद्रमा और न अग्नि ही; वही मेरा परम धाम है।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता के सबसे प्रसिद्ध श्लोकों में से एक है। भगवान अपने स्वरूप और परम धाम का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि वह स्थिति भौतिक प्रकाश (सूर्य, चाँद या अग्नि) पर निर्भर नहीं है, बल्कि वह स्वयं परम प्रकाश स्वरूप है। वहाँ पहुँचने के बाद जीवात्मा का अज्ञान हमेशा के लिए मिट जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमेश्वर का परम धाम स्वयं-प्रकाशित और चेतना का वह उच्चतम स्तर है जहाँ अज्ञान का अंधकार कभी पहुँच नहीं सकता।

### श्लोक संख्या: 15.07

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।

मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ 07 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस देह में यह सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है; और वही प्रकृति में स्थित मन तथा पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता (खींचता) है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर जीव के भीतर जो चेतना है, वह मूलतः परमात्मा का ही सनातन अंश है। लेकिन जब यह जीवात्मा इस भौतिक संसार में आती है, तो वह प्रकृति से उत्पन्न मन और पाँचों इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा) के साथ जुड़कर उनके बंधनों को ढोने लगती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारा वास्तविक स्वरूप ईश्वर का ही अंश है, किंतु मन और इन्द्रियों के प्रभाव में आकर हम अपने इस दिव्य स्वरूप को भूल जाते हैं।

### श्लोक संख्या: 15.08

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ।

गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ 08 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

बायु जैसे फूलों आदि के स्थान से गंध को ग्रहण करके ले जाती है, वैसे ही शरीर का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर को त्यागता है और जिस नए शरीर को प्राप्त होता है, उसमें इन इन्द्रियों और मन को अपने साथ लेकर जाता है।

#### सरल व्याख्या:

जब मृत्यु होती है, तो केवल भौतिक शरीर नष्ट होता है। जीवात्मा जब एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाती है, तो वह अपने साथ मन, इन्द्रियों के सूक्ष्म संस्कारों और वासनाओं को भी ले जाती है। जैसे बहती हवा अपने साथ फूलों की सुगंध ले जाती है, ठीक वैसे ही चेतना अपने संस्कारों के साथ यात्रा करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मृत्यु केवल शरीर की होती है; हमारे विचार, संस्कार और मन की वृत्तियाँ जीवात्मा के साथ अगले जीवन में भी यात्रा करती हैं।



### श्लोक संख्या: 15.09

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।

अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ 09 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यह जीवात्मा कान, आँख, त्वचा, रसना (जीभ) और घ्राण (नाक) तथा मन का आश्रय लेकर ही विषयों का सेवन करती है।

#### सरल व्याख्या:

जीवात्मा इस शरीर में रहकर मन के माध्यम से इन पाँचों इन्द्रियों का उपयोग करती है और संसार के शब्द, रूप, स्पर्श, रस और गंध का आनंद या दुःख भोगती है। वास्तव में भोगने वाली इन्द्रियाँ नहीं, बल्कि उनके पीछे बैठी चेतना ही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर और इन्द्रियाँ केवल साधन हैं; उनके पीछे स्थित चेतना ही संसार के सभी अनुभवों का मूल केंद्र है।

### श्लोक संख्या: 15.10

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

शरीर को छोड़कर जाते हुए को, शरीर में स्थित हुए को अथवा विषयों को भोगते हुए को तथा गुणों से युक्त हुए को भी अज्ञानी मनुष्य नहीं देख पाते; केवल ज्ञान रूपी नेत्रों वाले विवेकशील पुरुष ही तत्त्व से देखते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि यह जीवात्मा शरीर में कैसे रहती है, कैसे भोग भोगती है और कैसे शरीर छोड़कर चली जाती है—इस गूढ़ रहस्य को अज्ञानी लोग नहीं देख पाते क्योंकि वे केवल बाहरी भौतिक शरीर को देखते हैं। लेकिन जिनके पास ज्ञान और विवेक की दृष्टि है, वे इसके भीतर बैठी उस सूक्ष्म चेतना को स्पष्ट रूप से समझ पाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन के सूक्ष्म आध्यात्मिक सत्यों को समझने के लिए केवल सांसारिक आँखें नहीं, बल्कि ज्ञान की दृष्टि आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 15.11

यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।

यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यत्न करने वाले योगी जन अपने हृदय में स्थित इस आत्मा को तत्व से देखते हैं; किंतु जिन्होंने अपने अंतःकरण को शुद्ध नहीं किया है ऐसे अज्ञानी मनुष्य यत्न करने पर भी इसको नहीं देख पाते।

#### सरल व्याख्या:

अपनी साधना में लगे हुए योगी अपने भीतर ही इस परम चेतना का अनुभव कर लेते हैं। लेकिन जिनका मन अशुद्ध है, जिनमें वासनाएं और अहंकार भरा हुआ है, वे यदि बाहर से केवल अभ्यास या बातें भी करें, तो भी वे इस आत्म-सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। साधना के साथ अंतःकरण की शुद्धि अनिवार्य है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्मज्ञान की प्राप्ति केवल कोरी कोशिशों से नहीं, बल्कि अंतःकरण और मन की पवित्रता से संभव होती है।

### श्लोक संख्या: 15.12

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।

यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सूर्य में स्थित जो तेज संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है, तथा जो तेज चंद्रमा में है और जो तेज अग्नि में है—उस तेज को तुम मेरा ही तेज समझो।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण संपूर्ण ब्रह्मांड की ऊर्जा का स्रोत स्वयं को बताते हैं। वे कहते हैं कि सूर्य की चमक और गर्मी, चंद्रमा की शीतलता और अग्नि की ताप-शक्ति—यह सब मेरी ही शक्ति का विस्तार है। प्रकृति की इन विशाल शक्तियों के पीछे मेरी ही परम चेतना कार्य कर रही है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रकृति की समस्त ऊर्जा और प्रकाश का मूल स्रोत परमात्मा ही है; हमें हर प्राकृतिक शक्ति में ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 15.13

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा |

पुष्पाणि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः || 13 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

और मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब प्राणियों को धारण करता हूँ और रसस्वरूप चंद्रमा होकर सम्पूर्ण औषधियों को (वनस्पतियों को) पुष्ट करता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान समझाते हैं कि पृथ्वी में जो धारण करने की क्षमता (गुरुत्वाकर्षण और पोषण शक्ति) है, वह मेरी ही ऊर्जा है। वही ऊर्जा इस धरती पर जीव-जंतुओं और पेड़-पौधों को संभाले हुए है। साथ ही, चंद्रमा के रूप में रस और पोषण देकर सभी वनस्पतियों, अन्न और औषधियों को जीवन देने वाला तत्व भी मैं ही हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे जीवन और प्रकृति का संतुलन परमेश्वर की ही अव्यक्त शक्ति द्वारा निरंतर संचालित और पोषित हो रहा है।

### श्लोक संख्या: 15.14

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः |

प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित रहने वाला वैश्वानर (जठराग्नि) होकर, प्राण और अपान वायु से संयुक्त होकर चार प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान भोजन और पोषण का विज्ञान समझाते हैं। वे कहते हैं कि हमारे पेट में जो भोजन को पचाने वाली अग्नि (पाचन शक्ति) है, वह कोई भौतिक प्रक्रिया मात्र नहीं बल्कि स्वयं ईश्वर की शक्ति है। वह शक्ति प्राण और अपान वायु के संतुलन से हमारे द्वारा खाए गए चारों प्रकार के अन्न (चबाकर, चूसकर, चाटकर और पीकर खाए जाने वाले भोजन) को पचाकर शरीर को ऊर्जा देती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारा जीवन केवल भोजन करने से नहीं चलता, बल्कि उस भोजन को पचाकर शरीर का अंग बनाने वाली ईश्वर की आंतरिक शक्ति से चलता है।

### श्लोक संख्या: 15.15

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।  
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्धामी रूप में स्थित हूँ; और मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय का निवारण या भूलना) होता है। सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूँ; तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह अध्यात्म का अत्यंत महत्वपूर्ण श्लोक है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर जीव के हृदय में चेतना रूप से मैं विराजमान हूँ। हमारी याददाश्त (स्मृति), हमारी समझ (ज्ञान) और मन के भ्रम का मिटना—सब परमात्मा से ही संचालित होता है। दुनिया के समस्त शास्त्र और वेद अंततः उसी एक परमेश्वर को जानने का प्रयास करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी बुद्धि और चेतना का मूल केंद्र परमात्मा है; शास्त्रों को पढ़ने का अंतिम ध्येय उसी अंतर्धामी ईश्वर का अनुभव करना है।

### श्लोक संख्या: 15.16

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।  
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस संसार में दो प्रकार के पुरुष (तत्व) हैं—क्षर (नाशवान) और अक्षर (अविनाशी)। इनमें समस्त प्राणियों के शरीर तो 'क्षर' कहे जाते हैं और कूटस्थ जीवात्मा 'अक्षर' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् यहाँ जगत् की संरचना को दो भागों में बाँटते हैं। पहला है 'क्षर' यानी वह सब कुछ जो निरंतर बदल रहा है और एक दिन नष्ट हो जाएगा (हमारा यह भौतिक शरीर और दृश्य संसार)। दूसरा है 'अक्षर' यानी वह चेतना या आत्मा जो शरीर के बदलने पर भी कभी नष्ट नहीं होती और स्थिर रहती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... यह संसार परिवर्तनशील शरीर (क्षर) और अचल आत्मा (अक्षर) का संगम है।

### श्लोक संख्या: 15.17

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु इन दोनों (क्षर और अक्षर) से उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जिसे 'परमात्मा' कहा गया है; जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका भरण-पोषण करता है और जो अविनाशी ईश्वर है।

#### सरल व्याख्या:

'क्षर' (शरीर) और 'अक्षर' (जीवात्मा) से भी ऊपर एक तीसरा और सर्वोच्च तत्व है, जिसे 'उत्तम पुरुष' या 'परमात्मा' कहा जाता है। वह परमात्मा पूरी सृष्टि में व्याप्त होकर सबका पालन-पोषण करता है। वही पूरे ब्रह्मांड को अपनी सत्ता से संभाले हुए है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा शरीर और आत्मा दोनों का परम आधार है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड का भरण-पोषण करने वाला परमेश्वर है।

### श्लोक संख्या: 15.18

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

चूँकि मैं नाशवान क्षर (शरीर) से सर्वथा परे हूँ और अविनाशी अक्षर (जीवात्मा) से भी उत्तम हूँ, इसलिए संसार में और वेदों में भी 'पुरुषोत्तम' नाम से प्रसिद्ध हूँ।

#### सरल व्याख्या:

भगवान इस अध्याय का रहस्य स्पष्ट करते हैं कि इस अध्याय का नाम 'पुरुषोत्तमयोग' क्यों है। क्योंकि श्रीकृष्ण क्षर (संसार) से परे हैं और अक्षर (जीव) से भी श्रेष्ठ हैं, इसीलिए वेदों और लोक-शास्त्रों में उन्हें 'पुरुषोत्तम' (पुरुषों में सर्वोत्तम/परम पुरुष) कहा गया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भगवान श्रीकृष्ण ही वह सर्वोच्च सत्ता हैं जो संसार और जीवात्मा दोनों से परे तथा परम पूज्य हैं।

### श्लोक संख्या: 15.19

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ।  
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! जो ज्ञानी मनुष्य इस प्रकार संशय-रहित होकर मुझे 'पुरुषोत्तम' जानता है, वह सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) हो जाता है और वह निरंतर सब प्रकार से मेरा ही भजन (चिंतन) करता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि जिस व्यक्ति के मन से यह भ्रम मिट जाता है और वह परमात्मा के इस 'पुरुषोत्तम' स्वरूप को गहराई से समझ लेता है, उसे फिर कुछ और जानना बाकी नहीं रहता। ऐसा व्यक्ति अपने मन, बुद्धि और कर्मों से पूरी तरह ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भगवान को संपूर्ण सृष्टि के स्वामी (पुरुषोत्तम) रूप में स्वीकार कर लेना ही ज्ञान की पूर्णता है।

### श्लोक संख्या: 15.20

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ ।  
एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति गोपनीय (परम रहस्यमय) शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया है। इसको तत्व से जानकर मनुष्य बुद्धिमान और कृतकृत्य (जिसका सब कर्तव्य पूरा हो गया हो) हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

यह इस अध्याय का अंतिम और उपसंहार श्लोक है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैंने तुम्हें यह परम गोपनीय और श्रेष्ठ ज्ञान दे दिया है। जो मनुष्य इस सत्य को समझ लेता है, उसका जीवन सफल हो जाता है, उसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है और उसके जीवन के समस्त कर्तव्य पूर्ण हो जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पुरुषोत्तम योग का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मनुष्य के जीवन का परम उद्देश्य सिद्ध हो जाता है और वह पूर्ण शांति को पाता है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः || 15 ||



## अध्याय 16: दैवासुरसम्पद्विभागयोग

Satyaanubhuti Ashram



## श्लोक संख्या: 16.01

श्रीभगवानुवाच ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—अभय (भय का पूरी तरह से न होना), अंतःकरण की पूर्ण पवित्रता, ज्ञान और योग में निरंतर स्थिति, दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय (शास्त्रों का अध्ययन), तप और सरलता।

### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ से दैवी संपदा (दैवीय गुणों) की व्याख्या शुरू करते हैं। पहला गुण है 'अभय' यानी सत्य के मार्ग पर चलते हुए निर्भय रहना। इसके साथ ही मन की शुद्धि, ज्ञान साधना में निष्ठा, निस्वार्थ दान, अपनी इन्द्रियों पर संयम, स्वाध्याय और व्यवहार में छल-कपट रहित सरलता—ये सब मनुष्य को दिव्य चेतना की ओर ले जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भयमुक्त होना और मन को पवित्र रखकर सरलता से जीवन जीना ही दैवीय जीवन शैली की पहली नींव है।

## श्लोक संख्या: 16.02

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।

दया भूतेष्वलोलुपत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

अहिंसा (किसी जीव को दुख न देना), सत्य, क्रोध न करना, त्याग, शांति, चुगली न करना (किसी की निंदा न करना), सब प्राणियों पर दया, विषयों में न ललचाना (अलोलुपता), कोमलता, लज्जा (गलत काम करने से संकोच) और चंचलता का न होना।

### सरल व्याख्या:

भगवान् दैवी संपदा के अगले गुणों को गिनाते हैं। मन, वाणी या कर्म से किसी को कष्ट न पहुँचाना, सदा सत्य बोलना, विपरीत परिस्थिति में भी क्रोध न करना, दूसरों की निंदा या चुगली करने से बचना, सभी जीवों के प्रति दया भाव रखना और व्यर्थ की चंचलता छोड़कर शांत रहना—ये सब एक महान् चरित्र के लक्षण हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... वाणी का सत्य, मन की शांति और सभी जीवों के प्रति दया ही व्यक्ति के आत्मिक विकास का सच्चा मापदंड है।

### श्लोक संख्या: 16.03

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।

भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ 03 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतर की शुद्धि, किसी में द्रोह (शत्रुता) भाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का न होना—हे भारत! ये सब दैवी संपदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

#### सरल व्याख्या:

दैवी गुणों का समापन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस व्यक्ति के भीतर आत्मिक प्रभाव (तेज), दूसरों को क्षमा करने का सामर्थ्य, कठिन समय में धैर्य, पवित्रता, किसी के प्रति वैर भाव न होना और खुद को बहुत बड़ा न समझने की नम्रता होती है, वह व्यक्ति दैवीय संस्कारों के साथ जन्मा माना जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार से मुक्ति, क्षमाशीलता और आंतरिक स्वच्छता ही मनुष्य को ईश्वर के निकट लाती है।

### श्लोक संख्या: 16.04

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।

अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ 04 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! दंभ (पाखंड), दर्प (घमंड), अभिमान, क्रोध, कठोरता (निर्दयता) और अज्ञान—ये सब आसुरी (आसुरी प्रवृत्तियों वाली) संपदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं।

#### सरल व्याख्या:

अब भगवान 'आसुरी संपदा' यानी नकारात्मक गुणों का वर्णन करते हैं। दिखावा करना (दंभ), अपनी संपत्ति या ज्ञान का घमंड करना (दर्प), स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ समझना, बात-बात पर गुस्सा होना, कटु और कठोर वचन बोलना तथा सही-गलत का ज्ञान न होना—ये सब लक्षण व्यक्ति को पतन की ओर ले जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... पाखंड, अहंकार और क्रोध ही मनुष्य के भीतर के आसुरी स्वभाव को जाग्रत करते हैं।

### श्लोक संख्या: 16.05

दैवी सम्पद्धिमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ 05 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

दैवी संपदा मुक्ति के लिए मानी गई है और आसुरी संपदा बंधन के लिए मानी गई है; इसलिए हे पाण्डव! तुम शोक मत करो, क्योंकि तुम दैवी संपदा को लेकर उत्पन्न हुए हो।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन को आश्वस्त करते हैं कि दैवीय गुण मनुष्य को दुःखों और जन्म-मरण के बंधन से मुक्त करते हैं, जबकि आसुरी गुण इंसान को संसार के मोह-माया और कष्टों में बाँधते हैं। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तुम्हें चिंता करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम्हारा स्वभाव जन्म से ही दैवीय गुणों से युक्त है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे सद्गुण ही हमारी परम मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं, जबकि दुर्गुण हमें दुःखों में बाँधते हैं।

### श्लोक संख्या: 16.06

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।

दैवो विस्तृतशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ 06 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! इस संसार में प्राणियों की सृष्टि दो ही प्रकार की है—एक दैवी और दूसरी आसुरी। उनमें से दैवी स्वभाव का विस्तार से वर्णन किया गया, अब तुम आसुरी स्वभाव को मेरे से विस्तारपूर्वक सुनो।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि इस दुनिया में केवल दो ही तरह की प्रवृत्तियाँ या मानसिक संरचनाएँ पाई जाती हैं—एक सकारात्मक/दैवीय और दूसरी नकारात्मक/आसुरी। दैवीय गुणों को बताने के बाद, अब श्रीकृष्ण आसुरी प्रवृत्तियों की बारीकियों को समझाते हैं ताकि मनुष्य उनसे बच सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बुराई के लक्षणों को पहचानना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि अच्छाई को अपनाना, ताकि हम पतन से बच सकें।

### श्लोक संख्या: 16.07

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।  
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥ 07 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

आसुरी प्रवृत्ति वाले मनुष्य यह नहीं जानते कि किस कार्य में प्रवृत्ति होनी चाहिए (क्या करना चाहिए) और किस कार्य से निवृत्त होना चाहिए (क्या नहीं करना चाहिए)। उनमें न तो शुद्धि होती है, न श्रेष्ठ आचरण होता है और न ही सत्य होता है।

#### सरल व्याख्या:

आसुरी स्वभाव के लोगों की मुख्य पहचान यह है कि उनका विवेक नष्ट हो चुका होता है। वे यह भेद नहीं कर पाते कि धर्म क्या है और अधर्म क्या। उनके जीवन में न तो स्वच्छता (मानसिक या शारीरिक) होती है, न आचार-विचार की मर्यादा होती है और न ही वे सत्य का आचरण करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सही और गलत के विवेक का खो जाना ही आसुरी जीवन शैली की शुरुआत है।

### श्लोक संख्या: 16.08

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।  
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ 08 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वे आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कहा करते हैं कि यह जगत आश्रय-रहित (बिना किसी आधार के), असत्य और बिना ईश्वर के है; केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है, इसलिए केवल काम-भोग ही इसका कारण है, इसके अलावा और क्या है?

#### सरल व्याख्या:

नास्तिक और आसुरी सोच वाले लोग मानते हैं कि इस दुनिया को चलाने वाला कोई ईश्वर या नैतिक नियम नहीं है। वे सोचते हैं कि यह संसार केवल भौतिक और काम-वासना के संयोग से चल रहा है। उनके लिए जीवन का एकमात्र उद्देश्य केवल खाना, पीना और भोग भोगना ही रह जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन को केवल भौतिक भोगों तक सीमित मानना और परम सत्ता को नकारना आसुरी सोच का मुख्य आधार है।

### श्लोक संख्या: 16.09

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः |

प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः || 09 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इस नास्तिक (गलत) दृष्टिकोण का आश्रय लेकर, जिनकी आत्मा नष्ट हो चुकी है और जिनकी बुद्धि मंद (अल्प) है, वे क्रूर कर्म करने वाले और सबका अहित करने वाले मनुष्य जगत का नाश करने के लिए ही समर्थ होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य ईश्वर, धर्म और नैतिकता को पूरी तरह नकार देता है, तो उसकी बुद्धि संकीर्ण हो जाती है। ऐसी सोच रखने वाले लोग अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए क्रूर और हिंसक कर्म करते हैं। वे समाज का भला करने के बजाय पूरी दुनिया के विनाश का कारण बनने लगते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संकीर्ण और स्वार्थी दृष्टिकोण से किए गए कर्म न केवल स्वयं का नाश करते हैं बल्कि पूरे समाज के लिए विनाशकारी होते हैं।

### श्लोक संख्या: 16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः |

मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिचरताः || 10 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

वे कभी न पूरी होने वाली काम-वासनाओं का आश्रय लेकर, दंभ (पाखंड), मान और मद से युक्त होकर, अज्ञानवश मिथ्या (गलत) सिद्धांतों को ग्रहण करके, अशुद्ध आचरण के साथ संसार में विचरते हैं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि आसुरी स्वभाव के लोगों की इच्छाएं कभी तृप्त नहीं होतीं। वे एक इच्छा पूरी करते हैं तो दस नई इच्छाएं पैदा हो जाती हैं। वे घमंड, दिखावे और झूठी प्रतिष्ठा में डूबे रहते हैं। वे अज्ञान के कारण गलत धारणाओं को अपना लेते हैं और अपवित्र आचरण करते हुए अपनी पूरी जिंदगी व्यर्थ गँवा देते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... असीम सांसारिक इच्छाएँ और झूठा घमंड मनुष्य को कभी न समाप्त होने वाले अशांति के चक्रव्यूह में फँसा देता है।

## श्लोक संख्या: 16.11

चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः ।

कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ 11 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

जो मृत्युपर्यंत रहने वाली अपार चिंताओं का आश्रय लिए रहते हैं, विषय-भोगों के भोगने को ही परम पुरुषार्थ मानने वाले हैं और 'बस, इतना ही सुख है' ऐसा निश्चय रखने वाले हैं।

### सरल व्याख्या:

आसुरी प्रवृत्ति के लोग सांसारिक वस्तुओं और भोगों को ही जीवन का सब कुछ मान लेते हैं। इस कारण वे जीवन भर अनगिनत चिंताओं और तनाव से घिरे रहते हैं, जो केवल मृत्यु के साथ ही समाप्त होती हैं। वे कभी आत्म-शांति का अनुभव नहीं कर पाते।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल सांसारिक भोगों में सुख खोजना अनंत चिंताओं और अशांति को निमंत्रण देना है।

## श्लोक संख्या: 16.12

आशापाशशतैर्बद्धः कामक्रोधपरायणाः ।

ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान् ॥ 12 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

आशा रूपी सैकड़ों पासों (रस्सियों) से बंधे हुए और काम-क्रोध के परायण हुए वे लोग विषय-भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धन-संग्रह करने की चेष्टा करते हैं।

### सरल व्याख्या:

ऐसे लोग इच्छाओं और उम्मीदों के जाल में जकड़े रहते हैं। जब उनकी इच्छा पूरी नहीं होती, तो वे क्रोधित होते हैं। अपनी काम-वासनाओं और भोगों की पूर्ति के लिए वे सही-गलत का विचार छोड़ देते हैं और अधर्म या अन्याय के रास्ते से धन जुटाने में लग जाते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... असीमित आशाएं और तीव्र वासनाएं मनुष्य को अनैतिक और अन्यायपूर्ण आचरण की ओर धकेलती हैं।

### श्लोक संख्या: 16.13

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

वे सोचा करते हैं कि—'आज मैंने यह प्राप्त कर लिया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त कर लूँगा; मेरे पास इतना धन है और फिर भी यह धन मेरा हो जाएगा।'

#### सरल व्याख्या:

यहाँ आसुरी सोच वाले व्यक्ति के अहंकार और लालच का सजीव चित्रण है। वह हर समय केवल संग्रह और बढ़ोतरी के जोड़-तोड़ में लगा रहता है—'आज यह मिला, कल वह हड़प लूँगा, मेरे पास इतना है और आगे इतना और हो जाएगा।' वह ईश्वर की कृपा को भूलकर केवल अपनी योजनाओं पर घमंड करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल धन और संपत्ति के अंतहीन विस्तार की सोच मनुष्य को अंततः पतन की ओर ले जाती है।

### श्लोक संख्या: 16.14

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

'वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया और उन दूसरे शत्रुओं को भी मैं मार डालूँगा; मैं ही ईश्वर (स्वामी) हूँ, मैं ही भोगी हूँ, मैं ही सिद्ध हूँ, बलवान हूँ और सुखी हूँ।'

#### सरल व्याख्या:

अहंकार जब चरम पर पहुँचता है, तो व्यक्ति स्वयं को ही ईश्वर मानने लगता है। वह दूसरों को अपना शत्रु समझकर उन्हें नीचा दिखाने या नष्ट करने की योजनाएँ बनाता है। वह सोचता है कि वही सबसे अधिक शक्तिशाली, सफल और जीवन का असली स्वामी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं को सर्वशक्तिमान समझना और दूसरों के प्रति वैर-भाव रखना विनाश का सबसे बड़ा कारण है।

### श्लोक संख्या: 16.15

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया |  
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः || 15 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

'मैं बड़ा धनी और ऊँचे कुल वाला हूँ; मेरे समान दूसरा कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, दान दूँगा और आनंद मनाऊँगा'—इस प्रकार अज्ञान से मोहित रहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

आसुरी स्वभाव का व्यक्ति अपने धन, कुल और सामाजिक स्थिति के घमंड में अंधा हो जाता है। वह धार्मिक कर्म, यज्ञ या दान भी केवल अपने दिखावे और नाम के लिए करता है ताकि लोग उसकी वाह-वाही करें। उसका मूल उद्देश्य केवल अपना अहंकार बढ़ाना होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और दिखावे के लिए किए गए शुभ कार्य भी अज्ञान और पाखंड की श्रेणी में आते हैं।

### श्लोक संख्या: 16.16

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः |  
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ || 16 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त वाले, मोह रूपी जाल में फँसे हुए और विषय-भोगों में अत्यंत आसक्त आसुरी लोग महान अशुद्ध नरक में गिरते हैं।

#### सरल व्याख्या:

गलत प्राथमिकताओं के कारण ऐसे लोगों का मन कभी शांत नहीं रहता। वे मोह के जाल में बुरी तरह उलझ जाते हैं। केवल शारीरिक और मानसिक भोगों में डूबे रहने के कारण वे अपने जीवन को दुःखों, अशांति और पतन के गर्त में धकेल देते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... विवेकहीनता और अत्यधिक आसक्ति मनुष्य के जीवन को नारकीय और कष्टमयी बना देती है।



### श्लोक संख्या: 16.17

आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।

यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम् ॥ 17 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अपने-आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले, घमंडी, धन और मान के मद में चूर वे लोग केवल नाममात्र के यज्ञों द्वारा ढोंग (दंभ) से, बिना शास्त्र-विधि के पूजा-पाठ करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जो लोग खुद को सर्वोपरि मानते हैं, वे न तो किसी नियम को मानते हैं और न ही किसी गुरु या शास्त्र की बात सुनते हैं। वे जो भी पूजा, अनुष्ठान या समाज सेवा करते हैं, वह सब केवल अपनी झूठी प्रतिष्ठा और दिखावे के लिए होता है। उसमें न भक्ति होती है और न ही विधि का पालन।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना श्रद्धा और नियम के केवल दिखावे के लिए किए गए धार्मिक कार्य निष्फल रहते हैं।

### श्लोक संख्या: 16.18

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।

मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ 18 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अहंकार, बल, घमंड, काम और क्रोध का आश्रय लेने वाले वे ईर्ष्यालु लोग अपने और दूसरों के शरीर में स्थित मुझ परमात्मा से द्वेष करते हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर प्राणी के भीतर ईश्वर का वास है। लेकिन जो लोग अहंकार, ताकत का नशा, वासना और गुस्से के अधीन होते हैं, वे दूसरों को कष्ट पहुँचाकर वास्तव में उनके भीतर बैठे परमात्मा का ही अनादर और उत्पीड़न करते हैं। वे ईर्ष्या के कारण सत्य का विरोध करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... किसी भी जीव को पीड़ा पहुँचाना या उससे द्वेष करना वास्तव में उसके भीतर स्थित परमात्मा से द्वेष करना है।

### श्लोक संख्या: 16.19

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।  
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

उन द्वेष करने वाले, क्रूर, अपवित्र और मनुष्यों में नीच स्वभाव वालों को मैं संसार में बार-बार आसुरी योनियों में ही डालता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

यह कर्म के अटूट सिद्धांत का वर्णन है। जो लोग निरंतर ईर्ष्या, क्रूरता और पाप कर्मों में लगे रहते हैं, उनका चेतना-स्तर इतना गिर जाता है कि वे प्रकृति के नियमानुसार बार-बार वैसी ही अशांत, दुखद और निम्न परिस्थितियों में जन्म लेते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मनुष्य का अपना आचरण और कर्म ही उसकी भावी गति और परिस्थितियों का निर्धारण करते हैं।

### श्लोक संख्या: 16.20

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।  
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र अर्जुन! वे मूर्ख (अज्ञानी) जन्म-जन्मांतर में आसुरी योनियों को प्राप्त होते हुए मुझे न प्राप्त होकर उससे भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य अपने दुर्गुणों को सुधारने का प्रयास नहीं करता, तो वह अज्ञान के चक्रव्यूह में फँसता चला जाता है। ईश्वर की ओर ध्यान न देने और केवल बुराइयों में रमे रहने के कारण वह आत्म-कल्याण के मार्ग से पूरी तरह भटक जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... यदि समय रहते अपने दोषों को दूर न किया जाए, तो मनुष्य आत्म-विकास के अवसर खो देता है।

### श्लोक संख्या: 16.21

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

काम (वासना), क्रोध और लोभ—ये तीनों आत्मा का नाश करने वाले (पतन की ओर ले जाने वाले) नरक के तीन द्वार हैं; इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण सभी बुराइयों के मूल कारणों को संक्षेप में बताते हैं। वे कहते हैं कि काम-वासना, अत्यधिक गुस्सा और लालच ही वे तीन मुख्य द्वार हैं जो मनुष्य की बुद्धि का नाश करते हैं और उसे पतन के गर्त में गिराते हैं। यदि मनुष्य शांति और अपना कल्याण चाहता है, तो उसे इन तीनों का तुरंत त्याग कर देना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... काम, क्रोध और लोभ ही मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं, जिनसे दूर रहकर ही आत्म-कल्याण संभव है।

### श्लोक संख्या: 16.22

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! इन तीनों अंधकार रूपी द्वारों से मुक्त हुआ मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है और उससे परम गति (परमात्मा) को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान कहते हैं कि जो साधक काम, क्रोध और लोभ रूपी तीनों द्वारों से बचकर निकल जाता है, वह अपने जीवन में शुभ और कल्याणकारी कर्म करने लगता है। ऐसा निष्पाप व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी चेतना को ऊँचा उठाकर परम पद को प्राप्त कर लेता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दुर्गुणों से मुक्ति मिलते ही मनुष्य का मार्ग स्वतः ही ईश्वर और परम शांति की ओर प्रशस्त हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 16.23

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः |  
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् || 23 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य शास्त्र-विधि को छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न सुख को और न परम गति को ही प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण जीवन के नियमों का महत्व बताते हैं। वे कहते हैं कि जो व्यक्ति धर्म-ग्रंथों और ज्ञानियों द्वारा बताए गए श्रेष्ठ नियमों को नकार कर केवल अपने मनमौजी स्वभाव और वासनाओं के अनुसार चलता है, उसे जीवन में न तो वास्तविक सफलता (सिद्धि) मिलती है, न शांति मिलती है और न ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मनमानी जीवन शैली की जगह शास्त्र और विवेकपूर्ण मर्यादाओं का पालन करना ही सच्ची उन्नति का आधार है।

### श्लोक संख्या: 16.24

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ |  
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि || 24 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए तुम्हारे लिए कर्तव्य और अकर्तव्य (क्या करने योग्य है और क्या नहीं) की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर तुम्हें शास्त्र-विधि से नियत किए गए कर्मों को ही करना चाहिए।

#### सरल व्याख्या:

यह इस अध्याय का अंतिम श्लोक है। भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि जीवन में जब भी यह भ्रम उत्पन्न हो कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं, तो तुम्हें शास्त्रों और महान् आचार्यों द्वारा बताए गए धर्म-मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए। मर्यादा में रहकर अपने कर्तव्यों का पालन करना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीवन के कठिन मोड़ पर कर्तव्य का सही निर्णय लेने के लिए शास्त्र और धर्म की मर्यादा ही हमारी सच्ची मार्गदर्शक है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः || 16 ||



## अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 17.01

अर्जुन उवाच ।

ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे कृष्ण! जो मनुष्य शास्त्र-विधि को छोड़कर केवल श्रद्धा से युक्त होकर पूजा-पाठ आदि करते हैं, उनकी वह निष्ठा (स्थिति) कैसी है? सात्त्विकी है, राजसी है अथवा तामसी?

### सरल व्याख्या:

पिछले अध्याय के अंत में भगवान ने कहा था कि कर्तव्य के निर्णय में शास्त्र ही प्रमाण हैं। इस पर अर्जुन प्रश्न पूछते हैं कि ऐसे लोग जो शास्त्रों के कठिन नियमों को तो नहीं जानते या उनका पालन नहीं कर पाते, लेकिन मन में पूरी श्रद्धा रखकर ईश्वर की पूजा करते हैं, उनकी वह पूजा किस श्रेणी में आएगी? क्या वह सात्त्विक है, राजसिक है या तामसिक?

यह श्लोक हमें बताता है कि... नियमों के ज्ञान से भी बढ़कर मन की आंतरिक भावना और श्रद्धा का अपना विशेष स्थान होता है।

## श्लोक संख्या: 17.02

श्रीभगवानुवाच ।

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान बोले—मनुष्यों की वह बिना शास्त्रों के संस्कार से उत्पन्न हुई स्वभावजन्य श्रद्धा तीन प्रकार की ही होती है—सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी। उसको तुम मेरे से सुनो।

### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हर व्यक्ति के भीतर उसकी अपनी श्रद्धा होती है, और यह श्रद्धा उसके पूर्व जन्मों के संस्कारों तथा स्वभाव के अनुसार तीन प्रकार की होती है। व्यक्ति जैसा गुण अपने भीतर बढ़ाता है, उसकी श्रद्धा भी वैसी ही बन जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी श्रद्धा और विश्वास हमारे अपने आंतरिक स्वभाव और गुणों के दर्पण हैं।

### श्लोक संख्या: 17.03

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत |

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः || 03 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! सब मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है। यह मनुष्य श्रद्धामय ही है; इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही (वैसा ही) है।

#### सरल व्याख्या:

यह अध्यात्म का अत्यंत गहरा सूत्र है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य वास्तव में अपनी श्रद्धा का ही रूप है। जैसी उसकी गहरी आस्था और सोच होगी, वैसा ही उसका व्यक्तित्व बन जाएगा। जो उच्च आदर्शों में श्रद्धा रखता है वह महान बनता है, और जो निम्न बातों में श्रद्धा रखता है वह वैसा ही बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हम वही हैं जो हमारी श्रद्धा है; हमारे विचार और विश्वास ही हमारे जीवन की दिशा तय करते हैं।

### श्लोक संख्या: 17.04

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः |

प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः || 04 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

सात्त्विक पुरुष देवों को पूजते हैं; राजस पुरुष यक्षों और राक्षसों को पूजते हैं; तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेतों और भूतगणों को पूजते हैं।

#### सरल व्याख्या:

गुणों के आधार पर पूजा-भावना बदल जाती है। सात्त्विक मन वाले लोग प्रकाश और कल्याण के प्रतीक देवों की आराधना करते हैं। राजसिक लोग धन, शक्ति और कामनाओं की पूर्ति के लिए यक्ष-राक्षसी शक्तियों को पूजते हैं। और तमोगुणी लोग अंधकार, भय और जादू-टोने से जुड़ी शक्तियों की ओर आकर्षित होते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... व्यक्ति किसकी पूजा या आराधना करता है, उससे उसके आंतरिक गुणों का पता चलता है।



### श्लोक संख्या: 17.05

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।

दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ 05 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित केवल मनगढ़ंत घोर तप को तपते हैं तथा जो दंभ (पाखंड) और अहंकार से युक्त हैं तथा कामना, आसक्ति और बल के घमंड से युक्त हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ गलत प्रकार के तप और हठ साधना की चेतावनी देते हैं। कुछ लोग केवल दूसरों को दिखाने, अपनी इच्छाएं पूरी करने या घमंड के कारण अपने शरीर को कष्ट देने वाले कठोर और अज्ञानपूर्ण नियम बना लेते हैं। ऐसी हठ साधना सात्त्विक नहीं होती।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल शरीर को पीड़ा देना या दिखावे के लिए कठोर नियम अपनाना सच्चा तप नहीं है।

### श्लोक संख्या: 17.06

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।

मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ 06 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो शरीर में स्थित इन्द्रिय-समुदाय को और शरीर के भीतर रहने वाले मुझ परमात्मा को भी सुखाते (कष्ट देते) हैं, उन अज्ञानियों को तुम आसुरी निश्चय वाले समझो।

#### सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट करते हैं कि हमारे शरीर के भीतर स्वयं ईश्वर का निवास है। जो लोग बिना किसी ज्ञान के व्यर्थ का हठ करके अपने शरीर को अत्यधिक पीड़ा देते हैं, वे वास्तव में अपने भीतर स्थित परमात्मा को ही कष्ट पहुँचाते हैं। ऐसी सोच को श्रीकृष्ण आसुरी स्वभाव कहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शरीर का सही रख-रखाव और आदर करना आवश्यक है; ईश्वर की प्राप्ति आत्म-पीड़न से नहीं होती।

### श्लोक संख्या: 17.07

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।

यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ 07 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है। वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं। उनके इस भेद को तुम मेरे से सुनो।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ से भगवान हमारे दैनिक जीवन की चार मुख्य बातों—आहार (भोजन), यज्ञ (कर्तव्य कर्म), तप (अनुशासन) और दान (सेवा)—का वर्गीकरण करते हैं। वे समझाते हैं कि तीनों गुणों के प्रभाव से मनुष्य का खान-पान और कर्म करने का तरीका भी तीन प्रकार का हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे विचार, भोजन की पसंद और कर्मों का तरीका हमारे गुणों से तय होता है।

### श्लोक संख्या: 17.08

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।

रसियाः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ 08 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य (स्वास्थ्य), सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रसयुक्त, चिकने (अच्छे घी-तेल से युक्त), स्थिर रहने वाले और मन को भाने वाले भोजन सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक भोजन की पहचान यह है कि वह ताज़ा, सुपाच्य, पौष्टिक और मन को प्रसन्न करने वाला होता है। ऐसा ताज़ा और शुद्ध भोजन शरीर को रोगमुक्त रखता है, आयु बढ़ाता है और मन में शांति तथा ताजगी लाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ताज़ा, सादा और पौष्टिक आहार ही शरीर और मन को स्वस्थ तथा ऊर्जावान बनाता है।

### श्लोक संख्या: 17.09

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।

आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ 09 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कड़वे, खट्टे, अधिक नमकीन, बहुत गर्म, तीखे, रूखे और जलन पैदा करने वाले भोजन राजसी पुरुष को प्रिय होते हैं; और वे दुःख, शोक तथा रोगों को देने वाले हैं।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक भोजन में स्वाद और मिर्च-मसाले की अधिकता होती है। अत्यधिक खट्टा, बहुत तीखा, अत्यधिक गर्म या चटपटा खाना राजस स्वभाव वाले लोगों को पसंद आता है। लेकिन ऐसा भोजन शरीर में बीमारियाँ, पेट की जलन, अशांति और मानसिक तनाव पैदा करता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... जीभ के स्वाद के लिए अत्यधिक मिर्च-मसालेदार खाना शरीर और मन की शांति को बिगाड़ता है।

### श्लोक संख्या: 17.10

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।

उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासी, जूठा और अपवित्र है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

#### सरल व्याख्या:

तमोगुणी भोजन वह है जो अपनी ताज़गी खो चुका हो—जैसे बासी खाना, दुर्गंध आने वाला, बहुत समय का रखा हुआ, या अपवित्र तरीके से बना भोजन। ऐसा आहार करने से मनुष्य के भीतर आलस्य, सुस्ती, अज्ञान और बीमारियाँ बढ़ती हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बासी और अपवित्र भोजन करने से मन में सुस्ती और अज्ञान का अंधकार बढ़ता है।

### श्लोक संख्या: 17.11

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।

यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

फलों की इच्छा न रखने वाले पुरुषों द्वारा शास्त्र-विधि से नियत करके, 'यज्ञ करना ही कर्तव्य है' इस प्रकार मन को स्थिर करके जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण सात्त्विक यज्ञ का लक्षण बताते हैं। जब कोई कार्य या सेवा बिना किसी व्यक्तिगत लाभ, फल की आशा या स्वार्थ के की जाती है, और केवल इसलिए की जाती है क्योंकि वह एक पवित्र कर्तव्य है, तो ऐसा कार्य सात्त्विक श्रेणी में आता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... फल की इच्छा से मुक्त होकर केवल कर्तव्य मानकर किया गया कार्य ही सच्चा सात्त्विक कर्म है।

### श्लोक संख्या: 17.12

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।

इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भरतश्रेष्ठ! परंतु जो यज्ञ केवल फल पाने के उद्देश्य से अथवा केवल दिखावे (दंभ) के लिए किया जाता है, उस यज्ञ को तुम राजस समझो।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक कर्म की पहचान यह है कि उसके पीछे कोई न कोई सांसारिक स्वार्थ, मान-सम्मान पाने की इच्छा या समाज में अपनी प्रतिष्ठा का दिखावा छिपा होता है। ऐसा कार्य ऊपर से कितना भी धार्मिक लगे, उसका मूल उद्देश्य केवल अपना अहंकार तृप्त करना होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... दिखावे और सांसारिक फल की चाहत से किया गया कार्य मन को शांति देने के बजाय बंधन में डालता है।

### श्लोक संख्या: 17.13

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् |  
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते || 13 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

शास्त्र-विधि से रहित, अन्नदान से रहित, बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए गए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

तमोगुणी कर्म वह है जिसमें न तो नियमों की परवाह होती है, न दूसरों की भलाई (अन्नदान) का भाव होता है, और न ही मन में कोई सच्ची श्रद्धा या आदर होता है। ऐसा काम केवल बेमन से या अज्ञानवश किया जाता है, जिसका कोई शुभ परिणाम नहीं निकलता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धा और भावना के बिना बेमन से किया गया कार्य व्यर्थ और तामसिक होता है।

### श्लोक संख्या: 17.14

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् |  
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते || 14 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

देवताओं, ब्राह्मणों (ज्ञानीजनों), गुरुओं और विद्वानों का पूजन करना, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीर का तप कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् अब तप का भेद बताते हुए पहले 'शरीर के तप' की बात करते हैं। अपने से बड़ों और ज्ञानियों का आदर करना, शरीर की स्वच्छता रखना, आचरण में सरलता लाना, इन्द्रियों का संयम (ब्रह्मचर्य) और किसी जीव को शारीरिक कष्ट न देना ही शरीर का सच्चा तप है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आचरण की पवित्रता, संयम और श्रेष्ठ जनों का सम्मान ही शारीरिक तपस्या है।

### श्लोक संख्या: 17.15

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।

स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो वाक्य किसी को उद्वेग (कष्ट/अशांति) न देने वाला हो, सत्य हो, प्रिय हो और हितकारी हो तथा जो वेद-शास्त्रों का निरंतर अभ्यास है—वही वाणी का तप कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

वाणी के तप का अर्थ है अपनी बोलचाल पर नियंत्रण। ऐसी बात बोलना जिससे किसी का मन न दुखे, जो पूरी तरह सत्य हो, सुनने में प्रिय लगे और दूसरों के भले के लिए हो—यही वाणी का संयम है। इसके साथ ही सद्ग्रंथों का निरंतर पाठ करना वाणी की तपस्या है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य, मधुर और हितकारी वचन बोलना ही वाणी की सबसे बड़ी साधना है।

### श्लोक संख्या: 17.16

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।

भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मन की प्रसन्नता, शांत भाव, भगवच्चिंतन रूप मौन, मन का निग्रह (नियंत्रण) और भावों की भली-भांति पवित्रता—यह मन का तप कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

'मन का तप' अंतःकरण की साधना है। मन को हमेशा शांत और प्रसन्न रखना, व्यर्थ के विचारों से दूर रहकर शांत (मौन) रहना, मन की चंचलता को रोकना और अपनी भावनाओं को पूरी तरह शुद्ध रखना ही मानसिक तपस्या है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... विचारों की शुद्धता और मन की आंतरिक प्रसन्नता ही वास्तविक मानसिक तप है।

### श्लोक संख्या: 17.17

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः |

अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते || 17 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

फल की इच्छा न रखने वाले, परम योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से तपे हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के (शरीर, वाणी और मन के) तप को सात्त्विक कहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य शरीर, वाणी और मन के इन तीनों तपों को पूरी श्रद्धा से करता है, और बदले में किसी सांसारिक सुख या फल की इच्छा नहीं रखता, तो उसकी वह तपस्या सात्त्विक कहलाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम भाव और गहरी श्रद्धा से किया गया अनुशासन ही आत्मा को शुद्ध करता है।

### श्लोक संख्या: 17.18

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् |

क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् || 18 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो तप केवल सत्कार, मान और पूजा-प्रतिष्ठा पाने के लिए अथवा पाखंड (दिखावे) से किया जाता है, वह अनिश्चित और क्षणिक फल देने वाला तप यहाँ 'राजस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

यदि कोई व्यक्ति संयम या नियम केवल इसलिए अपनाता है ताकि लोग उसकी प्रशंसा करें, उसे बड़ा साधु या महात्मा समझें और उसकी पूजा करें, तो ऐसा तप राजसिक है। इसका फल बहुत छोटा, अस्थायी और नश्वर होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... वाह-वाही पाने के लिए किया गया संयम या तपस्या टिकाऊ नहीं होती और न ही उससे आत्म-शांति मिलती है।

### श्लोक संख्या: 17.19

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः |  
परस्योत्सादनाय वा तत्तामसमुदाहृतम् || 19 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से, अपने-आप को पीड़ा देकर या दूसरों का अनिष्ट (विनाश) करने के उद्देश्य से किया जाता है, वह तप 'तामस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

अज्ञान और हठ के कारण शरीर को जबरदस्ती कष्ट देना या किसी दूसरे व्यक्ति को नुकसान पहुँचाने के लिए कोई तंत्र-मंत्र या कठोर नियम अपनाना तामसिक तप है। ऐसा काम धर्म नहीं बल्कि विनाश का कारण बनता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने या दूसरों के अहित के लिए की गई कोई भी कठोर साधना अज्ञान और अधर्म की श्रेणी में आती है।

### श्लोक संख्या: 17.20

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे |  
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् || 20 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

'दान देना कर्तव्य है' ऐसे भाव से जो दान बिना किसी उपकार की आशा के, सही देश (स्थान), सही काल (समय) और योग्य पात्र (सत्पुरुष) को दिया जाता है, वह दान सात्त्विक माना गया है।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक दान की तीन शर्तें हैं: बदले में किसी उपकार या लाभ की इच्छा न हो। दान सही स्थान और सही समय पर दिया जाए। दान किसी ऐसे योग्य व्यक्ति या स्थान पर दिया जाए जहाँ उसका सही उपयोग हो। केवल कर्तव्य की भावना से दिया गया ऐसा दान ही सात्त्विक होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सही समय पर, सही व्यक्ति को और निष्काम भाव से दी गई सहायता ही सच्चा सात्त्विक दान है।



### श्लोक संख्या: 17.21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः |  
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् || 21 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु जो दान क्लेशपूर्वक (दुःखी या संकोच के मन से) अथवा प्रत्युपकार के उद्देश्य से (बदले में कुछ पाने की आशा से) या फल को ध्यान में रखकर दिया जाता है, वह दान 'राजस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

यदि कोई व्यक्ति दान देते समय मन में यह सोचता है कि 'इसके बदले मुझे भी कुछ मिलेगा' या केवल समाज में यश पाने के लिए दान देता है, अथवा देते समय उसका मन दुःखी होता है, तो ऐसा दान राजसिक माना जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भारी मन से या बदले में स्वार्थ रखकर दी गई मदद सात्त्विक नहीं होती।

### श्लोक संख्या: 17.22

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते |  
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् || 22 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो दान बिना सत्कार के, तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य स्थान और कुसमय में तथा अपात्रों (अयोग्य व्यक्तियों) को दिया जाता है, वह दान 'तामस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

तमोगुणी दान वह है जो गलत जगह या गलत समय पर दिया जाए, जैसे किसी कुकर्मी को जिससे वह समाज का अहित करे। साथ ही, यदि दान लेने वाले का अनादर या अपमान करके कुछ दिया जाए, तो ऐसा दान दान देने वाले के पतन का कारण बनता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सहायता हमेशा योग्य व्यक्ति को और आदर भाव के साथ ही दी जानी चाहिए।

### श्लोक संख्या: 17.23

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।  
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

'ॐ', 'तत्', 'सत्'—यह तीन प्रकार का नाम परमात्मा का निर्देश (संकेत) कहा गया है; उसी से सृष्टि के प्रारंभ में ब्राह्मण, वेद और यज्ञों की रचना हुई।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि परमात्मा को याद करने के लिए ये तीन परम पवित्र शब्द हैं—'ॐ', 'तत्' और 'सत्'। किसी भी धार्मिक कर्म, यज्ञ या दान की शुरुआत में ईश्वर के इन नामों का स्मरण करने से उस कर्म की सभी कमियाँ और त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा के स्मरण से ही हमारे सभी कर्म पवित्र और पूर्ण होते हैं।

### श्लोक संख्या: 17.24

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।  
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततम्ब्रह्मवादिनाम् ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवादः

इसलिए वेद-मंत्रों का उच्चारण करने वाले पुरुषों की शास्त्र-विधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस नाम का उच्चारण करके ही प्रारंभ होती हैं।

#### सरल व्याख्या:

'ॐ' परमेश्वर की उपस्थिति और पवित्रता का सूचक है। इसलिए जब भी कोई श्रेष्ठ कार्य, पूजा या साधना शुरू की जाती है, तो सबसे पहले 'ॐ' का उच्चारण किया जाता है ताकि मन और वातावरण दोनों शुद्ध हो जाएँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हर शुभ और पवित्र कार्य का आरंभ ईश्वर के परम नाम 'ॐ' के साथ होना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 17.25

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः |

दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः || 25 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

फलों की इच्छा न रखकर 'तत्' (सब कुछ परमात्मा का है) ऐसा मानकर, मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों द्वारा विविध प्रकार की यज्ञ, तप और दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

#### सरल व्याख्या:

'तत्' का अर्थ है 'वह' यानी परमात्मा। मोक्ष चाहने वाले साधक यह मानकर कर्म करते हैं कि यह सब कुछ ईश्वर का ही है, मेरा कुछ नहीं। इसलिए वे अपने कर्मफलों की इच्छा का त्याग करके निष्काम भाव से कर्म करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों को ईश्वर का मानकर करना ही हमें आसक्ति और बंधनों से मुक्त करता है।

### श्लोक संख्या: 17.26

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते |

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते || 26 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! 'सत्' यह नाम सत्य भाव में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है; तथा श्रेष्ठ कर्म के अर्थ में भी 'सत्' शब्द का प्रयोग किया जाता है।

#### सरल व्याख्या:

'सत्' का अर्थ है जो सत्य है, श्रेष्ठ है और कल्याणकारी है। जब भी हम कोई अच्छा आचरण, सच्चाई का मार्ग या समाज कल्याण का कार्य करते हैं, तो उस कर्म को 'सत्कर्म' कहा जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य और भलाई के मार्ग पर किया गया हर कार्य परमात्मा से जुड़ा होता है।

### श्लोक संख्या: 17.27

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते |  
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते || 27 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ, तप और दान में जो अचल स्थिति है, वह भी 'सत्' कही जाती है; और उस परमात्मा के अर्थ (प्राप्ति) के लिए किया गया कर्म ही वास्तव में 'सत्' कहलाता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि जब मनुष्य यज्ञ, अनुशासन और दान के कार्यों में निष्ठापूर्वक टिका रहता है, तो उसकी वह स्थिति 'सत्' है। ईश्वर की प्रसन्नता के लिए किया गया कोई भी छोटा या बड़ा काम 'सत्' यानी परम सत्य का ही रूप बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर को समर्पित होकर किया गया हर कर्तव्य कर्म परम पवित्र हो जाता है।

### श्लोक संख्या: 17.28

अश्रद्धया हुतं दत्तन्तप्तन्तप्तञ्च यत्कृतम् |  
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह || 28 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान, तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है—वह सब 'असत्' कहा जाता है; वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

#### सरल व्याख्या:

यह इस अध्याय का अंतिम और सार रूप श्लोक है। भगवान स्पष्ट घोषणा करते हैं कि यदि मन में सच्ची श्रद्धा नहीं है, तो चाहे कितना भी बड़ा यज्ञ, दान या तप क्यों न कर लिया जाए, वह सब व्यर्थ (असत्) हो जाता है। उसका न तो इस जीवन में कोई शांति का फल मिलता है और न ही परलोक में।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी श्रद्धा ही हमारे कर्मों की आत्मा है; बिना श्रद्धा के किए गए सारे साधन निष्प्राण होते हैं।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे  
श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ 17 ॥



## अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

Satyaanubhuti Ashram

## श्लोक संख्या: 18.01

अर्जुन उवाच ।

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।

त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ 01 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन! मैं 'संन्यास' और 'त्याग' के तत्त्व को अलग-अलग समझना चाहता हूँ।

### सरल व्याख्या:

गीता के अंतिम अध्याय के आरंभ में अर्जुन श्रीकृष्ण से एक अत्यंत व्यावहारिक प्रश्न पूछते हैं। वे जानना चाहते हैं कि संन्यास (कर्मों को छोड़ देना) और त्याग (कर्मफल की आसक्ति को छोड़ना) में क्या सूक्ष्म अंतर है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अध्यात्म के मार्ग पर कर्म छोड़ने और कर्मफल त्यागने के अंतर को गहराई से समझना आवश्यक है।

## श्लोक संख्या: 18.02

श्रीभगवानुवाच ।

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।

सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ 02 ॥

### हिन्दी अनुवाद:

श्रीभगवान् बोले—विद्वान् पुरुष काम्य कर्मों (सकाम कर्मों) के त्याग को 'संन्यास' समझते हैं और विचारशील पुरुष सब कर्मों के फलों के त्याग को 'त्याग' कहते हैं।

### सरल व्याख्या:

भगवान् स्पष्ट करते हैं कि व्यक्तिगत मनोकामनाओं या स्वार्थ पूर्ति के लिए किए जाने वाले कर्मों को पूरी तरह बंद कर देना 'संन्यास' है। दूसरी ओर, अपने सभी कर्तव्यों को करते हुए उनके परिणाम या फल की इच्छा को छोड़ देना 'त्याग' कहलाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कामनाओं का त्याग संन्यास है और कर्मों के फल की आसक्ति छोड़ देना सच्चा त्याग है।

### श्लोक संख्या: 18.03

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः |

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे || 03 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

कई विद्वान यह कहते हैं कि कर्म मात्र दोषयुक्त हैं, इसलिए उन्हें त्याग देना चाहिए; जबकि दूसरे विद्वान यह कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ उस समय प्रचलित दो भिन्न विचारों का उल्लेख करते हैं। कुछ ज्ञानी मानते थे कि हर कर्म में कोई न कोई दोष होता है, इसलिए कर्म ही छोड़ देने चाहिए। परंतु अन्य विचारकों का मानना था कि यज्ञ, दान और तप जैसे शुभ कर्म कभी नहीं छोड़े जाने चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों को छोड़ने के विषय में विद्वानों के अलग-अलग दृष्टिकोण रहे हैं, जिनका समाधान आगे श्रीकृष्ण करते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.04

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम |

त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः || 04 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन! उस त्याग के विषय में तुम मेरा निश्चय सुनो; क्योंकि त्याग सात्त्विक, राजस और तामस—भेद से तीन प्रकार का कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान अब इस विषय पर अपना अंतिम और प्रामाणिक निर्णय देते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं कि त्याग का अर्थ केवल सब कुछ छोड़ देना नहीं है, बल्कि मनुष्य की मनोवृत्ति के आधार पर त्याग भी तीन प्रकार का होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... त्याग केवल बाह्य क्रिया नहीं, बल्कि मन की भावना और गुणों से निर्धारित होता है।



### श्लोक संख्या: 18.05

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ 05 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्याग करने योग्य नहीं हैं, बल्कि वे तो अवश्य करने चाहिए; क्योंकि यज्ञ, दान और तप—ये तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अपना स्पष्ट निर्णय देते हैं कि समाज कल्याण (यज्ञ), निस्वार्थ सेवा (दान) और आत्म-अनुशासन (तप) कभी बंद नहीं करने चाहिए। ये कर्म मनुष्य के मन और आत्मा को शुद्ध करने वाले साधन हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य, सेवा और अनुशासन ऐसे कार्य हैं जो मनुष्य के मन को हमेशा निर्मल बनाते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.06

एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।

कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ॥ 06 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इसलिए हे पार्थ! इन कर्मों को तथा अन्य सभी श्रेष्ठ कर्मों को आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके ही करना चाहिए—यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

#### सरल व्याख्या:

यह कर्मयोग का परम सूत्र है। भगवान कहते हैं कि व्यक्ति को अपने सभी आवश्यक और शुभ कर्म करते रहना चाहिए, लेकिन उन्हें करते समय दो बातें छोड़नी होंगी—पहली, यह अहंकार कि 'मैं कर्ता हूँ' और दूसरी, उसके बदले फल पाने की लालसा।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना आसक्ति और बिना फल की चाहत के कर्म करना ही जीवन की सबसे श्रेष्ठ कला है।

### श्लोक संख्या: 18.07

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते |

मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः || 07 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु नियत (कर्तव्य) कर्म का स्वरूप से त्याग उचित नहीं है। मोह के कारण उसका त्याग कर देना 'तामस त्याग' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

अपने अनिवार्य कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से भाग जाना या अज्ञान और आलस्य के कारण काम छोड़ देना सच्चा त्याग नहीं है। ऐसा त्याग तमोगुणी होता है और मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आलस्य या अज्ञानवश अपने कर्तव्यों से पीछे हटना तामसिक व्यवहार है।

### श्लोक संख्या: 18.08

दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् |

स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् || 08 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो कुछ कर्म है वह सब दुःख रूप ही है—ऐसा समझकर यदि कोई शारीरिक कष्ट के भय से कर्मों का त्याग कर देता है, तो वह ऐसा राजस त्याग करके त्याग के फल को नहीं पाता।

#### सरल व्याख्या:

यदि कोई व्यक्ति केवल इसलिए अपने कर्तव्यों को छोड़ देता है क्योंकि उनमें मेहनत लगती है या शरीर को कष्ट होता है, तो वह राजसिक त्याग है। ऐसे त्याग से न तो आत्म-शांति मिलती है और न ही त्याग का वास्तविक आध्यात्मिक लाभ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कठिनाई या शारीरिक कष्ट से डरकर काम छोड़ना सच्चा त्याग नहीं है।

### श्लोक संख्या: 18.09

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।

संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ॥ 09 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! 'शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म करना ही योग्य है'—ऐसे भाव से जो नियत कर्म आसक्ति और फल का त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

#### सरल व्याख्या:

सच्चा और सात्त्विक त्याग कर्मों को छोड़ना नहीं है, बल्कि यह मानकर कर्म करना है कि यह मेरा पवित्र कर्तव्य है। जब मनुष्य बिना किसी स्वार्थ और बिना किसी फल की कामना के काम करता है, तब वह सात्त्विक त्यागी बनता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्तव्य भाव से निष्काम होकर कर्म में लगे रहना ही सात्त्विक त्याग है।

### श्लोक संख्या: 18.10

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।

त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ 10 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो न तो अप्रिय कर्म से द्वेष करता है और न प्रिय कर्म में आसक्त होता है—वह सत्त्वगुण से युक्त, बुद्धिमान और संशय-रहित पुरुष ही सच्चा त्यागी है।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक त्यागी की पहचान यह है कि वह अप्रिय या कठिन काम सामने आने पर उससे नफरत नहीं करता, और मनपसंद काम मिलने पर उसमें खो नहीं जाता। वह हर परिस्थिति में समभाव रखता है और उसकी बुद्धि पूरी तरह स्पष्ट तथा संशय-रहित होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अनुकूल और प्रतिकूल दोनों परिस्थितियों में समान भाव रखना ही ज्ञानी और सच्चे त्यागी का लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 18.11

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।  
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ 11 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

क्योंकि शरीरधारी किसी भी मनुष्य द्वारा संपूर्णता से सब कर्मों का त्याग किया जाना संभव नहीं है; इसलिए जो कर्मफल का त्यागी है, वही वास्तव में 'त्यागी' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण एक व्यावहारिक सत्य सामने रखते हैं। जब तक मनुष्य का शरीर है, तब तक सांस लेना, खाना, पीना और शरीर का संचालन जैसे कर्म अनिवार्य हैं। इसलिए शारीरिक रूप से कर्मों को पूरी तरह छोड़ देना असंभव है। वास्तविक त्याग कर्मों को बंद करना नहीं, बल्कि उन कर्मों से मिलने वाले फलों और इच्छाओं का त्याग करना है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कर्मों को छोड़ना नहीं, बल्कि कर्मफलों की आसक्ति छोड़ना ही व्यावहारिक और सच्चा त्याग है।

### श्लोक संख्या: 18.12

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।  
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ 12 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

कर्मफल का त्याग न करने वाले मनुष्यों के कर्मों का तीन प्रकार का फल—अनिष्ट (बुरा), इष्ट (अच्छा) और मिश्र (मिला-जुला)—मरने के बाद भी होता है; परंतु त्यागी मनुष्यों के कर्मों का फल कहीं भी और कभी भी नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

जो लोग फल की कामना रखकर काम करते हैं, उन्हें अपने कर्मों के अनुसार अच्छा, बुरा या मिला-जुला फल भोगना ही पड़ता है। लेकिन जो निष्काम भाव से केवल कर्तव्य समझकर कर्म करते हैं, वे कर्मबंधनों से मुक्त रहते हैं और उनका कोई सांसारिक कर्मफल शेष नहीं बचता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम भाव से किए गए कर्म मनुष्य को कर्मबंधन और जन्म-मरण के चक्र से मुक्त कर देते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.13

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।

साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ 13 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे महाबाहो! संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए सांख्य सिद्धांत (ज्ञानयोग) में कहे गए इन पाँच कारणों को तुम मेरे से भली-भांति जानो।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि दुनिया का कोई भी काम केवल एक व्यक्ति के चाहने से पूरा नहीं होता। हर कार्य को संपन्न करने के पीछे पाँच मुख्य घटक या कारण होते हैं। ज्ञानी मनुष्य इन पाँचों कारणों को समझकर स्वयं को कर्ता मानने के अहंकार से बच जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... किसी भी कार्य की सफलता के पीछे कई कारक होते हैं, केवल हमारा अहंकार नहीं।

### श्लोक संख्या: 18.14

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।

विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥ 14 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

(कर्मों के पाँच कारण ये हैं—) अधिष्ठान (शरीर), कर्ता (अहंकारयुक्त जीव), तरह-तरह के साधन (इन्द्रियाँ), अनेक प्रकार की चेष्टाएँ (प्रयत्न) और पाँचवाँ कारण दैव (प्रारब्ध/ईश्वरीय विधान) है।

#### सरल व्याख्या:

भगवान किसी भी कर्म को पूरा करने वाले पाँचों घटकों को विस्तार से गिनाते हैं: अधिष्ठान: वह स्थान या शरीर जहाँ कर्म होता है। कर्ता: काम करने वाला जीव। करण: कर्म करने के साधन या इन्द्रियाँ। चेष्टा: शारीरिक और मानसिक प्रयास। दैव: अदृश्य शक्ति, प्रारब्ध या ईश्वर का विधान।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कार्य की सिद्धि में हमारे प्रयास के साथ-साथ प्रकृति और ईश्वर का विधान भी समान रूप से भागीदार होता है।

### श्लोक संख्या: 18.15

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।

न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः ॥ 15 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

मनुष्य शरीर, वाणी और मन से जो भी धर्मानुकूल (सही) या विपरीत (गलत) कर्म का प्रारंभ करता है, उसके यही पाँचों कारण होते हैं।

#### सरल व्याख्या:

चाहे कोई काम अच्छा हो या बुरा, और उसे शरीर से किया जाए, बोलकर किया जाए या केवल मन में सोचा जाए—हर प्रकार की क्रिया इन्हीं पाँचों कारणों के सहयोग से पूरी होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे विचार, वाणी और शारीरिक क्रियाएं सभी इन्हीं पाँच तत्वों से संचालित होते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.16

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ।

पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ 16 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

ऐसा होने पर भी जो अज्ञानी बुद्धि वाला मनुष्य केवल अपने-आप (आत्मा) को ही कर्ता मानता है, वह मंदबुद्धि सही नहीं देखता।

#### सरल व्याख्या:

जब किसी भी कार्य को पूरा करने में पाँच कारण मिलकर काम कर रहे हैं, फिर भी जो व्यक्ति अहंकारवश यह सोचता है कि 'यह सब केवल मैंने ही किया है', वह अज्ञानी है। वह सत्य को देखने में असमर्थ रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वयं को हर काम का एकमात्र कर्ता समझना अज्ञान और अहंकार का प्रतीक है।

### श्लोक संख्या: 18.17

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते |  
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते || 17 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस मनुष्य के अंतःकरण में 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा अहंकार भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि (फलों और कर्मों में) लिप्त नहीं होती, वह इन सब लोकों को मारकर भी न तो मारता है और न ही पाप से बँधता है।

#### सरल व्याख्या:

यह अर्जुन के युद्ध सम्बंधी संशय का अंतिम समाधान है। जब व्यक्ति अहंकार से मुक्त होकर और केवल धर्म तथा अपने अनिवार्य कर्तव्य का पालन करने के लिए कर्म करता है, तो उसके कर्मों का कोई व्यक्तिगत दोष या पाप उसे नहीं लगता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और व्यक्तिगत स्वार्थ से रहित होकर किया गया कर्तव्य कर्म पाप-पुण्य के बंधनों से परे होता है।

### श्लोक संख्या: 18.18

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना |  
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः || 18 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

ज्ञान (जानने की क्रिया), ज्ञेय (जानने योग्य विषय) और परिज्ञाता (जानने वाला)—ये तीनों कर्म की प्रेरणा (प्रेरणा देने वाले) हैं; तथा करण (साधन), कर्म (क्रिया) और कर्ता—ये तीनों कर्म के संग्रह (आधार) हैं।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ कर्म के मनोविज्ञान को समझाया गया है। कोई भी काम शुरू होने से पहले मन में तीन बातें होती हैं—जानने वाला, जानकारी और जिसे जाना जाए। और जब वह काम धरातल पर होता है, तो साधन, क्रिया और करने वाला—इन तीनों की आवश्यकता होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी समझ और ज्ञान ही हमारे कर्मों को दिशा और प्रेरणा देते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.19

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।  
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ 19 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

गुणों की संख्या करने वाले शास्त्र (सांख्य दर्शन) में ज्ञान, कर्म और कर्ता—गुणों के भेद से तीन-तीन प्रकार के ही कहे गए हैं; उनको भी तुम मुझसे भली-भांति सुनो।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्रकृति के तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) के अनुसार ज्ञान, कर्म और काम करने वाले व्यक्ति (कर्ता) की सोच भी तीन-तीन श्रेणियों में बँट जाती है। अब आगे वे इन्हीं का विस्तार से वर्णन करते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारे गुणों का प्रभाव हमारे ज्ञान, कर्म और काम करने की शैली पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।

### श्लोक संख्या: 18.20

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।  
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ 20 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक्-पृथक् विभक्त (अलग-अलग दिखने वाले) सब प्राणियों में एक अविनाशी और अखंड परमेश्वर भाव को देखता है, उस ज्ञान को तुम 'सात्त्विक ज्ञान' जानो।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक ज्ञान की पहचान यह है कि वह मनुष्य को एकता का दर्शन कराता है। भले ही बाहर से सब जीव, जाति और रूप अलग-अलग दिखाई दें, लेकिन जो व्यक्ति सभी के भीतर एक ही अविनाशी परमात्मा की चेतना को देखता है, वही सच्चा सात्त्विक ज्ञानी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... विविधता में छिपी हुई एक अखंड चेतना को देखना ही ज्ञान का उच्चतम सात्त्विक रूप है।



### श्लोक संख्या: 18.21

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।  
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ 21 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु जो ज्ञान सब प्राणियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नाना भावों को अलग-अलग करके देखता है, उस ज्ञान को तुम 'राजस ज्ञान' जानो।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक ज्ञान मनुष्य को भेदभाव की दृष्टि देता है। ऐसा ज्ञान हर प्राणी, व्यक्ति या वस्तु को एक-दूसरे से पूरी तरह अलग और भिन्न मानता है। इसमें एकता या परमात्मा का दर्शन नहीं होता, बल्कि भेद और विषमता की भावना बनी रहती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भेद-भाव और विषमता को बढ़ावा देने वाली समझ राजसिक श्रेणी में आती है।

### श्लोक संख्या: 18.22

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।  
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 22 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

तथा जो ज्ञान किसी एक कार्य (शरीर या मूर्ति आदि) में ही संपूर्ण के समान आसक्त है, जो बिना किसी कारण के (विवेकहीन) है, वास्तविक अर्थ से रहित और तुच्छ है, वह 'तामस ज्ञान' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

तामसिक ज्ञान संकीर्ण और विवेकहीन होता है। ऐसा व्यक्ति किसी एक छोटी सी चीज़, विचार या मूर्ति में इतना उलझ जाता है कि उसे ही सब कुछ मान लेता है। उसमें न कोई तर्क होता है और न ही व्यापक सत्य की समझ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संकीर्णता और अंधविश्वास ही तामसिक दृष्टिकोण का मुख्य लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 18.23

नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।

अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ 23 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो कर्म शास्त्र-विधि से नियत किया गया हो, आसक्ति से रहित हो, बिना राग-द्वेष के किया गया हो और फल की इच्छा न रखने वाले पुरुष द्वारा किया गया हो—वह कर्म 'सात्त्विक' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक कर्म की चार पहचान हैं—वह शास्त्र और विवेक के अनुकूल हो, उसमें कर्ता का कोई घमंड न हो, वह किसी से नफरत या पक्षपात के बिना किया गया हो, और उसके पीछे किसी व्यक्तिगत फल की लालसा न हो।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम, समभाव और कर्तव्य बुद्धि से किया गया कार्य ही सच्चा सात्त्विक कर्म है।

### श्लोक संख्या: 18.24

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः ।

क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ 24 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु जो कर्म बहुत से परिश्रम से युक्त होता है तथा भोगों को चाहने वाले पुरुष द्वारा अथवा अहंकारपूर्वक किया जाता है, वह कर्म 'राजस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक कर्म वह है जिसके पीछे सांसारिक सुख-सुविधाओं की इच्छा होती है। ऐसे काम में 'मैं कर रहा हूँ' का भारी घमंड होता है और उसे पूरा करने में अत्यधिक मानसिक तथा शारीरिक तनाव या परिश्रम उठाना पड़ता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और अत्यधिक तृष्णा से किए गए कार्य मन को थकाते और अशांत करते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.25

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् |

मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुदाहृतम् || 25 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और अपनी सामर्थ्य का विचार किए बिना केवल अज्ञानवश (मोह से) आरंभ किया जाता है, वह कर्म 'तामस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

तामसिक कर्म बिना सोचे-समझे शुरू किया जाता है। इसमें व्यक्ति यह नहीं सोचता कि आगे चलकर इसका क्या बुरा नतीजा (परिणाम) होगा, कितना नुकसान (क्षय) होगा, दूसरों को कितनी तकलीफ (हिंसा) पहुँचेगी या उसकी अपनी क्षमता (पौरुष) है भी या नहीं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... बिना दूरदर्शिता और बिना अपनी क्षमता का विचार किए किया गया काम विनाशकारी होता है।

### श्लोक संख्या: 18.26

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः |

सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते || 26 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

जो आसक्ति से रहित है, अहंकार के वचन न बोलने वाला है, धैर्य और उत्साह से युक्त है तथा कार्य के सिद्ध होने और न होने (सफलता-विफलता) में विकार-रहित (समान) रहता है—वह कर्ता 'सात्त्विक' कहा जाता है।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक काम करने वाले व्यक्ति के लक्षण ये हैं कि वह घमंड नहीं करता, कठिन से कठिन परिस्थिति में भी धैर्य और आंतरिक उत्साह बनाए रखता है, और सफलता मिले या असफलता—दोनों में शांत रहता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सफलता और विफलता में समान रहते हुए उत्साह से कर्तव्य पथ पर टिके रहना ही सात्त्विक कर्ता की पहचान है।

### श्लोक संख्या: 18.27

रागी कर्मफलप्रेप्सुलुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।  
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ 27 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो अनुरागी (आसक्त), कर्मों के फल की इच्छा रखने वाला, लोभी, दूसरों को कष्ट देने वाले स्वभाव वाला, अपवित्र और हर्ष-शोक से युक्त है—वह कर्ता 'राजस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक कर्ता वह है जो काम के नतीजे से बुरी तरह चिपक जाता है। वह लालची होता है, काम बनने पर बहुत ज्यादा खुश और बिगड़ने पर गहरे शोक या उदासी में डूब जाता है। उसमें दूसरों के प्रति दया भाव नहीं होता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अत्यधिक लालच और परिणामों से होने वाला मानसिक उतार-चढ़ाव मनुष्य को राजसिक बना देता है।

### श्लोक संख्या: 18.28

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।  
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ 28 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो अयोग्य (असंयत), अशिष्ट (गंभीरताहीन), घमंडी, धूर्त, दूसरों की जीविका नष्ट करने वाला, आलसी, सदा उदास रहने वाला और काम को टालने वाला (दीर्घसूत्री) है—वह कर्ता 'तामस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

तामसिक कर्ता की पहचान यह है कि वह बहुत आलसी होता है, हर काम को आगे के लिए टालता रहता है (दीर्घसूत्री), छल-कपट करता है, हमेशा निराश या दुःखी रहता है और कोई भी काम जिम्मेदारी से नहीं करता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... काम टालने की आदत, आलस्य और निराशावादी सोच तामसिक जीवन शैली का लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 18.29

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।

प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ 29 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे धनञ्जय! अब तुम बुद्धि का और धृति (धैर्य/धारणा शक्ति) का भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार का भेद मेरे द्वारा संपूर्णता से और अलग-अलग कहा जाने वाला सुनो।

#### सरल व्याख्या:

भगवान् श्रीकृष्ण अब अर्जुन को समझाते हैं कि जिस प्रकार ज्ञान, कर्म और कर्ता के तीन-तीन प्रकार होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य की निर्णय लेने की क्षमता (बुद्धि) और उसके धैर्य रखने की शक्ति (धृति) भी तीन गुणों के प्रभाव से तीन प्रकार की होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... हमारी निर्णय क्षमता और धैर्य का स्तर हमारे आंतरिक गुणों पर निर्भर करता है।

### श्लोक संख्या: 18.30

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।

बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ॥ 30 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग को, कर्तव्य और अकर्तव्य को, भय और अभय को तथा बंधन और मोक्ष को तत्त्व से जानती है, वह बुद्धि 'सात्त्विकी' है।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक बुद्धि वह स्पष्ट विवेक है जो यह सही-सही समझता है कि किस काम में लगना चाहिए और किस काम से हटना चाहिए, क्या सही (कर्तव्य) है और क्या गलत (अकर्तव्य), किससे डरना चाहिए और किससे नहीं, तथा क्या चीज़ मनुष्य को बाँधती है और क्या मुक्त करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सही और गलत का स्पष्ट विवेक होना ही सात्त्विक बुद्धि की पहचान है।

### श्लोक संख्या: 18.31

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।

अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ 31 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को यथार्थ रूप से (सही-सही) नहीं जानता, वह बुद्धि 'राजसी' है।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक बुद्धि में अस्पष्टता और भ्रम होता है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति सही और गलत, या धर्म और अधर्म का निर्णय अपने व्यक्तिगत स्वार्थ, राग या द्वेष के आधार पर करता है, जिससे वह अक्सर गलत फैसले ले बैठता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... स्वार्थ और भ्रम के कारण सही-गलत का स्पष्ट निर्णय न ले पाना राजसिक बुद्धि का लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 18.32

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता ।

सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ 32 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जो तमोगुण से ढकी हुई बुद्धि अधर्म को ही 'धर्म' मान लेती है और सब बातों को उल्टी (विपरीत) ही मानती है, वह बुद्धि 'तामसी' है।

#### सरल व्याख्या:

तामसिक बुद्धि पूरी तरह अज्ञान के अंधकार में डूबी होती है। यह बुद्धि गलत को सही और सही को गलत मानती है। ऐसा व्यक्ति अधर्म, हिंसा या कुमार्ग को ही अपना धर्म मानकर उस पर अड़ा रहता है और हर बात का उल्टा अर्थ निकालता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कुमार्ग को धर्म मान लेना और विपरीत विचार रखना तामसिक बुद्धि की पराकाष्ठा है।

### श्लोक संख्या: 18.33

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः |  
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी || 33 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! जिस अव्यभिचारिणी (अचल) धारण शक्ति द्वारा मनुष्य योग-साधना से मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण (नियंत्रित) करता है, वह धृति (धैर्य) 'सात्त्विकी' है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ 'सात्त्विक धैर्य' की व्याख्या करते हैं। जब मनुष्य का संकल्प और मन की शक्ति इतनी दृढ़ हो जाए कि वह योग और ध्यान के माध्यम से अपने मन, श्वास (प्राण) और इन्द्रियों को भटकने न दे, तो उसे सात्त्विक धैर्य कहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आत्म-नियंत्रण और साधना के मार्ग पर अडिग रहने वाला धैर्य ही सात्त्विक धैर्य है।

### श्लोक संख्या: 18.34

यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन |  
प्रसंगेन फलाकाङ्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी || 34 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

परंतु हे पृथानंदन अर्जुन! फल की इच्छा रखने वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति द्वारा अत्यंत आसक्ति से धर्म, अर्थ और काम को धारण करता है, वह धृति 'राजसी' है।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक धैर्य वह शक्ति है जिसका उपयोग व्यक्ति केवल सांसारिक लाभ के लिए करता है। वह धर्म, धन (अर्थ) और सुख-सुविधा (काम) को पाने के लिए बहुत धैर्य और मेहनत दिखाता है, लेकिन उसका मूल उद्देश्य केवल सांसारिक फल की प्राप्ति होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल सांसारिक लाभ और सुख पाने के लिए दिखाया गया धैर्य राजसिक होता है।

**श्लोक संख्या: 18.35**

यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च |  
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी || 35 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे पार्थ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारण शक्ति के द्वारा निद्रा, भय, चिंता, दुःख और घमंड को भी नहीं छोड़ता (अर्थात उन्हीं में पड़ा रहता है), वह धृति 'तामसी' है।

**सरल व्याख्या:**

तामसिक धैर्य वह नकारात्मक जिद या अड़ियलपन है जिसमें व्यक्ति अपनी बुरी आदतों—जैसे अत्यधिक सोना, व्यर्थ का डर, चिंता, निराशा और घमंड को पकड़े रहता है और उन्हें सुधारने का कोई प्रयास नहीं करता।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निराशा, आलस्य और नकारात्मक विचारों को पकड़े रखने की जिद्दी प्रवृत्ति तामसिक धैर्य है।

**श्लोक संख्या: 18.36**

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ |  
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति || 36 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

हे भरतश्रेष्ठ! अब तीन प्रकार के सुख को भी तुम मेरे से सुनो। जिस सुख में साधक अभ्यास के द्वारा रमण करता है और जिससे दुःखों के अंत को प्राप्त हो जाता है।

**सरल व्याख्या:**

भगवान अब सुख के वर्गीकरण की शुरुआत करते हैं। वे कहते हैं कि सच्चा सुख वह है जो निरंतर अभ्यास से प्राप्त होता है और जो मनुष्य के जीवन के समस्त दुःखों और कष्टों को हमेशा के लिए समाप्त कर देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा सुख तुरंत मिलने वाला चमत्कार नहीं, बल्कि निरंतर साधना और अभ्यास का परिणाम है।



### श्लोक संख्या: 18.37

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।  
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ 37 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो सुख आरंभ काल में विष के समान कठिन लगता है, परंतु परिणाम (अंत) में अमृत के समान आनंद देने वाला होता है; वह आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होने वाला सुख 'सात्त्विक' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

सात्त्विक सुख की पहचान यह है कि शुरुआत में नियम, अनुशासन, पढ़ाई या साधना करते समय यह कड़वी दवा या विष की तरह कठिन लगता है। लेकिन जब इसका परिणाम आता है, तो वह असीम शांति और आनंद (अमृत) देता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... शुरुआत की कठिनाइयों को सहकर अंत में मिलने वाली आत्म-शांति ही सच्चा सात्त्विक सुख है।

### श्लोक संख्या: 18.38

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।  
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ 38 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो सुख इन्द्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होता है, वह आरंभ काल में भोगते समय तो अमृत के समान प्रिय लगता है, परंतु परिणाम में विष के समान कष्टदायी होता है; वह सुख 'राजस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

राजसिक सुख क्षणिक शारीरिक भोगों से मिलता है। शुरुआत में यह बहुत मीठा और आनंददायक (अमृत जैसा) लगता है, लेकिन बाद में इसके कारण शारीरिक रोग, मानसिक अशांति, पश्चाताप और दुःख (विष जैसा) भुगतना पड़ता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... केवल इन्द्रिय-सुख के पीछे भागना अंततः दुःखों और बीमारियों को न्योता देना है।

### श्लोक संख्या: 18.39

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ 39 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो सुख भोगते समय भी और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला (भ्रम में डालने वाला) है, तथा जो निद्रा, आलस्य और व्यर्थ के समय गँवाने (प्रमाद) से उत्पन्न होता है, वह सुख 'तामस' कहा गया है।

#### सरल व्याख्या:

तामसिक सुख अज्ञानता की उपज है। यह सुख ज्यादा सोने, काम से बचने के लिए आलस्य करने और व्यर्थ के कामों में समय गँवाने से मिलता है। यह न तो शुरुआत में सही होता है और न ही बाद में; यह केवल मनुष्य की चेतना को सुलाए रखता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... आलस्य और काम टालने में मिलने वाला छलावा सुख मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है।

### श्लोक संख्या: 18.40

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।

सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ 40 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

पृथ्वी पर या आकाश में अथवा देवताओं में भी ऐसा कोई प्राणी या पदार्थ नहीं है, जो प्रकृति से उत्पन्न इन तीनों गुणों (सत्त्व, रज और तम) से मुक्त हो।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण इस पूरे भौतिक ब्रह्मांड की संरचना का नियम बताते हैं। इस दृश्य जगत में चाहे मनुष्य हो, पशु-पक्षी हों या स्वर्ग के देवता —हर कोई प्रकृति के इन तीनों गुणों के प्रभाव में रहता है। केवल ईश्वर की शरण में जाकर ही इनसे परे जाया जा सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... संपूर्ण सृष्टि प्रकृति के तीनों गुणों से संचालित है; इनसे परे केवल परमात्मा की सत्ता है।

### श्लोक संख्या: 18.41

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप |  
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः || 41 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे परंतप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के कर्म उनके स्वभाव से उत्पन्न गुणों के अनुसार अलग-अलग विभक्त किए गए हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण यहाँ समाज के कार्य-विभाजन का मूल आधार स्पष्ट करते हैं। वे बताते हैं कि वर्ण-व्यवस्था जन्म आधारित नहीं, बल्कि व्यक्ति के स्वभाव और उसके स्वाभाविक गुणों (सत्त्व, रज, तम) के आधार पर उसके कर्तव्यों का निर्धारण करने के लिए बनाई गई थी।

यह श्लोक हमें बताता है कि... व्यक्ति का सच्चा वर्ण उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके स्वाभाविक गुणों और कर्मों से तय होता है।

### श्लोक संख्या: 18.42

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च |  
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् || 42 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मन का निग्रह (शम), इन्द्रियों का दमन (दम), धर्मपालन के लिए कष्ट सहना (तप), बाहर-भीतर की शुद्धि (शौच), दूसरों के अपराधों को क्षमा करना (क्षमा), सरलता (आर्जव), शास्त्रज्ञान, अनुभवजन्य ज्ञान (विज्ञान) और ईश्वर-परलोक में श्रद्धा (आस्तिकता)—ये सब ब्राह्मण के स्वभाव से उत्पन्न स्वाभाविक कर्म हैं।

#### सरल व्याख्या:

ब्राह्मण स्वभाव का अर्थ है ज्ञान और अध्यात्म की दिशा में जीना। जिसमें अंतःकरण की शांति, इन्द्रिय-संयम, पवित्रता, क्षमाशीलता, निष्कपटता, गहरी समझ और परमात्मा में निष्ठा जैसे सात्त्विक गुण होते हैं, वे ही उसके स्वाभाविक कर्म और कर्तव्य बनते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान का संचय, पवित्रता और क्षमाशीलता ही ज्ञानी पुरुष का वास्तविक स्वभाव है।

### श्लोक संख्या: 18.43

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् |  
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् || 43 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध में न भागना, दान देना और स्वामी भाव (नेतृत्व क्षमता)—ये सब क्षत्रिय के स्वभाव से उत्पन्न स्वाभाविक कर्म हैं।

#### सरल व्याख्या:

क्षत्रिय स्वभाव का अर्थ है समाज की रक्षा और कुशल नेतृत्व। ऐसे व्यक्ति में अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस, संकट में धैर्य, संगठन क्षमता, दानशीलता और निर्भयता जैसे रजोगुण-मिश्रित सात्त्विक गुण प्रमुख होते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... साहस, नेतृत्व और समाज की रक्षा का दायित्व क्षत्रिय स्वभाव का मुख्य लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 18.44

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् |  
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् || 44 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

खेती करना, गोपालन करना और क्रय-विक्रय (व्यापार) करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं; तथा सब वर्णों की सेवा-शुश्रूषा करना शूद्र का स्वभावज कर्म है।

#### सरल व्याख्या:

आर्थिक व्यवस्था को चलाने के लिए उत्पादन और व्यापार का कार्य वैश्य स्वभाव के अंतर्गत आता है। वहीं समाज के सभी कार्यों में अपने श्रम और निष्ठा से सहयोग एवं सेवा देना शूद्र स्वभाव का अंग है। यह व्यवस्था समाज के संतुलन और सामंजस्य के लिए थी।

यह श्लोक हमें बताता है कि... उत्पादन, व्यापार और सेवा—हर प्रकार का श्रम समाज के सुचारु संचालन के लिए समान रूप से आवश्यक है।

### श्लोक संख्या: 18.45

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।  
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ॥ 45 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि (परमात्मा की प्राप्ति) को प्राप्त कर लेता है। अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को पाता है, उस विधि को तुम सुनो।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि कोई काम छोटा या बड़ा नहीं होता। मनुष्य अपने स्वाभाविक गुणों के अनुसार जो भी काम ईमानदारी और निष्ठा से करता है, उसी काम को साधना बनाकर वह ईश्वर तक पहुँच सकता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... काम की श्रेणी नहीं, बल्कि काम को करने की निष्ठा और भाव मनुष्य को महान बनाते हैं।

### श्लोक संख्या: 18.46

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।  
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ 46 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जिस परमात्मा से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह संपूर्ण जगत् व्याप्त है, उस ईश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

#### सरल व्याख्या:

यह कर्मयोग का सुंदरतम संदेश है। भगवान कहते हैं कि पूजा केवल मंदिर में बैठकर नहीं होती। अपने दैनिक कर्तव्यों को ईश्वर की पूजा मानकर निस्वार्थ भाव से करना ही परमात्मा की सच्ची आराधना है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने नियत कर्मों को निष्ठा से करना ही परमात्मा की सबसे बड़ी पूजा है।

### श्लोक संख्या: 18.47

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् |  
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् || 47 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

अच्छी तरह आचरण में लाए हुए दूसरे के धर्म (कर्म) की अपेक्षा गुणरहित भी अपना धर्म (कर्म) श्रेष्ठ है; क्योंकि अपने स्वभाव से नियत किए हुए कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को प्राप्त नहीं होता।

#### सरल व्याख्या:

दूसरों की देखा-देखी या चमक-दमक से प्रभावित होकर ऐसा काम अपनाना जो हमारे स्वभाव के अनुकूल न हो, तनाव और असफलता लाता है। अपने स्वाभाविक काम को ही, भले ही वह सामान्य दिखे, पूरी निष्ठा से करना कल्याणकारी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने स्वाभाविक कर्म और क्षमता के अनुसार जीना ही सच्ची प्रगति का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 18.48

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् |  
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः || 48 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! स्वभाव से प्राप्त हुए कर्म को दोषयुक्त होने पर भी नहीं त्यागना चाहिए; क्योंकि धुएँ से अग्नि की भाँति सभी कर्म किसी न किसी दोष से ढके हुए हैं।

#### सरल व्याख्या:

जैसे आग जलती है तो थोड़ा धुआँ भी निकलता है, वैसे ही दुनिया के हर काम में कोई न कोई छोटी-मोटी कमी या दोष हो सकता है। केवल इस डर से अपने कर्तव्य को छोड़ देना सही नहीं है। कमियों को स्वीकार करते हुए अपने फर्ज पर डटे रहना चाहिए।

यह श्लोक हमें बताता है कि... कोई भी काम पूरी तरह निर्दोष नहीं होता, इसलिए छोटी कमियों से डरकर कर्तव्य से पीछे नहीं हटना चाहिए।

### श्लोक संख्या: 18.49

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।

नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ 49 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सब जगह आसक्ति-रहित बुद्धि वाला, स्पृहा (इच्छा) से रहित और मन को जीतने वाला मनुष्य संन्यास के द्वारा उस परम नैष्कर्म्य सिद्धि (कर्मबंधन से मुक्ति) को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य अपने मन पर नियंत्रण पा लेता है, फल की लालसा छोड़ देता है और किसी वस्तु में अटकाव नहीं रखता, तो वह कर्म करते हुए भी कर्मों के फल से पूरी तरह मुक्त रहता है। इसी को 'नैष्कर्म्य सिद्धि' कहते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन और इच्छाओं को जीतकर कर्म करना ही कर्मबंधनों से पूर्ण स्वतंत्रता देता है।

### श्लोक संख्या: 18.50

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।

समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ 50 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! उस नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होकर मनुष्य जिस प्रकार ब्रह्म (परमात्मा) को प्राप्त होता है, उस ज्ञान की परम निष्ठा को तुम संक्षेप में ही मेरे से समझो।

#### सरल व्याख्या:

कर्मयोग के माध्यम से जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब मनुष्य परमात्मा के साक्षात्कार के योग्य बनता है। श्रीकृष्ण अब अर्जुन को संक्षेप में बताने जा रहे हैं कि यह परम अवस्था किस प्रकार प्राप्त की जाती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... निष्काम कर्म से मन शुद्ध होकर ही मनुष्य परम ज्ञान और ईश्वर की प्राप्ति का अधिकारी बनता है।

### श्लोक संख्या: 18.51

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च |  
शब्दादीन्विषयास्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च || 51 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

विशुद्ध बुद्धि से युक्त, सात्त्विक धारण शक्ति द्वारा अपने मन को वश में करके, शब्दादि विषयों का त्याग करके तथा राग और द्वेष को पूरी तरह नष्ट करके।

#### सरल व्याख्या:

ईश्वर की प्राप्ति की ओर बढ़ने वाले साधक की प्राथमिक तैयारी यहाँ बताई गई है। इसके लिए बुद्धि का निर्मल होना, मन पर धैर्यपूर्वक नियंत्रण होना, इन्द्रियों को विषयों से हटाना और किसी के प्रति पसंद (राग) या नापसंद (द्वेष) के भाव को समाप्त करना आवश्यक है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... मन और बुद्धि को संयमित करके राग-द्वेष से परे होना ही आत्म-साक्षात्कार की पहली सीढ़ी है।

### श्लोक संख्या: 18.52

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः |  
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः || 52 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

पवित्र एवं एकांत स्थान का सेवन करने वाला, हल्का और सुपाच्य भोजन करने वाला, वाणी, शरीर और मन को वश में रखने वाला, निरंतर ध्यानयोग के परायण और भली-भांति वैराग्य का आश्रय लेने वाला।

#### सरल व्याख्या:

यहाँ साधक की जीवनशैली का वर्णन है। शांत वातावरण में रहना, आवश्यकता से अधिक न खाना, व्यर्थ की बातें और विचार न करना, और प्रतिदिन नियमित रूप से ईश्वर का ध्यान करना ही अंतःकरण को स्थिर बनाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... एकांत, मिताहार और नियमित ध्यान ही मानसिक शांति और वैराग्य के आधार हैं।



### श्लोक संख्या: 18.53

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ 53 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह (संग्रह वृत्ति) का पूरी तरह त्याग करके, ममतारहित और शांतचित्त हुआ पुरुष ब्रह्म (परमात्मा) भाव को प्राप्त होने का अधिकारी होता है।

#### सरल व्याख्या:

परमात्मा से जुड़ने में छह बड़ी बाधाएँ हैं—'मैं' का अहंकार, शक्ति का घमंड, तीव्र इच्छाएँ, गुस्सा, और चीज़ों को इकट्ठा करने की लालसा। जब मनुष्य इन छहों विकारों को छोड़कर शांत हो जाता है, तब वह परमात्मा स्वरूप बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अहंकार और विकारों का त्याग ही मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति के योग्य बनाता है।

### श्लोक संख्या: 18.54

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ 54 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

ब्रह्म भाव को प्राप्त हुआ प्रसन्नचित्त मनुष्य न तो किसी के लिए शोक करता है और न ही किसी चीज़ की आकांक्षा करता है; वह सब प्राणियों में समान भाव रखने वाला होकर मेरी पराभक्ति (उच्चतम भक्ति) को प्राप्त होता है।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य परम सत्य को जान लेता है, तो उसकी आत्मा असीम आनंद से भर जाती है। फिर न उसे कुछ खोने का डर या शोक होता है और न कुछ नया पाने की लालसा। वह हर जीव में ईश्वर को देखता है और सच्ची पराभक्ति में लीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समभाव और शोक-इच्छा से मुक्ति ही ईश्वर की सर्वोच्च भक्ति का लक्षण है।

### श्लोक संख्या: 18.55

भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः |  
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् || 55 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

उस पराभक्ति के द्वारा वह मुझे तत्त्व से जान लेता है कि मैं कितना और कौन हूँ; फिर इस प्रकार मुझे तत्त्व से जानकर वह तुरंत ही मेरे स्वरूप में प्रवेश कर जाता है (मुझमें लीन हो जाता है)।

#### सरल व्याख्या:

केवल ज्ञान ही नहीं, बल्कि जब ज्ञान में सच्ची भक्ति का समावेश होता है, तब मनुष्य परमात्मा के वास्तविक रूप को समझ पाता है। इस साक्षात्कार के बाद भक्त और भगवान के बीच का अंतर समाप्त हो जाता है और वह ईश्वर में ही एकरूप हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... प्रेम और भक्ति के बिना ईश्वर के परम रूप को पूर्णतः जानना संभव नहीं है।

### श्लोक संख्या: 18.56

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्ब्रह्मपाश्रयः |  
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् || 56 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

मेरा आश्रय लेने वाला मनुष्य सब कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन और अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण गृहस्थों और कर्मयोगियों को बहुत बड़ा आश्वासन देते हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने सारे कर्तव्य निभाते हुए भी अपना मन ईश्वर में समर्पित रखता है, तो भगवान की कृपा से उसे भी वही मोक्ष और परम पद मिलता है जो किसी संन्यासी को प्राप्त होता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखकर किए गए कर्तव्य कर्म ही परम पद की प्राप्ति का द्वार खोलते हैं।

**श्लोक संख्या: 18.57**

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः |  
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव || 57 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

सब कर्मों को मन से मुझे अर्पण करके, मेरे परायण होकर और समत्व-बुद्धिरूप योग का आश्रय लेकर निरंतर मेरे में चित्त वाला (मच्चित्त) हो।

**सरल व्याख्या:**

भगवान् अर्जुन को एक सीधा और व्यावहारिक निर्देश देते हैं—'तुम जो भी काम करो, उसे मुझे समर्पित कर दो। यह मान लो कि तुम केवल निमित्त हो। अपनी बुद्धि को स्थिर रखो और अपने मन को हमेशा मेरे चिंतन से जोड़े रखो।'

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने सभी कार्यों को ईश्वर को समर्पित कर देना ही कर्मों के बोझ से मुक्त होने की कुंजी है।

**श्लोक संख्या: 18.58**

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि |  
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि || 58 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

मुझमें चित्त लगाने वाला होकर तुम मेरी कृपा से सब संकटों और बाधाओं को सुगमता से पार कर जाओगे; और यदि अहंकार के कारण मेरी बात न सुनोगे, तो तुम्हारा विनाश हो जाएगा।

**सरल व्याख्या:**

श्रीकृष्ण प्रेम से चेतावनी भी देते हैं। वे कहते हैं कि यदि मन ईश्वर में रहेगा, तो जीवन की कठिन से कठिन रुकावटें और परिस्थितियाँ सहज ही पार हो जाएँगी। लेकिन यदि 'मैं सब जानता हूँ' के अहंकार में आकर ईश्वरीय मार्गदर्शन की उपेक्षा की, तो पतन निश्चित है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... समर्पण से जीवन के सब संकट टल जाते हैं, जबकि अहंकार विनाश का कारण बनता है।

### श्लोक संख्या: 18.59

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे |  
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति || 59 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

यदि अहंकार का आश्रय लेकर तुम यह सोच रहे हो कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', तो तुम्हारा यह निश्चय व्यर्थ है; क्योंकि तुम्हारा क्षत्रिय स्वभाव तुमसे जबरदस्ती युद्ध करवा लेगा।

#### सरल व्याख्या:

अर्जुन जब युद्ध से पीछे हटने की बात कर रहे थे, तो भगवान उनसे कहते हैं कि यह केवल तुम्हारा तात्कालिक भ्रम और अहंकार है। तुम्हारा आंतरिक क्षत्रिय स्वभाव और संस्कार तुम्हें अन्याय के खिलाफ खड़े होने के लिए मजबूर कर देंगे, इसलिए अपनी प्रकृति से भागना संभव नहीं है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपनी मूल प्रकृति और स्वाभाविक कर्तव्यों से भागना व्यर्थ और असंभव है।

### श्लोक संख्या: 18.60

स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा |  
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् || 60 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे कुंतीपुत्र! जिस कर्म को तुम मोह के कारण (अभी) नहीं करना चाहते, अपने स्वभाव से उत्पन्न हुए उसी कर्म से बँधे हुए तुम विवश होकर भी करोगे।

#### सरल व्याख्या:

मनुष्य अपने स्वभाव, संस्कारों और प्रवृत्तियों के धागों से बँधा हुआ है। जब संकट या धर्म-संकट का समय आएगा, तो व्यक्ति का मूल स्वभाव ही उससे काम करवाएगा। इसलिए मोह त्यागकर स्वेच्छा से कर्तव्य पथ पर चलना ही बुद्धिमानी है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... अपने स्वाभाविक धर्म और कर्तव्यों का सहर्ष स्वीकार ही शांति का मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 18.61

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति |

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया || 61 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे अर्जुन! परमेश्वर संपूर्ण प्राणियों के हृदय-देश में स्थित हैं और अपनी माया से, शरीर-रूपी यंत्र में सवार हुए सब प्राणियों को (उनके कर्मों के अनुसार) घुमाते रहते हैं।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण समझाते हैं कि ईश्वर कहीं दूर नहीं, बल्कि हर जीव के हृदय में विराजते हैं। जैसे कोई चालक यंत्र या गाड़ी को चलाता है, वैसे ही ईश्वर की प्रकृति और नियम प्रणाली मनुष्य को उसके कर्म संस्कारों के अनुसार जीवन-चक्र में संचालित करती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा हमारे भीतर ही विद्यमान हैं और वही संपूर्ण जीवन-संसार के मूल संचालक हैं।

### श्लोक संख्या: 18.62

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत |

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् || 62 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

हे भारत! तुम सब प्रकार से केवल उस परमेश्वर की ही शरण में जाओ। उस ईश्वर की कृपा से ही तुम परम शांति को और सनातन परम पद को प्राप्त करोगे।

#### सरल व्याख्या:

जब मनुष्य को यह समझ आ जाता है कि सब कुछ ईश्वर के विधान से चल रहा है, तो उसका कर्तव्य बनता है कि वह अपने अहंकार को मिटाकर पूरी तरह परमात्मा को समर्पित कर दे। ऐसा समर्पण ही जीवन में परम शांति लाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के प्रति अनन्य और पूर्ण समर्पण ही परम शांति और मोक्ष की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 18.63

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।

विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ 63 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

इस प्रकार यह गोपनीय से भी अत्यंत गोपनीय ज्ञान मैंने तुमसे कह दिया; अब तुम इस पर पूरी तरह विचार (मनन) करके, जैसा चाहते हो वैसा ही करो।

#### सरल व्याख्या:

यह गीता की स्वतंत्रता का अद्भुत श्लोक है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन पर जबरदस्ती अपना निर्णय नहीं थोपते। वे पूरा ज्ञान देने के बाद अर्जुन को विचार करने की पूर्ण स्वतंत्रता देते हैं कि वे अपनी बुद्धि और विवेक से निर्णय लें।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सत्य का ज्ञान प्राप्त करने के बाद विचार-विमर्श करके स्वेच्छा से सही निर्णय लेना ही सच्चा विवेक है।

### श्लोक संख्या: 18.64

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।

इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ 64 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

सब गोपनीय बातों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को तुम फिर भी सुनो; तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो, इसलिए यह हितकारी बात मैं तुमसे कहता हूँ।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति अपने अपार प्रेम और स्नेह के कारण गीता का सबसे मुख्य और अंतिम सार-संदेश देने जा रहे हैं। वे कहते हैं कि तुम मेरे अत्यंत प्रिय मित्र और भक्त हो, इसलिए मैं तुम्हारे कल्याण के लिए यह परम रहस्य बता रहा हूँ।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय प्रेम और कृपा ही जीव को सबसे गूढ़ आध्यात्मिक सत्य का अधिकारी बनाती है।

### श्लोक संख्या: 18.65

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु |  
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे || 65 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

तुम मेरे में मन वाला हो, मेरा भक्त बन, मेरी पूजा करने वाला हो और मुझे नमस्कार कर; ऐसा करने से तुम मुझे ही प्राप्त होओगे—यह मैं तुमसे सत्य प्रतिज्ञा (वचन) करता हूँ, क्योंकि तुम मेरे अत्यंत प्रिय हो।

#### सरल व्याख्या:

ईश्वर-प्राप्ति के चार सरल सूत्र यहाँ दिए गए हैं—मन को ईश्वर में लगाना, ईश्वर से प्रेम करना, अपने कर्मों से ईश्वर का पूजन करना और विनम्रतापूर्वक समर्पण करना। भगवान वचन देते हैं कि ऐसा करने वाला निश्चित रूप से ईश्वर को ही पाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर में मन लगाना और समर्पण भाव रखना ही प्रभु-प्राप्ति का सबसे प्रत्यक्ष और सरल मार्ग है।

### श्लोक संख्या: 18.66

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज |  
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः || 66 ||

#### हिन्दी अनुवाद:

सब धर्मों (कर्तव्यों, साधनों और नियमों के आश्रय) को छोड़कर केवल एक मेरी ही शरण में आ जाओ; मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा, तुम शोक मत करो।

#### सरल व्याख्या:

यह श्रीमद्भगवद्गीता का सबसे प्रसिद्ध और महान 'चरम श्लोक' (महावाक्य) है। भगवान कहते हैं कि सब चिंताओं, विधियों और कर्मफल के संशयों को छोड़कर केवल परमात्मा की शरण स्वीकार कर लो। ईश्वर भक्त के सभी पापों को हर लेते हैं और उसे निःअभय कर देते हैं।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भगवान की अनन्य शरण में चले जाने पर मनुष्य सभी पापों, भयों और शोकों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है।

**श्लोक संख्या: 18.67**

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन |  
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति || 67 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

यह गीता-रूपी रहस्यमय उपदेश तुम्हारे द्वारा किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य से कहना चाहिए, न भक्तिरहित से, न सुनने की इच्छा न रखने वाले से और न ही जो मुझसे द्वेष करता है उससे कहना चाहिए।

**सरल व्याख्या:**

श्रीकृष्ण इस पवित्र ज्ञान की मर्यादा तय करते हैं। वे कहते हैं कि गीता का उपदेश केवल उसी को देना चाहिए जो श्रद्धालु, संयमी, सेवाभावी और ईश्वर में श्रद्धा रखने वाला हो। जो अहंकार में डूबा हो या द्वेष रखता हो, उसे यह ज्ञान देना व्यर्थ है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान केवल पात्र और श्रद्धालु जिज्ञासु को ही देना चाहिए।

**श्लोक संख्या: 18.68**

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति |  
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः || 68 ||

**हिन्दी अनुवाद:**

जो पुरुष मेरे में परम भक्ति करके इस परम गोपनीय गीता-शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा (प्रचारित करेगा), वह संशय-रहित होकर मुझे ही प्राप्त होगा।

**सरल व्याख्या:**

यहाँ गीता के संदेश का प्रचार-प्रसार करने वाले की महिमा बताई गई है। जो व्यक्ति निष्काम भाव से ईश्वर के भक्तों तक गीता के ज्ञान को पहुँचाता है, वह भगवान की पराभक्ति को पाकर अंत में उन्हीं में लीन हो जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गीता के सात्त्विक संदेश को दूसरों तक पहुँचाना ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा और भक्ति है।



### श्लोक संख्या: 18.69

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।

भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ 69 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और मनुष्यों में उससे (गीता-ज्ञान का प्रचार करने वाले से) बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वी पर उससे बढ़कर मेरा कोई दूसरा अत्यंत प्रिय होगा भी नहीं।

#### सरल व्याख्या:

भगवान स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि जो भी व्यक्ति निष्काम भाव से संसार में ज्ञान का दीप जलाता है और गीता के उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाता है, वह ईश्वर का सबसे प्रिय भक्त बन जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ज्ञान का दान और सद्मार्ग का प्रचार करने वाला साधक परमात्मा का अत्यंत प्रिय पात्र होता है।

### श्लोक संख्या: 18.70

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।

ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ 70 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और जो मनुष्य हम दोनों के इस धर्मयुक्त संवाद (गीता) का अध्ययन करेगा, उसके द्वारा भी मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित हूँगा—ऐसा मेरा मत है।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि गीता का पाठ और अध्ययन करना केवल एक ग्रंथ पढ़ना नहीं है, बल्कि वह एक प्रत्यक्ष 'ज्ञानयज्ञ' है। जो भी गीता को समझकर पढ़ता है, वह मानो अपनी बुद्धि से भगवान का पूजन ही कर रहा है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... गीता का नियमित अध्ययन और मनन ईश्वर की ज्ञानयज्ञ द्वारा आराधना करने के समान है।

### श्लोक संख्या: 18.71

श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः ।

सोऽपि मुक्तः शुभल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ 71 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जो मनुष्य श्रद्धा से युक्त और दोषदृष्टि से रहित होकर केवल इस गीता-शास्त्र का श्रवण भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम पुण्यकर्म करने वालों के शुभ लोकों को प्राप्त होगा।

#### सरल व्याख्या:

श्रीकृष्ण कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति गीता का अध्ययन नहीं भी कर पाता, लेकिन वह बिना किसी शंका या दोषदृष्टि के केवल श्रद्धापूर्वक इसे सुनता भी है, तो उसका मन शुद्ध हो जाता है और उसे भी शुभ गतियों की प्राप्ति होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... श्रद्धापूर्वक गीता का श्रवण मात्र ही मनुष्य के कल्याण और पाप-मुक्ति का माध्यम बनता है।

### श्लोक संख्या: 18.72

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।

कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ॥ 72 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

हे पार्थ! क्या तुमने इस उपदेश को एकाग्रचित्त होकर सुना? और हे धनञ्जय! क्या तुम्हारा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह पूरी तरह नष्ट हो गया?

#### सरल व्याख्या:

संपूर्ण उपदेश समाप्त करने के बाद श्रीकृष्ण एक उत्तम शिक्षक की भांति अर्जुन से पूछते हैं कि क्या उनका संशय और अज्ञान दूर हुआ। वे यह सुनिश्चित करते हैं कि अर्जुन ने इस ज्ञान को केवल सुना नहीं, बल्कि आत्मसात भी किया है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सच्चा ज्ञान वही है जो हमारे मन के अज्ञान, मोह और भ्रम को पूरी तरह समाप्त कर दे।

### श्लोक संख्या: 18.73

अर्जुन उवाच ।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥ 73 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

अर्जुन बोले—हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे मेरे स्वरूप की स्मृति प्राप्त हो गई है। अब मैं संशय-रहित होकर स्थिर हूँ और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

#### सरल व्याख्या:

यह अर्जुन की अंतिम स्वीकृति है। गीता के इस ज्ञान को पाकर अर्जुन का सारा संशय, डर और मोह समाप्त हो जाता है। वे स्वयं को पहचानने के बाद पूर्ण समर्पण के साथ कहते हैं कि 'हे प्रभु, मैं आपके बताए कर्तव्य मार्ग पर चलने के लिए तैयार हूँ।'

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर ज्ञान से मोह का नाश होता है और व्यक्ति अपने परम कर्तव्य पथ पर निडर होकर आगे बढ़ता है।

### श्लोक संख्या: 18.74

संजय उवाच ।

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।

संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ 74 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

संजय बोले—इस प्रकार मैंने भगवान वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अत्यंत अद्भुत और रोमांचित कर देने वाले संवाद को सुना।

#### सरल व्याख्या:

महर्षि वेदव्यास की दिव्य दृष्टि से इस पूरे संवाद को देख और सुन रहे संजय राजा धृतराष्ट्र से कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच की यह दिव्य चर्चा अत्यंत अद्भुत और हृदय को रोमांचित कर देने वाली है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... परमात्मा और भक्त का सच्चा संवाद अत्यंत पावन और हृदय को दिव्य आनंद से भरने वाला होता है।

**श्लोक संख्या: 18.75**

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्ब्रह्ममहं परम् ।  
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयं ॥ 75 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

श्री व्यासजी की कृपा से (दिव्य दृष्टि प्राप्त करके) मैंने इस परम गोपनीय योग को स्वयं योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण के मुख से साक्षात् कहते हुए सुना।

**सरल व्याख्या:**

संजय व्यासदेव जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि उन्हीं की कृपा से वे इस परम ज्ञान को स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से सीधे सुनने का सौभाग्य पा सके।

यह श्लोक हमें बताता है कि... सद्गुरु की कृपा से ही मनुष्य को परम तत्त्व और ईश्वर के ज्ञान का साक्षात् अनुभव प्राप्त होता है।

**श्लोक संख्या: 18.76**

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।  
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ 76 ॥

**हिन्दी अनुवाद:**

हे राजन! भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के इस अत्यंत अद्भुत और पवित्र संवाद को याद कर-करके मैं बार-बार हर्षित (आनंदित) हो रहा हूँ।

**सरल व्याख्या:**

संजय कहते हैं कि गीता के उपदेशों और वचनों का बार-बार स्मरण करने मात्र से ही मन अपार आनंद, शांति और प्रसन्नता से भर जाता है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... भगवद्गीता के विचारों का निरंतर मनन और चिंतन ही मनुष्य के मन को सदा आनंदित रखता है।

### श्लोक संख्या: 18.77

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।  
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ 77 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

और हे राजन! श्री हरि के उस अत्यंत अद्भुत (विराट्) रूप को भी याद कर-करके मेरे मन में महान आश्चर्य होता है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।

#### सरल व्याख्या:

संजय न केवल संवाद को, बल्कि अध्याय 11 में प्रकट किए गए भगवान के विराट् स्वरूप को याद करके भी भाव-विभोर हो जाते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर की महिमा और रूप का स्मरण ही आनंद का स्रोत है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वर के अनंत रूप और महिमा का ध्यान मनुष्य के भीतर भक्ति और असीम आनंद जगाता है।

### श्लोक संख्या: 18.78

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।  
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ 78 ॥

#### हिन्दी अनुवाद:

जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धारी अर्जुन हैं—वहीं पर श्री (लक्ष्मी), विजय, विभूति (ऐश्वर्य) और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।

#### सरल व्याख्या:

यह श्रीमद्भगवद्गीता का अंतिम और मंगलकारी श्लोक है। यहाँ 'श्रीकृष्ण' ईश्वरीय कृपा/मार्गदर्शन के प्रतीक हैं और 'धनुर्धारी अर्जुन' कर्म और पुरुषार्थ के प्रतीक हैं। जहाँ ईश्वर की कृपा और मनुष्य का अपना सच्चा कर्म-पुरुषार्थ दोनों मिल जाते हैं, वहाँ सफलता, विजय, समृद्धि और सत्य की निश्चित जीत होती है।

यह श्लोक हमें बताता है कि... ईश्वरीय विधान पर विश्वास और अपना निष्काम कर्म—इन दोनों के मिलन से ही जीवन में वास्तविक विजय और समृद्धि आती है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे

मोक्षसंन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ 18 ॥

॥ श्रीमद्भगवद्गीता संपूर्णम् ॥